



# द म य न्ती

( महाकाव्य )



लेखक

ताराचन्द्र हारीद्व

प्रस्तावना

गोपालदास 'नीरज'



१९३७

आत्माराम एण्ड सन्स

प्रकाशक तथा पुस्तक-बिजठा

काश्मीरी गेट

सिम्ला ६

प्रकाशक

रामलाल पुरी संचालक

प्रतप्पाराय पण्ड संत

काशीरी वेद विस्मी-१

सर्वाधिकार सुरक्षित

इस्य च न \*

मुद्रक

सूचीय प्रेत

बाबडी बाबाद विस्मी १

## प्रस्तावना

इतिहास जब करबट सेना है तब परम्परायें और मान्यतायें ही नहीं बदलती बल्कि संस्कृति का मानम-सोक और माहिर्य का मान-सोक भी परिवर्तित हो जाता है, जिसके कारण हमारी मन-स्वात के साथ-साथ हमारे जीवन मूल्यों में भी अतिशय उपस्थित हो जाता है। इस परिवर्तन की वो प्रक्रियायें होती हैं। कभी तो यह परिवर्तन इतना तीव्र इतना बेगामी होता है कि इतना एक क्षण में सब कुछ बदल जाता है किन्तु कभी-कभी यह ऐसा विशेष की प्रकृति की सीमा रेखाओं को स्पर्श करता हुआ और उनमें परिमोचन एवम् परिवर्तन करता हुआ बनी बनी अपना कारण-निर्णय करता है और हमें उसका आभास तक नहीं हो पाता। १५ अगस्त १९४७ के दिन भारत-भूमि में भी एक ऐसी ही करबट ली थी। मुर्गों से पचदशित मिर्चन देश में अताशियों के बासल-गुल्लियों को एक अटक में उतारकर फेंक दिया था। भारतवर्ष से पहले भी बहुत से देशों ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी और विजय पाई थी पर प्रत्येक देश के मुक्ति-यज्ञ में रक्त-बलि का साप भी था। यह भारत ही था जिसने बिना तलवार के—प्यार से यह स्वतन्त्रता का संग्राम जीता। राजनीति में और विशेष रूप से स्वार्थान्त्रि पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर यह एक सर्वथा अमिशन प्रयोग था। संसार में इस प्रयोग का फल देखा और अक्षिप्त रह गया। भारत स्वयं यह देखकर अक्षिप्त रह गया और जब तक यह इस अमत्कार की ध्यास्या करे तक तक जो अमत्कार दिखाने वाला था बसा गया। यह बसा तो गया लेकिन भारत के हाथ में एक अमान्न छोड़ गया जिसके आसोक में कुछ अस्त विश्व का एक आसोकित-किमा था सकता था और जिसके प्रकाश में बैठकर बास्वों और बम्बों की अन्धेरी रात में भी मानवता का गया इतिहास लिखा जा सकता था। 'गांधी भारत के हाथों एक ऐसी क्रम से गया था जिसके द्वारा मानवीय मन्त्रियों की एक सर्वथा मनीन कविता लिखी जा सकती थी। इसीलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह आश्चर्यक हा गया कि हमारा देश उन पुरानी बहि-जर्जर मान्यताओं का त्याग करे जो आज तक हमारी हीनता की कहानी कहती रही थी और उन मनीन मानवीय आदर्शों की प्रतिष्ठा में सवे जो अब भी निरुपदर्श में गगन्य होन पर भी अमान के अन्ध समझौताली

## इमपण्ठी

राष्ट्रों के बीच ठनकर बैठने का बीरव प्रदान कर सके । फलस्वरूप देश में बादों की सीढ़ी ही मग गई । योबीबाद, समाजबाद, साम्यबाद, तन्त्रबाद, मोक्ष-तन्त्रबाद आदि अनेक बादों का एक मैला सा राजनीति के रंजक पर जड़ने लगा और उनके कोलाहल में से भारत प्रयत्न करता रहा कि अपनी आत्मा की भावाज सुन सके । मेहक के रूप में भारत ने अपनी आत्मा को साकार पानिया और राजनीति उसे लेकर जैसे जग्न हो गई । किन्तु साहित्य में मेहक जैसा कोई सबसे व्यक्तित्व नहीं था इसलिए वह बादों के तुमुल कोलाहल में ही खो गया । इन सब वर्षों में प्रगतिवाद प्रयोगवाद बिम्बबाद प्रतीकवाद नकेनबाद आदि कितने ही बाद घाये और बोझी-बोझी देर अपनी-अपनी स्त्री की दिखाकर बने गये । पर नवीन भारत की नवीन आत्मा का जो समूचक उद्घाटन कर उसे मुग-मुग की बाली प्रदान कर सके—वह बाद अभी भी प्राधिकृत नहीं हुआ है ।

इस समय एक घब्रीब-सी स्थिति है—नये के प्रति हम आकर्षित हैं पर वह हमारे संस्कारों से कुछ नहीं पाता है पर साथ ही पुराने का हमें मोह भी है किन्तु नये आदर्शों के बीजान में वह फिट नहीं हो पाता है । एक घुत्तरे पर हम विद्याभिमित से जड़े हैं—एक पैर पूरव एक पैर पश्चिम—घब्रीब बीजतान है । पूर्व हमें भारत की घोर—आधुनिक तुलसी की घोर बीजता है और पश्चिम हमें इमिडेट घोर एक्स्पोज़िड की तरफ ले जाता है । अहित हममें इतनी है नहीं कि इस बीजा-बीनी में हम अपने को बचाये रखें—बोट न लगने दें । इसलिये कि बिजटन की घबरावा का पिटा है इसीलिये मात्र हमारे साहित्य में आत्मा की लोख होने लगी है । क्या कविता क्या प्रपन्थास क्या कहानी—सब घोर आत्मा की पुकार है । पहले बीजम की पुकार होती थी पर अब वह आत्मा की पुकार आ गई है । कल घामक कोई टीसरी भी पुकार सुनाई है और परतों बीबी ।

तो यह 'पुकारों' का 'घोरे' का घानी 'मार्तों' का युग है इसीलिए संघीत भाव मरता जा रहा है और नील—अपुजित—अनसुता होकर इधर-उधर भटक रहा है । लेकिन कुछ हैं जो फिर भी पाये जा रहे हैं पाये जा रहे हैं और साथ-सब उमका गाता ही हो जो बड़ि की भरस्वसी नीरसता में भी सरसता का संचार कर रहा है और लोक-मानस में कविता के प्रति प्रीति और प्यार बढाये हुए है ।

औ हाथीत भी भी हिम्मी के कुछ ऐसे ही घलमलत घामकों में से हैं । प्रचार और विज्ञापन में दूर के केवल इमलिये पाये जा रहे हैं कि गाने बिना रह नहीं

सकते । मैं बैठे सात घण्टे उठू आया और बैठ के ही एक रात में हारीठ जी रूठे हैं पर न तो कभी इनसे परिचय ही हुआ और न पहले कहीं इनकी रचना ही पढ़ी । आज जब सामने 'दमयन्ती' आई और वह भी महाकाव्य के रूप में तो आश्चर्य हुआ । इस कवि को तो कमी जाना भी नहीं कमी नाम भी नहीं घुमा और फिर यकायक ये की ये पंक्तियाँ याद आ गई—

Full many a gem of purest ray Sereene  
The Dark unfathomed caves of ocean bear  
Full many a flower is born to blush unseen  
And waste its sweetness on the desert Air

हारीठ जी के बारे में जब आगे और कुछाछ की तो पता चला कि छोटे बड़े सब मिलाकर वे अब तक १४ ग्रन्थ लिख चुके हैं जो सभी प्रकाशित हैं । तो हारीठ जी अभी तक हम हिन्दी बाबों के लिये पूर्ण अपरिचित हैं । अपरिचित वे इसलिए हैं कि न तो वे कभी कवि-सम्मेलनों में कविता-पाठ करने गये और न किसी 'बाबी-भाचार्य' से सीखा लेकर वे उसके सिध्य बने । बाबों की हवा से विस्कृत प्रकृता—असंपृक्त उनका व्यक्तित्व है और उसकी छाप उनकी रचनाओं पर भी सर्वत्र देखी जा सकती है ।

पारबाल्य धनीतकों ने कविता के दो स्कूल प्रेरित किये हैं—आत्मगत (Subjective) और वस्तुगत (Objective)। धुनिया के लिये यदि हम चाहें तो एक को आत्मलुम्बित निरपिणी और दूसरी को बाह्यार्थ निरपिणी कह सकते हैं । गीत प्रवृत्ति मुख्यतः रचना प्रथम के अन्तर्गत आती है और प्रबन्ध रचना दूसरी के अन्तर्गत समाविष्ट की जा सकती है । कविता के ये दोनों रूप प्रचलित हैं पर वास्तव में यह वर्गीकरण व्यवहारिक ही है तार्किक नहीं क्योंकि चाहे वह गीत रचना हो या प्रबन्ध रचना हूँ अन्त में दोनों आत्मा लुम्बित की ही अभिव्यक्ति हैं । जब कवि का मानस अपक मात्र के रूप में उठता है तो वह कि वह आसन्न उससे छलक छलक पड़ता है तब गीत का जन्म होता है लेकिन जब कवि की दृष्टि अपने 'हृदय' से ऊपर उठकर लोक-मानस की भूमि पर 'पर' से तादस्तम्य का प्रयास करती है तब महाकाव्यों का जन्म होता है । एक में अपनी रचना का लक्ष्य व्यक्ति स्वयं होता है और दूसरी में उसका लक्ष्य समाज और संसार होता है इसीलिए जहाँ गीत में तीव्र संवेदनशीलता होती है वहाँ प्रबन्ध काव्य में एक विशद व्यापकता के वर्णन हमें होते हैं । गीत व्यक्तिपरक अधिक है इसीलिए संस्कृतियों और सभ्यताओं के निर्माण और विकास में उसका योगदान उठना नहीं रहा है कि

जितना महाकाव्यो का । विश्व-साहित्य में सदियाँ से जिन्हें भगार का प्रादुर प्राप्त होता रहा है और जिन्हें बर्गिष्ट साहित्य (Classic) की सभा प्राप्त हुई है वे अधिकोश प्रबन्ध रूप में ही हैं । प्रबन्ध काव्या में विदाल वर्गों द्वारा सामाजिक जीवन की का विद्यास योजना प्रस्तुत की जाती है उस की विद्यासता स्वायत्तता का बड़ा ही रसायनी एवम् विमल प्रभाव लोक-मानस पर पड़ता है । परन्तु महाकाव्य की यद्वाय योजना का अर्थसाय यपनी मेरुनी के रूप पर लावना बड़ा दुष्कर होता है । उसके लिए एक स्पष्ट जीवन-वर्णन मूर्धन प्राप्त दृष्टि अनुभूतियों की एकतामता साधना बुद्धि और कल्पना का समीचीन समुत्पन्न आवश्यक होता है । इसके बिना न तो बटना शक को ही बहु कम्बड रह सकता है और न ही बहु जल-प्रतिवात और धनद्वन्द्व द्वारा चरित्र-निर्माण में सफल होता है । महाकाव्य के भीतर प्रत्येक रसो का ज्ञान-ज्ञान इतना बिगड़ और विद्यास हो जाता है कि प्रतिफल बिना मजबूत यह उस सभासता कठिन हो जाता है । यह समस्त कार्य बड़ परिश्रम अध्वन्याय एवम् सायकता की अपेक्षा रदता है । नीचे में अनुभूति लड़ लड़ होकर ही यपनी अभिव्यक्ति करनी है किन्तु महाकाव्य में येनता एक कथा में सुबकर घुबड़ हो जाती है इसलिय महाकाव्य का रसायनावन भी उसके पूरे प्रभाव से ही किया जाना चाहिए ।

कहता रही हागा कि हागीत जी की प्रस्तुत कृति उपराज्य सभी बातों का पूरा करती है । यहाँ एक सुसम्बद्ध लोक विधि त लन-व्ययनी की येम-कथा के साध-साध अनुभूति की एवतामता एक स्पष्ट जीवन-वर्णन सफल प्रकृति बिमल अत्यन्त प्राबल एवम् परिष्कृत भाषा लम लम्ब चरित्राकन के दर्शन हात ह । भाषा पर ता कवि का ऐसा पूर्णाधिकार है कि वह उस जब जिस रूप में चाहे बीना माड़ करता है । प्रकृति-विचार में उसकी भाषा मगीतामय और लोमल हो जाती है । सवाबी में निवत लय प्रवाहपूर्ण दिलाई देने लगती है, और लम्बवर्धन में सहज मन्त्र वज-नामिनी । नीचे के सीमों उदाहरण मरी बात की पृष्टि करेंगे—

प्रकृति-विचार—

ममिलका यह माधवी जग्या कहीं  
मृदिका वासन्तिका कुचक यहीं ।  
जोरता यह इधर लय करम्ब है  
बर, न हगोबर कहीं नरु निम्ब है ।

स्वर्ण-जाति सुधापित्री मंडक जड़  
माधवी पुत कस्तुरिकार सुवित बड़े ।

धनवा

जल पड़ी रात नभ बरन हुआ पीला-सा  
पुष्पी अंचल बर हरित हुआ पीला-सा ।  
वह सु-प्रभितारिका गई बिन्दु ये छोड़े  
हृत् प्रस से तारे उसे पकड़ने बौड़े ।  
मूर्च्छित-सा बिन्दु हो गया न यह सह पाया  
आ पहुँचा मन्द समीर बेक मुस्कामा ।  
वह व्यवन कुलाने लवा बरन से सींचा  
हो बिबरा तिमिर ने ह्रास बरा से सींचा ।

संवाद—

केसिनी ! न है यह बात तुम्हें क्या सूझ  
पौष्य का कुछ भस्त्र न समझा-बुझा ।  
रजनी भर मुबता कभी घली कुलों में  
बिंब जाता कभी निरीह, घली ! कुलों में ।  
घवने प्रायों पर खेल लता को पाता  
करता है हस्तको मुग्ध पीत मधु गाता ।  
पाकर घलि का सर्वस्व, स्वरस ये देती  
यह क्या देता जो मात्र परस ये देती ।

मुद्रा-विमर्श—

धू रहे हैं कम्प-द्वय युग-कर्ण को  
बर्ष मञ्जित कर रहा है स्वर्ण को ।  
नाक-दुक सी बहन-मध्य रवावली  
भर रही क्यों क्षुब्धित में मुबतापसी ।  
बिबुल परम मनोस विस्तृत भाग है  
घसियों पर, पद्म का मग-जात है ।

यह सत्य है कि नवी कविता के नये ध्वनि प्रयोगों एवम् प्रतीक-विधानों से  
हाथी की की कला सर्वथा अधूरी है किन्तु इसका यह धर्म कथावि नहीं है कि  
नवयुग में नये प्रयोगों ने भी उन्हें नहीं धुंधला है । नवीन काव्यगत साम्यताओं  
को प्रतीकार करके भी वे नवयुग की प्रमुख-प्रमुख समस्याओं से पूर्ण परिचित  
हैं और स्वातन्त्र्य-स्वातन्त्र्य पर इस प्रकाश में उनकी प्रमुखित धर्मिण्यक्ति हुई है ।



यद्यपि साम्प्रदाय समाजवाद सभी की यत्किंचित् समुदाय उनकी कृति में है  
किन्तु भी यौथीवादी-विचारधारा विशेष रूप से यहूिहा सहकारिता प्रमुखता  
धीरे मानववाद का प्रभाव उन पर विचार रूप से है और वही वस्तुतः इस  
प्रबन्ध-काव्य की कर्तन मिति है। बटना रूप में प्राप्त हुए विविध कार्य कलाओं  
क बीच उन्होंने नारी-स्वातन्त्र्य व्यक्ति-स्वातन्त्र्य भय पूजा और मानव-मीरव  
में भी अपनी धारणा प्रकट की है। वेबतामा में छम की बात तो स्वयम्बर  
समा में बड़े ही सुन्दर शब्दों में रामयणी द्वारा इस प्रकार कही गई है—

रे पत्तकी। देवी प्रहृम्या ली तुम्हीं ने ज्ञान की  
कितनी न जान सारिबनों की ताबुला है लख की।  
कम देखकर लीख्य तुम निज पर नियन्त्रण रख सके  
है जब भव तक भी न को तुम हाथ। छम पय से बके।  
कम कर निरीह बपीबि को फिर भी नहीं लज्जित हुए,  
औ धात्र भोली बालिका धनमार्ग यों लज्जित हुए।  
ताम्री तुम्हारी दे रहे प्रतमेन ये उस रात की  
फिर भी न अपनी प्रकृति तुम हा तन सके उखात की।

प्रेम और यहूिहा की बात नन द्वारा इस प्रकार—  
यह न शाय का जान मर। यह मानवता है  
हिंसा से परिपूर्ण ज्ञान की मानवता है।  
धीरे निम्नलिखित पंक्तियों में नारी-मीरव की बात नन हाथ इस प्रकार  
कही गई है—

बोले—यह नारीत्व प्रबलता जोत नहीं है  
कामिताम नारीत्व-सुख हिंसा जीत नहीं है।  
बीन हीन तुम कहीं। पत्नी तुम्हीं हो बल का  
तुम्हीं निवारण-नाम देवि। संघर्ष का धल का।  
बिबि की लबोत्कृष्ट मृष्टि पुष्पत्व यहाँ है।  
पत्नी तुम्हारे पर पूर्वनिश्चय नारीत्व रहा है,  
प्रबला हो तुम किन्तु विषय में बल हो तुम ही  
विश्व सम्बन्ध है यह इसमें जल हो तुम ही।

धीरे पवित्ररायणा निद्रा-निमग्न दमकरी को पण्य पति में निर्जन मन में  
तब के तने छोड़कर जाते हुए नन के हृदय में को घातईव हो रहा है उसका  
निर्माण बड़े ही मर्म-स्पष्टी एवं हृष्यवाही शब्दों में कवि ने किया है। केवल  
बिस्मर भय स में यहाँ पर उसके पञ्जरण नहीं दे रहा है। इसके प्रतिरोध

कवि ने कथा के बीच-बीच में गभीर पात्रों और परिस्थितियों की भी उद्घाटना की है जिसके कारण कथा का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है। इस दृष्टि से पूरा का पूरा बखस समे बर्तनीय है।

कवि की यह प्रथम कृति है। किन्तु यह प्रथम कृति ही इतनी सुन्दर और सहज है कि कवि के उज्ज्वल भविष्य के प्रति एक बड़ी आस्था होती है। प्राक्कल पीतों का मौसम है, और इस ऋतु में ही सब बहे जा रहे हैं। कवि ने बसती हुई हवा को पीठ बेकर पहले ही आलाप में जो भारती की बीछा पर यह महाकाव्य सेका है वह उसके उद्गम साहस और प्रचुर काव्य प्रतिभा का प्रतीक है। महाकाव्य के नियमों पर यह कृति कहीं तक खरी-सोटी उतरेगी यह निर्णय तो सुभी आसोचक ही करेगे। किन्तु यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि अपने आपा-सौष्ठव पर-साहित्य दृश्य-योजना वर्णन-विधान चित्रांकन धर्तकार-शिल्प नाटकीय वाग्देव्य एवम् सर्वस्पर्शी भाव-संयोजन के कारण यह एक सुन्दर सम्पन्न कृति है और अथर्व ही साहित्य में यह एक औरनपूर्ण स्थान प्राप्त करेगी।

हारिदासुटी  
प्रसौगड

‘मीरज’



## दो शब्द

एक नहीं अनेक। बलुरतम बञ्जरीय पी चुके सौरभ वह गा  
चुके उसके गुण आज भी अभिगण पीत है। अघाते फिर भी नहीं  
अमन्त वह सौरभ है। अनन्त वह मकरन्द है। क्षीयता है वरबस मन  
का अपनी ओर !

मधुमय सौरभ का सोलुप रसिक मन खिच ही जाता है। बँध ही  
जाता है। विषय जा फँसता है। उनमें जो चारों ओर फैली हैं  
रसियाँ अतीत के सौरभ की मधुर मकरन्द की ओर बे मरे हुए  
अमिट रङ्गीनियाँ उर पर मरे हुए रेशम की फिसलन सङ्घ्या का  
अनुराग चिपक हैं। कितने पल-कोमल-आदश की मनमाहक मधुर  
तित्तिसियों के उस मकरन्द में !

‘दमयन्ती’ मैं उस ही चिरन्तन सौरभ का गायन कुछ अक्ष हो  
अमर मकरन्द का शामल कोई करण हो !

मैंने चिर-धम से सञ्चित किया है जिसे ! उसमें यदि मधु है  
सुवास है किञ्चित भी निश्चित ही इसका येथ उन्हें दूँगा मैं  
जिनकी पद चाप सुनकर मैं बढ़ सका इस दुगम पथ पर जिनका  
पद-न्धास सतत आमन्त्रित करता रहा है मुझे। उन अनुकरणीय श्री  
प्रभुदत्त जी स्वामी शास्त्री को और उन महाभाग राष्ट्रीय  
श्री मधिसोदरराज जी गुप्त को जिनके मधु-रस-सिक्त सत्काम्यों के  
आस्वाद से मेरा अकिञ्चन मन प्रेरित हुआ इस ओर !

हमयमी

॥

यदि सौरभ के इस अक्ष मे मकरन्द के इस कण से सङ्गुदय  
पाठकों का अनुरक्षित हुआ तनिक भी मन तो परम सन्तोष का  
अनुभव होगा मेरे मन को और मे अपने श्रम को समझूँगा सफल ।

श्याम शिवाय  
पौ० दौलता (मेरठ)  
शिव राशि बाबण  
सं० २ १३ वि०

ताराचन्द्र हारीश

आदरणीया  
स्नेहमयी जननी के करमलों में  
भय के ये संचित-वण  
सादर-समर्पित

अम्ब ! बहाती ओ-तुम नित नित—  
बिमल-स्नेह-का तिम्रु !  
उससे-ही ले, तुम्हें-समर्पित—  
ये, कषल दो बिन्दु !



## सर्ग सूची

सर्ग	पृष्ठ
प्रथम सर्ग	१
द्वितीय सर्ग	२१
तृतीय सर्ग	४१
चतुर्थ सर्ग	५८
पञ्चम सर्ग	८०
षष्ठ सर्ग	१८८
सप्तम सर्ग	११३
अष्टम सर्ग	१४४
नवम सर्ग	१६२
दशम सर्ग	२०१
एकादश सर्ग	२२८
द्वादश सर्ग	२४४
त्रयोदश सर्ग	२५५
चतुर्दश सर्ग	२७६
	f
	२८६



# शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		सोचना	सोचना
१६	१६	ब	ब
२२	२६	मैं	मैं
३४	१६	मरोखों	मरोखों
३५	१३	है	है
३५	१७	छिन्न	छिन्न
४५	२५	छिन्न	छिन्न
४५	२६	ही	ही
४५	६		
४७	२१	मैं	मैं
५१	२०	नल का	नल का
१११	११	कोल	कोल
११५	७	का	का
११७	२५	हा	हा
१११	७	पड़ेय	पड़ेय
२१४	१	बुलता	बुलता
२१७	१२	बीरवेनि	बीरवेनि
२२५	१	मज्जन	मज्जन
२३५	२५	है	है
२४२	१६ व २	सुखकर	सुख कर
२७१	१०		
२७६			

# दमयन्ती

## प्रथम सर्ग

धन्य, धन्य हे धन्य ! भरतसू तुम हो धन्या  
है, माँ ! तुमसी नहीं विद्व-में कोई धन्या  
सुकुट तुम्हारा हिमगिरि-से शोभित होता है  
पाद तुम्हारे म्वयं, धम्ब ! धम्बुधि गोता है,  
गंगा यमुना तुम्हें सन्य द्यामलता देती  
कोटि कोटि की तरण सदा माँ ! हा तुम खेती  
नर रत्नों से सकल-विश्व छाया माँ ! तुमने  
इसीलिए वसुमती नाम पाया माँ तुमने  
निया तुम्हीं ने जन्म बली मानी मानी को  
बिया तुम्हीं ने चूर, क्रूर-सल अभिमानी को  
तब-पुत्रों ने सकल विश्व-को पाठ पढ़ाया  
गर्त-पतित जो रहे, उठाकर उन्हें बढ़ाया  
कम्पित हाता गगन कि जिनकी हुंकारा-से  
निशिचर थे निष्प्राण धनुष की टकारों से  
धन्य ! 'दृष्वन्तो विश्वमायम्' ध्येय यही था,  
एकों अपि सत बहुधा जिनका श्रेय यही था,  
धाप्यारिमक्ता को तुमने ही पासा पोसा,  
सत्यं शिव सुन्दर का तुम रहें मरोसा  
बसता है पर, वन्द-वक्र यह नियति नियम है,  
होता सुख परिपूर्ण जब-कि तब दुःख का क्रम है,

पर-वचन-भाषण घरी-माँ । तुमने होकर,  
 काटा कितना कास बना जैसे रो-झोकर,  
 प्रगटी किन्तु विमृति तुम्हीं-से बह कल्याणी  
 बी करण-करण में व्याप्त हुई जिमकी शुभ-बाणी  
 सुन हम-से हुँकार, त्वरित सोते-से जागे  
 देखेगा धन व्योम कि हम हैं सब-स धागे  
 बिबला विष्व बढ रहा धन्य-मा हा दुष्पथ पर,  
 चमोंगे न हम भूल एक पद भी उस पथ पर,  
 मार्ग प्रदर्शन करें किरण धासा की बनकर  
 मैलें हम दुख स्वय दूसरों के तन तनकर  
 कर भव-सकट दूर भ्रान्ति के दूत बनेगे  
 भ्रान्ति निवारण-हेतु देश में भ्रान्ति जनैगे  
 हम होंगे जिस ठौर, वहाँ धन्याय न होगा  
 पर-शोषण-हित कटिल नष्ट दुःखाय न होगा  
 कही विद्व-में मनुज मनुज का नास न होगा  
 रचने को साम्राज्यबाध धर्म्याम न होगा  
 दुर्वस जन का सबस-हेतु ध्यायास न होगा  
 भूल-ध्यास-से कोई कही उदाम न होगा  
 कही स्वार्थ से सत्त्व-मों-का ह्रास न होगा  
 रक्त-तृपा के धमन-हेतु, दुर्गति न होगा  
 धाक्रन्दन धाक्रोश नहीं धन ठहर सबोंगे  
 धाधि-ध्याधि के मेघ नहीं धन धहर सबोंगे  
 हम कष्टक बन कभी न धटकें पर-हित जग-में  
 धीर धटकने नहीं धन्य-को बें निज-भग-में  
 कपल-द्वन्द्व का कहीं जगत-मे मेद न होगा  
 भोगने-मे धर्म-जन्तु, कुछ लेव न होगा  
 धरी जमनि ! सब रोम रोम भी रक्षित-हाया  
 स्वार्थ-प्रसिद्ध कुछ कार्य न धपना पक्षित होगा,

तापित-तप्त पर सुधा-शान्ति हम बरसायेंगे  
हमको निकट बिभोक दुखी-जन हरसायेंगे,  
दपध ! दपध ! माँ दपध, तुम्हारे इन थरणों की  
घर-कर शिर पर घूस सु-पावन प्रथ-हरणों की  
समस्त सौख्य को पाप पुन-निर्माण करेंगे,  
रीते-सेरे कोप जिन्हें हम शीघ्र भरेंगे  
कार्य-सिद्धि के लिए, न हम पर-मुख साकेंगे,  
जितना हा सुख दुख उसे उतना धाकेंगे  
मिज कायों-में धीर धीरता-सिये छुटेंगे  
रोक-सकेगा कौन ! तीर-से जिघर छुटेंगे  
घटकेंगे यदि विघ्न हमारे पथ-में धाकर,  
होंगे बननाचूर हमारी ठोकर साकर,  
हो सकट-से अस्त न हम कुछ भय-सायेंगे,  
सुनें सुजन-आस्थान कि जिससे जय-पायेंगे  
सदा सर्वदा यथास्कथा हम क्यों ! भूलेंगे,  
हों न दुख-में दुखी न हम सुख में फुलेंगे  
गिर जाता है मनुज विपद-के नद-में बहकर,  
वन-जाता है ज्योति बही कष्टों को सहकर  
नर-का रिपु अभिमान अम्य-रिपु कातरता है,  
सबस हृदय तब कहीं जहाँ-पर घातुरता है  
अपने-से भी अधिक सुखी-को सुख-में देखें  
अपने-से भी अधिक, दुखी-को दुख-में देखें  
तो जन फिर न अधीर रहे, अभिमान न होगा,  
धीर, धीनता सब महत-का, ध्यान न होगा,  
सुख-दुख पूर्ण-ध्यान सजोये यों-ही जाते  
सुख-प्रसिद्ध जन सदा उन्हीं-से सयम पाते,  
धम ! महाकवि व्यास ! प्रणति तुमको घत-स्तत है  
धन्य मन्मथो मुने ! तुम्हारी विश्वाहत है,

## धर्मयन्त्री

पर-वचन-भावय धरी-माँ ! तुमने होकर  
 काटा कितना कास बना जैसे रो-झोकर,  
 प्रगटी किन्तु बिभ्रति तुम्हीं-से वह कल्याणी  
 धी कण-कण में व्याप्त हुई जिमकी धुम-बाणी  
 सुन हम-से हुंकार, स्वरित साते-से जागे  
 देखेगा अब व्योम कि हम है सब-से जागे  
 विवक्षित विश्व बह रहा धध-सा हो दुष्पथ पर  
 चलेंगे न हम सुल एक पथ भी उस पथ पर,  
 मार्ग प्रदर्शन करें किरण छाया की बनकर  
 भेजें हम वृक्ष स्वयं, दूसरों के सन तनकर,  
 कर भव-सकट दूर भ्रान्ति के वृत्त बनेगे  
 भ्रान्ति निवारण-हेतु वेध में भ्रान्ति बनगे  
 हम होंगे जिस ठौर, वहाँ धन्याय न होगा  
 पर-शोषण-हित कुटिल चक्र दुःखाय न होगा  
 कहीं विश्व-में मनुज मनुज का दास न होगा  
 रखने को साम्राज्यवाद अभ्यास न होगा  
 दुर्धन जम वा सबल-हेतु आयास न होगा  
 भ्रूल-भ्यास-से कोई नहीं उगास न होगा  
 कही स्वार्थ से सत्कर्मों-का ह्रास न होगा  
 रक्त-गुण न धमन-हेतु, दुर्नास न होगा  
 भाकन्दन भाकरोन नही अब ठहर सकेंगे  
 भाधि-भ्याधि के मेघ नहीं भव बहर सकेंगे  
 हम कष्टक बन कमी न घटकें पर-हित जग-में  
 धीर घटकने नही धन्य-को वें निज-मग-में  
 कपण-बबेठ का कही जगत-में भेद न होगा  
 सौटाने-में धन्य-वस्तु, कुछ लेद न होगा  
 भरी जननि ! तब रोम रोम भी रक्षित-हागा  
 स्थाप-प्रमित कुछ कार्य न अपना सक्षित होगा,

सापित-तम पर सुधा-शान्ति हम, धरसायेगे  
हमको निकट विलोक दुखी-जन हरसायेगे  
क्षपय ! क्षपय ! माँ क्षपय, तुम्हारे इन चरणों की  
धर-धर धिर पर धूस सु-पावन भय-हरणों की  
समस्त सौम्य को पाप पुन-निर्माण करेंगे  
रीते-सेरे कोप जिन्हें हम क्षीघ्र भरेंगे,  
काय-सिद्धि के लिए, न हम पर-मुख तार्क्ये,  
जितना हा सुख दुख उसे उतना धाँकेंगे  
निज कार्यों-में धीर धीरता सिये छुटेंगे  
रोक-मकेगा कौन ! तीर-से जिधर छुटेंगे  
घटकेंगे यदि विघ्न हमारे पथ-में धाकर,  
होंगे धकनाचूर हमारी ठोकर साकर  
हो सकट-से भस्त न हम कुछ भय-सायेगे  
सुनें सुजन आख्यान कि जिससे जय-पायेगे  
सदा सर्वदा यद्यत्कथा हम क्यों ! सुनेंगे  
हों न दुख-में दुखी, न हम सुख में फरेंगे,  
गिर जाता है मनुज विपद-क नद-में बहकर,  
बन-जाता है ज्योति बही कष्टों को सहकर,  
नर-का रिपु भूमिमान भन्य-रिपु कातरता है,  
सबस हृदय सब कहाँ जहाँ-पर धातुरता है  
अपने-से भी अधिक सुखी-को सुख-में देखें  
अपने-से भी अधिक दुखी-को दुख-में छेड़ें  
तो, जब फिर न अधीर रहे, भूमिमान न होमा,  
धीर, धीनता तथा महत्-का ध्यान न होगा  
सुख-दुख पूर्णस्थान सजाये या-ही जाते  
दुःख-प्रसिद्ध जन सदा उन्हीं-से सबस पाते,  
धन्य ! महानभि ध्यास ! प्रणति तुमको दत्त-दात है  
धन्य मेखनी मुने ! तुम्हारी विस्वास्त है,

भर अपूर्व भण्डार, भारती-माँ-का तुमने  
पाया अतुलित-प्यार, भारती-माँ-का तुमने,  
गूँज रही सर्वत्र सुधा-सिञ्चित तब दारणी  
करे प्रमाणित कीन ! कि वह किसनी कस्यारणी,  
है मुझमें सामर्थ्य कहाँ ! कुछ-भी कहने की  
सेव ! किन्तु है शक्ति न जो चुप भी रहने की

कुटिल बल में जब कल्पति ने पाण्डव फाँसे  
इन्द्रप्रस्थ से घुसा बिसाये-उनको पासे  
या दुष्कारण हुआ वही भारत-बीड़ा का  
मिला धर्म-को कुपल दूत की बुद्धीदा का  
मरी-सभा-में गई कुनाई फिर पाण्डासी  
बहरी दुःख की घटा गगन-में घिर घिर काली  
या कल्पति आदेश गये-फिर पाण्डव बल में  
अह ! भारत-सम्राट बने-याचक-से क्षण-में  
दुःख-में देती छोड़ भिन्न कैसे सतियों-के  
अतः द्रौपदी सग-गई अपने पतियों-के  
या नूतन अभ्यास विपिन की भारी बाधा  
जैसे जैसे बना धर्म ने निज-को साधा  
पर अनुजों-को देव व्यथित ही वे वे रहते  
सुनते विविधाख्यान वहाँ ऋषि मुनि जो कहते  
भोजन था फल-जन्तु सुमि-वर ही सो जाना  
पटे-पुराने वस्त्र धीर दाखण दुःख-नाना  
सुनकर ये सब दुःख युधिष्ठिर-सौम्य अतुल-के  
पहुँच गये बृहदश्व पुरोहित-पाण्डव-कुल के  
या नृप-मे सत्कार, सुनायी बहुत कथायें  
सुन समयोचित बचन विगत कुछ दुर्ग व्यथामें,

धर्मराज ने कहा—हाय ! मेरे ही कारण,  
 तमो-का सा वेश द्रौपदी करती धारण,  
 और अनुज ! उस विद्या जिन्होंने बल-से जीती,  
 भीम पाश सहदेव नकुल पर यह क्या-थीती,  
 व्याकुल नृप-को देख पुरोहित बोले-ऐसे,  
 होते कहीं अभीर भसा ज्ञानी तुम जसे,  
 जब हम सब-से भिन्न स्वय-को जग-में पासे  
 तन्य ग्रहम् के भाव, तमो घिर-घिर कर आते  
 प्रति-विपन्न-को देख, करो ! अपना दुःख-धीमा,  
 भूप ! विद्व-में कहीं न है, दुःख सुख-की सीमा

‘किन्तु देव ! दुर्वच-ग्रस्त, क्या-मुग्धता-पापी—  
 रहा विश्व-में कहीं अभागा—विपन्न-वितापी”

“भूप ! विश्व-में नहीं, तुम्हारे इसी वेश-में,  
 तुमसे ही सजाट, रहे-ओ इसी वेश में,  
 विषु-बन्धी नलराज, माम्य-के खाकर भटके,  
 वर्ष-चतुर्दश इसी भाँति बन-वन-में भटके’

“इनसे तो मल हुए, रही मुग्धता क्या-कोई,  
 हाय ! अभागी कहीं द्रौपदी कहकर रोई”

“भद्रे ! तुमसे अधिक दुःखी देखी दमयन्ती,  
 मारी मारी फिरा, विपन्न-ग्रस्ता गुरुबन्ती,



किन्तु विपन्न भय चमिन दुखों-से मार्ग न सोझा  
जो भी प्रण कर-लिया न फिर उत्तस मुँह मोझा  
जिज्ञासा जब धीर बड़ी देखी कपला-की,  
पूरा सुनाई कथा विगत जिससे तपला की  
सुनकर यह आश्चर्य हुआ उनका मन हमका  
समझ अपने से भी अति-दुख नृप-ने नल-का  
उसी कथा-को आज यहाँ मैं बसा सुनाने  
करने जिज्ञा पूत धीर मन-में सुख पाने  
विज्ञ-जनों के बचन ग्रहण कर जहाँ-तहाँ-से  
गूँथ-दिये ये सुमन लिय जो-मिले जहाँ से  
यद्यपि य निर्गन्ध हुए मेरे धूने-से  
किन्तु हुए जो मनुज विपद मे पड उने-से  
पढ़कर यह आश्चर्य अभाव भरे, यदि उनका  
हूँगा-मैं कतकरय बुझौष हरे यदि उनका  
दो पद भी वे-सके विपद-मे कही सहाय  
तो-समझूँगा तभी सफल श्रम अपना सारा

दुखद दिन वे जीत-के अब गत-हुए,  
जी उठे-मे बल जो-ये हत-हुए,  
घा-गया अतुराज अब सर्वत्र है,  
छा-गया सुख साज अब सर्वत्र है  
शीत-हृत सब-पत्र जो थे छुट-गये,  
सुखद शाली हाथ ! जो थे छुट गये  
कोपसे उनमे निकसने अब सर्गों  
सुप्त-सी बहु शक्ति उन सब की अगी  
विविध-विवि नव-यस सभी धारण-किये  
बेध हैं य सब असाधारण किये

मृत्स्वर्ग पुष्पो-महिम कैसे रहे  
 सौम्य इनका आज कोई क्या - बहे  
 वे चर्मी उस घोर खिलने को कभी  
 य इधर बत्सी मुमग्जित हैं भनी  
 आज-भारे मुखद उत्सुक हो-रहीं  
 आज सब मालिन्य अपना सो-रही  
 ज्यों वियागिन प्रियतमायम सुन घहा  
 हा मुमग्जित और मुद-पानी महा  
 ये इधर बञ्चुन अशोक उधर-लड़े  
 नाम-के अनुत्प ही हर्षित बड़े  
 वे-सताएँ बेचिटा कर वक्ष-से  
 हैं रसास लड़े-हुए, वर कदा-स  
 प्राप्त रात मुहाग-सी रस-भूटत  
 प्रम-के वधन मुहक कब ! दूते  
 छू रहे उस घोर नम को गाढ़ हैं  
 मा-म्बय ये मोन-नम-की भाड़ हैं  
 इधर धतपत्री कदमियों से धिरी,  
 सग रहीं मानों घटा विधु-पर फिरी  
 केतु-सा सहरा रहा है केनकी  
 बाढ़ रसक-मी लड़ी है धत-की  
 मम्पिका यह माषवी चम्पा वहीं  
 सूषिका वासन्तिका कुम्भक यही  
 बाटता यह, इधर गन्ध कदम्ब है  
 पर, न दुग्गोचर कही कटु-निम्ब है  
 स्वर्ण-जाति सुवापिकी मण्डक लड़  
 माषवी-मुठ, कर्णिकार मुदित - बड़े  
 विविध-तर परिपूर्ण सुन्दर-स्थान है  
 क्या न होता जब कि राजोद्यान है

पुष्प फल भर-वृक्ष जितने हैं यहाँ  
 दृष्टि-यथ धन्यत्र प्रायगे कहाँ  
 क्यारियाँ मेंढों-सहित जो तन रही  
 धीर भी नव-भव-कुसुम वे जन रहीं

विविध-कृत्या मध्य इनके वह रहीं  
 सीपका उद्यान को जो रह रहीं  
 बीच में वह एक सर सु-विशाल है  
 तन रहा इसीवरी का जान है  
 नीम-नीरज है कहीं है सित वही  
 कुमुदिनी हैं युव मरी खोमित यही  
 पक्षों-से भङ्ग रहा मकरन्द है  
 पान जिसका कर रहा अति वृन्द है  
 चतुर्विध सोपान सर-के भङ्ग रहे  
 अरम हैं बहु-भूत्य जिन-पर जङ्ग रहे  
 यत्र तत्र सुमंथ विद्यामार्ग है  
 बढे जिनपर मनुष्य धर्मात् है  
 बैठकर रथ-पर विवाकर आ-गये  
 कर-निकर सर्वत्र जिनके छा-गये  
 क्षिप्त-उठे उत्पन्न अतः पक्ष में सभी  
 अनिज प्रेरित ऊर्मि धासी है कभी  
 घोस के वे विग्रह, पत्रों-पर पड़े  
 हार-मे मानों-कि मुक्ता है जड़े  
 मुदित-पिक्-का छिड़-गया वह गान है  
 दे-रही बिहगावसी यह तान है  
 हस-गए मधु-गान करता आ गया  
 वह जिसे निज प्राप्य प्रिय-सर पा गया

कर रहे कस-केसि फल-जलधर सभी  
 आ रहे, बसकर इधर कुछ है धमी  
 क्या-हुआ । यह-सब जमा-है रग क्यों ?  
 दीन - पड़ती प्रकृति भी स उमङ्ग यों  
 दे रही किस मध्य का सत्कार—यह,  
 और । स्वागत-का उचित आचार—यह,

निकल कर उस ओर । पुष्प निकुञ्ज-से  
 परम-सुन्दरता-भरे, उस पुष्प से  
 आ रही इस ओर, जो वाला बसीं  
 सब गई इस हेतु, सब रगस्थसीं  
 ये सभी सज्जित मनोहर-वेश से  
 हैं सु-शोभित स्कन्ध सब-के केश से  
 भग रहा ज्यों स्वर्ग को तबकर कही  
 देव-वाला भूल आ-मटकीं यहीं,  
 मध्य इनके आ रही, जो सुन्दरी  
 है यही सविशेष सब-से श्रुति-भरी  
 हरित-पट शोभा बढ़ाते गात्र - की  
 उचित सूपा - भी यही इस पात्र - की  
 बैद्य बढ़कर स्पष्ट कटि-का कर-रहे,  
 पक्षों के-दर्प को दृग हर रहे,  
 छू-रहे हैं कृष्ण-रुग युग-कर्ण को,  
 वरुण—सज्जित कर-रहा है स्वर्ण—को,  
 नाक, धुक-सी, पदन-मध्य रदावली,  
 मर रही ज्यों धुक्कि-में मुक्तानवली,  
 विद्युत् परम-मनोम, विस्तृत भास है,  
 आक्षिप्त-धर, पद्म-का घन भास है

पुण्य फल वर-वृक्ष जितने है यहाँ  
 दृष्टि-पथ धन्यत्र आयेंगे कहीं  
 क्या-रियाँ में-हों-सहित जो तन रहें  
 धीर भी नव-नव-कुसुम व जल रहें

विविध-कृत्या मध्य हमके बह रही  
 सींचकर उद्यान को जो रह रही  
 बीच में बह, एक सर सु-विशाल है  
 तन-रहा इन्नीवरों का वास है  
 नील-नीरज है कहीं है सित कहीं  
 कुसुमिनी है मुव भरी शोभित यही  
 पकड़ों-से भङ्ग रहा मकरन्द है  
 पान जिसका कर रहा अलि वृन्द है  
 चतुर्दिक् सोपान सर-के घट रहे  
 अदम है बहु-मूल्य जिन-पर जक रहे  
 यत्र तत्र सुमय विद्यामार्ग है  
 बैठे जिनपर मनुष्य धर्मात्मा है  
 बैठकर रत्न-पर दिवाकर आ-गये  
 कर-निकर सर्वत्र जिनके छा-गये  
 मिस-उठे उत्पल अतः पल मे सभी  
 अनिम प्ररित ऊर्मि आती है सभी  
 ओस क व विन्दु, पत्रों-पर पड़े  
 हार-में मानों-कि मुक्ता है जड़े  
 मुदित-पिक-का छिड़-गया यह गान है  
 दे रही विहगावसी यह तान है  
 हस-भाण मधु-गान करता आ गया  
 बह जिस निज प्राप्य प्रिय-सर पा गया

कर रहे कस-केलि दस-जसवर सभी  
 आ रहे बलकर इधर कुछ है अभी  
 क्या-हुआ ! यह-सब जमा-है रग क्यों ?  
 दीख पड़ती प्रकृति-भी स - उमङ्ग यों  
 दे रही किस भव्य का सत्कार—यह,  
 धीर ! स्वागत-का उचित आचार—यह,

निकल कर उस घोर ! पुष्प निकुञ्ज-से  
 परम-सुन्दरता-भरे, उस पुष्प - स  
 आ रही इस घोर, जो बामा जसी  
 सब गई, इस हेतु, सब रगस्थनीं  
 ये सभी सज्जित मनोहर-बस स  
 है सु-सोमित स्वन्य सब-के केश से,  
 मग-रहा ज्यों स्वर्ग को तजकर वहीं,  
 देव-वाला भूल, आ-भटकीं यहीं,  
 भव्य इनके आ रही, जो सुन्दरी,  
 है यही सविशेष सब-से श्रुति-भरी  
 हरित-भट शोभा बढ़ाते गात्र - की  
 उचित सुपा - भी यही इस पात्र - की  
 केश बढ़कर स्पष्ट बटि-का कर-रहे,  
 पकजों के-दर्प को दृग हर-रहे,  
 छू-रहे हैं कृष्ण-दृग भुग-कर्ण को,  
 धर्ण—सज्जित कर रहा है स्वर्ण—को,  
 नाक, शुक-सी, बदन-मध्य रदावली,  
 भर रही ज्यों श्रुति-में मुक्तावली,  
 त्रिबुक् परम-मनाज, विस्तृत मात है,  
 धलियों-पर, पहल-का धन प्राप्त है,

पुष्प फल कर-बुल जितने हैं यहाँ  
 दृष्टि-पथ प्रत्यक्ष धायगे वहाँ  
 क्यारियाँ मैदों-सहित जो तम रही  
 और भी मक-मक-कुसुम वे जन रही

विविध-कृत्या मध्य इनके बह रही  
 सीपकर उद्यान को जो-रह रहीं  
 बीच में वह एक सर सु-विशाल है,  
 तन रहा इगदीबरोँ का जाल है  
 नील-नीरज है कही है सित कही  
 कुमुदिनी है सुद भरी शोभित यही  
 पकजों-से मङ्ग रहा मकरन्द है,  
 पान जिसका कर रहा अलि वृन्द है,  
 चतुर्विध सोपान सर-के भङ्ग रहे  
 प्रथम है बहु-भूत्य जिन-पर जङ्ग रहे  
 यत्र तत्र मुमंज विद्यामार्ग हैं,  
 बैठते जिनपर मनुष्य भ्रमार्थ है,  
 बैठकर रथ-पर विधाकर धा-गये  
 कर-निकर सर्वत्र जिनके छा-गये  
 जिस-उठे उत्पन्न अतः पल में सभी  
 अमिष प्रेरित ऊर्मि आती है कभी  
 घोस के व बिन्दु, पत्रों-पर पड़े  
 हार-म मानों-कि मुक्ता है जड़े  
 मूषित-पिक्क-का छिड़-गया वह गान है,  
 वे रही बिहगावसी यह शान है  
 हस-गण मधु-गाम करता आ गया  
 वह जिसे निज प्राप्य प्रिय-सर पा गया,

कर रहे बल-केलि बल-जलधर सभी  
 आ रहे, बलकर इधर कुछ हैं सभी  
 क्या-हुआ । यह-सब जमा-है रंग क्या ?  
 दीख पड़ती प्रकृति भी स - उमङ्ग यों  
 दे रही किस मध्य का सत्कार—यह,  
 धीर । स्वागत-का उचित धावार—यह,

निकल कर उस धोर । पुष्प निवृञ्ज-से,  
 परम-सुन्दरता भरे, उस पुञ्ज से  
 आ रही इस धोर, जो वाला चसी,  
 सज गई इस हेतु, सब रंगस्पर्शी,  
 ये सभी सज्जित मनोहर-वेदा से  
 हैं सु-शोभित स्कन्ध सब-के केश से,  
 सग रत्ना ज्यों स्वर्ग - को तजकर कहीं  
 देव-वाला मूल आ मटनीं यहीं,  
 मध्य इनके आ-रही, जो सुन्दरी,  
 है यही सविशेष सब-से श्रुति-भरी,  
 हरित-पट घोभा बढ़ाते गात्र - की,  
 उचित भूषा - भी यही इस पात्र - की,  
 केश बढ़कर स्पष्ट कटि-का कर रहे,  
 पकजों के-दर्प को हग हर-रहे,  
 झू-रहे हैं कृष्ण-हग मुग-कर्ण को,  
 बर्ण—सज्जित कर रहा है स्वर्ण—को,  
 नाक, धुक-सी, बदन-मध्य रदाबली,  
 भर रही ज्यों धुक्कि-में मुक्ताबली,  
 पितुक्त परम-भनाश, विस्तृत भास है,  
 अक्षियों-पर, पहल-का घन जास है,



ददल कर परिधान मञ्जुश्रीनी धा  
देख उनको स्वयं सुपमा हीन थी

बास काले-ध्यास मे फटकार कर  
मेनहर परिधान उन पर धारकर  
नाम के अनुपम मञ्जुश्री-वेदिनी  
कह उठी मधु बधन धामी-वेदिनी  
आसियो । प्रस्ताव मेरा है धमी  
पुष्प आभूषण रखें आभो । सभी  
फिर कुमारी को उन्हें पहनायगी  
स्वर्ग का यों सुमन मू पर लायेंगी,  
देखना । फिर धमरपुर से सुर-सभी  
वदनोत्सुक आयेंगे इसके धमी,  
विद्व मे ऐसी अहा फिर सुन्दरी  
खोजने मे भी न पाये दृष्टिभरी  
दृष्ट-गुणित हो जायगी यह रूप - सी  
स्वर्ण में दृष्टि-बास मानो आ बसी  
मुस्कुराकर कृटिम भू-धनु तानकर,  
वेदिनी को मलय धपना मानकर,  
भीमबा रोके लहर जब तक कहीं,  
इधर पारित हो गया प्रस्ताव ही,  
कुसुम गण पर धस पड़ी कुसमाङ्गुली,  
धध सगी मासा बनाने के मसी,  
भीमबा साग्रह अहा, साई गई  
पास पर ही विषय घेटाई गई,  
काम ही छा दी, गले में सज - अहा,  
कर, उरोज-स्पर्श पुष्प हृदि-महा,

मत-नयन शुचि-वदन उसको हेरकर,  
मुदित आसी जान में यह । घेर कर,  
दिव्य मञ्जुल साज से सज्जित किया  
सब स्वयं रति - को कहा । सज्जित किया  
गुंथ गये जब कुसुम बेणी-पाश में  
छिटक-से तारे गये आकाश में  
अर्कजा दीपावली से सोहती  
अगमगती ज्योति, मन को मोहती  
शान्त विष यह विषधरों का हो गया  
निशा का वीहङ्ग तिमिर भी खो गया  
कर्ण गुण में भूमके भूमे भले  
साथ ग्रीवा के स्वयं ही जो चले  
हक लिया यौवन गले के हार ने  
की सुशोभित आह वीणा तार ने  
तनिक पहले पुष्प जो उद्विग्न थे,  
सदा से अपनी हुए वे भिन्न थे  
मुस्कराते थे वही अब हर्ष से  
सुख नहीं मिश्रता किसे ! उत्कर्ष से,  
काष्ठ की वे सब सदा थीं कण्टकित  
अब मिली थी हेम की कांटों रहित,  
ककणों से कर मुगल बोझिल हुए,  
कमल थे शवाल से ओझिल हुए,  
क्षीणता की ओर जो जो भी भुंकी,  
कटि वही अब परधनी से बँध रकी,

सब गई आपा-अपन भूष मन्दिनी,  
घर कुसुमाभरण बन-देवी बनी,

हो गई धब द्विगुण वासन्ती - छटा  
 मोद भर आने सगी अति गण-भन्ना,  
 आभियाँ उनको सगी तब बार ने,  
 पर विषय अति गण किया था प्यार ने  
 ज्योति उसकी देखकर सुपमामयी  
 ध्यान होता सज्जता रति आ गई

केशिनी बोली कि देखो इन्दु को  
 लहरते सौन्दर्य के इस सिंधु को  
 अदृष्टिमा मे पूर्ण मोम कपोल य  
 हैं रचे विधि ने स्वयं रस धोल य

माम्यशास्त्री कौन । वह होगा धरे ।  
 मनुज ही जो, सुर-सुधा सेवन करे,  
 पर न यह मानव धमर का मोम्य है  
 मनुज कोई भी न इसके योग्य है,  
 रत्न जब यह, विश्व को विधि ने दिया  
 तो न इसके योग्य क्यों मानव किया  
 बार वेता, प्राण जो इस पर यहीं  
 गव करता माम्य पर, जानो सही ।  
 भूमता-मानन गुराई से भरा  
 स्वर्ग से सविद्या होती यह धरा,  
 दूसरी सक्ति - बात यों कहने भगी  
 केशिनी । किन्तु धोर तुम बहने सगी  
 सोचकर तुमने कहा कुछ भी नहीं  
 क्या न इसके योग्य - नर कोई कहीं,





है यथा अपनी सखी वर-रूपिणी,  
 सुने हैं—रथों - रूप के नम - भी धनी  
 भ्राता - सखि ! उनसे धरर सम्बन्ध हो  
 तो - अवश्य सुखों में सद्गन्ध - हो,  
 जा मिले अस-बाहिनी-सी सिन्धु - से  
 चाँदनी-सी शुभ मोहक इन्दु - से  
 उबर - हों नमराज भी कृतकृत्य तो  
 और, जायेंगे इसी के भूत हो,  
 समझ सो इच्छा कुमारी की यही  
 किन्तु, श्री-भक्त - से कहेंगी ये नहीं,  
 लीलाकर, नृप-नन्दिनी से बढ़ उमी,  
 क्रोध का भावरण-सा मढ़कर सभी  
 कर बढ़ा—बाहा कि मैं पकड़ूँ इसे  
 धृष्टता का बण्ड वूँ जकड़ूँ इसे  
 हट गई, वह दूर, किन्तु सुहासिनी,  
 रह गई नृप-सुता विप्लवायासनी  
 विविध बातें फिर वहाँ चलने लगीं  
 किन्तु, वह हस्ताप से असने लगी  
 भी प्रथम - भी बात यह, उसने सुनी,  
 परम सुन्दर मन, कि - हैं अति ही गुणी,  
 कर्ण-भुग में वाक्य यह गुंजा - किया  
 समझने जिसने न कुछ उसको दिया,  
 'भ्राता - सखि ! उनसे धरर सम्बन्ध हो  
 तो, अवश्य सुखों में सद्गन्ध हो'  
 हों मुझे वे प्राप्त अब किस रीति से,  
 फल निकलता कुछ न अदृष्ट प्रीति से,  
 भेन यदि उनसे कहीं होती भ्राता !  
 तो, कठिनाता फिर न यह पायी भ्राता,

किन्तु, मुझको वे न यदि स्वीकृत करें,  
 हो दयासु, न वेदना मेरी हरे,  
 तो चरण मे पकड़ भूगी दौड़कर  
 प्रार्थना सविमय करूँ कर-जोड़कर  
 पर, न मुझसे कस्य यह होगा कभी  
 क्यों कि ऐसे साज जायेगी सभी  
 हाय ! पर क्या साज है कुस की यही  
 ध्यान जो मैं यों पुरुष का कर रही  
 प्रार्थ-कन्या कस्य कब ऐसा करें !  
 ध्यान वे जिसका करें, उसको बरें,  
 भक्त सावित्री विपद-नद में वही  
 प्राप्त ही वे सत्य को करके रखी  
 कर चुकी अनघोर तप गिरिनन्दिनी  
 और, हर-ध्यानस्थ की बामा बनी  
 ध्यान केवल चित्त में जिसका किया  
 भक्तता उसको उन्होंने बर सिमा  
 वे न मित्र-सकल्य से बिच्छित हटी  
 साख-बाधायें यद्यपि पथ में डटी  
 सोचना सर्वस्व अपना है जिसे !  
 क्यों न ! फिर सोचूँ कि सौपूगी किसे !  
 और, फिर जब साधने की उचित है  
 उचित ही सब चिन्तन मे अनुरक्त है  
 ध्येय को मैं भव न यदि पाऊँ कहीं,  
 पापिनी तो तब गिनी जाऊँ सही  
 माग सावित्री दिखाना हमको गई,  
 जो स्वयं नीचा दिखाना यम को गई  
 मारि का जग में पतिव्रत घम ही  
 है परम सुपण, तथा शुभ कर्म ही,

यही तो जननी सिखाती नित्य है  
 नारियों का धर्म, पातिव्रत्य है  
 ईश ! वो सब शक्ति निज पथ पर बटू,  
 चिन्मय अपना प्राप्त ही करके हटू,  
 एक बस निषेध मेरे नाथ - हों  
 आज मेरी सब उन्हीं के हाथ हो  
 बर लिये निषेध निदधम ! बर लिये  
 अनुचरी मैं देख वे निज कर लिये  
 राक सब कोई ! मुझे सक्ता नहीं  
 देख ! अब तुम छुट न आ सकते कहीं  
 हे प्रभो ~ ! बर दो सफल हो कामना  
 विघ्न सब हट जाय, हो यदि सामना  
 इष्ट यदि यम को परीसा हो कभी  
 सज्जता हो, तो मित्तू सम्पुञ्ज लड़ी,  
 भाव नाना वेग से मों ही चले  
 कौम ! जग में कल्पना न जिसे छूने

"सोच तुम नम को रही हो क्या सखी !  
 प्रेम - नद में बह गई हो, क्या सखी !  
 पुण्य थप किटना घरी ! हमने किया  
 सब कहा ! किसको हृदय तुमने दिया,  
 हाथ पर धर बिबुध बोली केसिनी  
 चौक सब छुड़ा गई, बर-वेसिनी,  
 स्वस्थ सी हो भीमजा बोधी तभी,  
 सुधा भी, सखि दयण में, योमी तभी  
 भाव निज मन के तिरोहित थे किये,  
 प्रियतमा करती न क्या ! प्रिय के लिये"



हे सखी ! यह हंस देखो तो सही  
देखती अब तक कि मैं जिसकी रही  
हैसनी उस ओर जाती बौढ़कर,  
धीरे, यह इस ओर जाता मोढ़कर  
दे रहा इस भाँति उसको कष्ट है  
क्या कहूँ, किताना घरी ! यह घुष्ट है  
सोचती - भी पित्त में वारूँ इसे !  
केशिनी ! कुछ दा भुम्मे मारूँ इसे'

'दृश्य यह सखि ! छोड़ ब्रीडा देखसो !  
हस दम्पति की सु - ब्रीडा देखला !  
सीखलो अबसर निकल फिर जायगा  
फिर न शिखर बालि ! ऐसा पायगा  
प्रेम का यह खेल बालि ! न बय्य है,  
देखलो ! इस युगल का मुद स्पष्ट है  
है पुराणे ! नियम यह अभिसार का  
मौन है सकेत स्वीकृत प्यार का'

बाठ कैसी भी कहे कोई कहीं  
भड़क बेती बकतूठा तुम हो वहीं  
पुप रहो, बनने पसी हो पण्डिता  
बोलने तक का न सुमको है पठा  
घर पसो ! अब बहुत ही दिन बढ़ गया  
देखसो रवि रथ कहाँ तक बढ़ गया  
बल पडी यों भीमजा, कहकर तमी,  
साथ ही मलियाँ - बमी, उसकी समी

युक्ति उसकी काम सहमा कर - गई  
 वह विनोदामृत सरित रीकी नई  
 पूर्ण कर देवाचना माता - जहाँ—  
 सोल्युका बैठी सुता पहुँची - वहाँ  
 विनय-स निज - अम्ब पद - युग परस-कर,  
 पा - लिया आशीष शुभ कल्याण कर,  
 छिड़ा सुखदासाप आशा-सी जगी,  
 अम्ब-पद बैठी उमा मम वह - सगी  
 फल विस्तरे बाध सहसा अब उठ—  
 सुन बिन्हें, सब दास दामी सब उठे  
 'दान्त' 'दम' युग अनुज को अनुगत किसे  
 कष्ट में, सुस्मित दमन ने पद दिय  
 देव ही सिन्धु - रूप - भर मानो आहा—  
 आ - गय हों नेत्र सुख वासी महा  
 मुक्त गये माँ पदों में तीनों भरे !  
 मुक्ति - माँ ने अक - में तीनों भरे,  
 प्राप्त थी तिलोपणा प्रत्यक्ष सी  
 साधना - सम्पूर्ण दिव्य समस्त सी  
 निकट - बैठाये, कथन कर 'शत जियो'  
 मार्ग दुभ हो और सोस्यामृत - पियो  
 पूर्ण थी अब - सभी - को निर्य - क्रिया  
 ध्याम फिर सब ने स्व कार्यों में दिया,  
 'नृप सुता' अस्वस्य सी, हृद या हिंसा,  
 आज नूतन पाठ जो वह या मिला,  
 प्रेम नद मन - में हिसोरें या सिये,  
 और वह, असफल-नियंत्रण जो किये,

## दमयन्ती

तब-से पोछे दमयन्ती - को देखा सदा उदास  
 अभी न उसके चन्द्रानन-पर मिला पूव-सा हास  
 झिझा-कसित देख हंसों-को, सुनकर पिक-का गान  
 तूत्य मयूरो का करता था कुछ परिवर्तित ध्यान  
 किन्तु, सिपाये सदा - रही  
 धपती पीड़ा थाप सही  
 किन्ने धनेक प्रयत्न धकी—  
 किन्तु न प्रिय को सुला सकी ।

## द्वितीय सर्ग

“नियम” नामक यह विस्तृत वेद्य  
 जहाँ-से है दुःख दूर अक्षेप  
 दिनों-दिन होती जाती वृद्धि  
 खेसती चारों ओर समृद्धि,  
 न होता दृग्गोचर जन-जनान्त  
 सभी हैं, शिष्ट, शान्त सन्मान्त  
 सभी के नीति-वृद्धि-युत-काय  
 यहाँ - पर सिद्धा है अनिवार्य  
 धर्मिक, करते हैं, यम भी-तोड़  
 सगाकर ध्रुव परस्पर होइ  
 और धन पाते हैं पर्याप्त  
 कि-जिससे उन्हें, सभी सुख प्राप्त  
 योग्य है कपको-का समुदाय  
 करे वह, स्वयं स्व-सौख्य उपाय  
 भूमि-से उपजाते जन-धान्य  
 सभी जन, इन्हें समझते मान्य  
 न इनको कभी सताती ईति  
 न मृग-से भी है ऐसी भीति—  
 कि कल को वह भगा सू-धीम  
 और, हम रह जायेंगे दीन  
 उपज-का दधम - धरा वे धम्म,  
 नृपति-को देते सदा प्रसन्न  
 राष्ट्र हितकारी उसको मान—  
 मुदित हो भेत सूप महान,

तब-स पीछे वमयस्ती को, देखा सदा उदास,  
 कभी न उसके चन्द्रानन-पर मिला पूब-सा हास,  
 श्रिया-कलित देस हंसों-को सुनकर पिक-का गान  
 नृत्य मयूरो का करता था, कुछ परिवर्तित ध्यान  
 किन्तु, छिपाये सदा रही  
 अपनी पीड़ा भाप सही  
 किये अनेक प्रयत्न बकी—  
 किन्तु न प्रिय को भुसा सकी ।

## द्वितीय सर्ग

“निपष” नामक यह विस्तृत देश  
 जहाँ-से है दुख दूर अक्षेप  
 दिनों-दिन होती जाती वृद्धि  
 खेसती चारों ओर समृद्धि  
 न होता हमोचर जन-कसान्त  
 सभी हैं, शिष्ट छान्त सभ्रान्त  
 सभी के नीति-बुद्धि-युत-कार्य  
 यहाँ पर धिछा है अनिवार्य  
 धमिक करते हैं, धम जी-तोड़  
 लगाकर खून परस्पर होड़  
 और धन पाते हैं पर्याप्त  
 कि-जिससे उन्हें, सभी सुख प्राप्त  
 योग्य है कपकों-का समुदाय  
 करे वह, स्वयं, स्व-सौख्य उपाय  
 भूमि-से उपजाते धन-धान्य  
 सभी जन इन्हें समझते मान्य  
 न इनको कभी सतासी ईति  
 न मृप-से भी है ऐसी भीति—  
 कि कस को वह लेगा भू-धीन,  
 और, हम रह जायेंगे दीन’  
 उपज-का यक्षम धरा वे धन,  
 मृपति-को देते सदा प्रसन्न  
 राष्ट्र-हितकारी उसको मान—  
 मुदित हो छत भूप महान,

तब-से पीछे दमयन्ती को देखा सदा उदास  
 कभी न उसके चित्रानन-पर मिला पूव-सा हास,  
 झीड़ा-कमिल देस हसों-को सुनकर यिक-का गान  
 नृत्य मयूरो का करता था कुछ परिवर्तित ध्यान  
 किन्तु छिपाये सदा रही  
 अपनी पीड़ा आप सही,  
 किये अनेक प्रयत्न वही—  
 किन्तु न प्रिय को सुसा सकी ।

## द्वितीय सर्ग

"निपण नामक यह विस्मृत देश  
 जहाँ-से हैं दुख दूर अशेष  
 दिनों-दिन होती जाती वृद्धि  
 खेलती चारों ओर समृद्धि,  
 न होता दृग्गोचर जन-कलान्त  
 सभी है, सिष्ट धान्त सभ्रान्त  
 सभी के नीति-बुद्धि-भुत-काय  
 यहाँ - पर चिन्ता है अनिवार्य  
 धर्मिक, करते हैं, धर्म जी-शोक  
 लगाकर सब परम्पर होड़  
 और जन पाते हैं पर्याप्त  
 कि-जिससे उन्हें, सभी सुख प्राप्त  
 योग्य है कर्पकों-का समुदाय  
 करे वह, स्वयं स्व-सौख्य उपाय  
 भूमि-से उपजात धन-धान्य  
 सभी जन इन्हें समझते माम्भ  
 न इनको कभी सताती ईति  
 न नृप-से भी है ऐसी नीति—  
 कि कस को वह लेगा भू-धीन  
 और, हम रह जायेंगे दीन'  
 उपज-का दशम - अष्ट व अन्न,  
 नृपति-को देते सदा प्रसन्न  
 राष्ट्र-हितकारी उसको - मान—  
 मुदित हो सत भूप महान,



उभी-से विविध माध-मामान  
 उह करते-वे निस्थ प्रदान  
 राज्य-मे विस्तृत कृत्या जास  
 धीर निमित्त है कृप-विशाल  
 सिचाई-का करत ओ-काम  
 घने-है कही सुख्य पाराम  
 दीज सब नब देकर प्रति-वर्ष  
 राज्य कपि-का करता उत्कर्ष  
 राजपथ आते-हैं सब धीर,  
 धिरे-तछ्मों-से जिनके छोर  
 घनावालय वे शिक्षा मय  
 जहाँ खिलते अमिनव शिशु पय  
 सैन्य-सिखा भी है, अनिवार्य  
 सभी गुरु-कृत करते यह कार्य  
 पंगु बिषया प्रयथा दृगहीन  
 कर्म के हैं प्रयोग्य जो-दीन  
 सभी-का करता राज्य प्रबन्ध  
 अत वे भी सब हैं सामन्द  
 चतुष्पद धीर विपद-के-हेतु,  
 चिकित्सामय है, हृदय-सेतु,  
 जहाँ रोमों का पारावार,  
 सभी तरते होकर साधार  
 न बाधिस्य-कृत्क न्याय-के अर्थ  
 वन्द-आते सम, दीन समर्थ  
 प्रजा-है सभी प्रकार प्रसन्न  
 पूर्ण है उस पर धन व अन्न,  
 सभी की सुन्दर देह-विशाल,  
 गठे तन भट-सम उन्नत मास

देख कोई भी उनके कार्य  
 कहेगा उन्हें कि ये हैं धाम  
 मुक्त हैं उनके-मय व्यवहार  
 मान्य-हैं, सब प्रथम आचार,  
 न सेवन करते मादक - द्रव्य  
 प्राप्त हैं सपि दुग्ध दधि गव्य  
 घड़े-में स्नान वासा गो-वन्  
 बहाना गोरस सिन्धु अमन्द  
 तपस्नुत रहता वह दिन-रात  
 धीर हैं कामधेनु-से गात,  
 न होता हुम्मीयर जन-अज्ञ  
 गृही करते निज नूतन-यज्ञ  
 न जनपद-में कोई है चोर,  
 भुके-अपि आरमभान की ओर

वहाँ-की जनता यों-सम्पन्न  
 वहाँ-का राजा-भी है धन्य  
 देव-सम उसका कान्त-शरीर,  
 मकल-गुण-मुक्त धीर, वर-वीर  
 वृहत् युग-भाजन, विस्तृत भाग  
 युगल भुज हैं आ-आनु विनाल  
 बने व वल-क अनुपम-कोप  
 यल हिम-गिरि-आ है निर्दोष,  
 हृदय-है अतुल धैर्य-का स्थान,  
 धीर, घोषा-है सिंह-समान,  
 कर चुके, विधिवत विद्याभ्यास,  
 वास-कर निज कुल-गुरके-वास,

## हमपत्नी

समर-में उनका वह कोदण्ड  
 छोड़ता-है अथ याग प्रथण्ड  
 और, हग-गुग, बरसाना-ज्वाल  
 दीखते तब वे कास-कराल  
 न टिकते रिपु फिर कही-समक्ष  
 भागकर-होते भीत अलक्ष  
 स्वय को जन-मन रख्यक-मात्र  
 समझते हैं नस राज सु-पात्र  
 प्रजा हित-में ही घाठों-याम—  
 बीतते-हैं करते-शुभ काम  
 जहाँ-तक उनका अधिकत देश  
 वहाँ-तक है सुख बास विशेष  
 गुप्त है समी-साधू-बिद्वान  
 गुप्त को दण्ड मान्य-को मान  
 धर्म-द्विज गो-सवा सविशेष  
 मुदित-हो करते सदा-नरेश  
 दिनो-निन बढ़ता है तद-धर्म  
 सीखते-हैं जिस को शुभ-कर्म,  
 नीति-म है सूपति निष्णात  
 समझते उन्हें प्रजा-जन भात  
 जहाँ गुण मूप में मरे अनेक !  
 वहाँ अवगुण-भी उनमें एक—  
 छिपा-है कि वे लेखते धूत  
 हुए-पर इससे वे न अपूत  
 क्यों-कि इसमें न मूपति का दोष,  
 न बिधि में की कुछ वस्तु अदोष,  
 इन्दु-में वसुप पुण्य-में कीट  
 सदा करता आया, बिधि-ठीठ,

किन्तु, मनु-में जो सु-गुण अनेक  
 क्षिपा उनसे सधु-दु-गुण एक,  
 जनक इनके जो अथ स्वर्गस्थ  
 वीरसिंह ये अथ ब्रह्मलोकस्थ  
 वेस सब सब-विषय गुणी उदार,  
 स्व-सूत नस-को सौपा निज-भार,  
 तमी-से सज सुजनोचित साज,  
 प्रजा-रञ्जन करते नलराज  
 अनुज वह उनका पुष्करवत्,  
 देस-रक्षा कर रहा अमत्,  
 देव-से जन दिव जैसा देस  
 और देवेन्द्र-सुख्य जनतेष  
 मारियाँ, पुरुषों के अमुरूप  
 समी-में सधुगुण-भरे अनूप  
 ज्ञान-का उनमें पूर्ण प्रकाश  
 प्रमुख उनमें न सुहास विभास  
 यही - है इसका - हेतु-महान्,  
 निषय है जो सुर-लोक समान  
 राष्ट्र-को वे सु-योग्य-सन्तान  
 सदा-करतीं निष्पाप प्रदान  
 कि जिनके-हैं देवोचित-कार्य  
 और वे-कहसाते हैं धर्म,

गान-शुम्बी सुन्दर प्रासाद  
 दूर रहता जिनसे अवसाध,  
 स्वच्छ, धन-धाय-गुस्त, सुविधान  
 उठाये-हैं, गौरव-से भास,

## रामयन्ती

समर में उनका वह बौदब्ध,  
 छोड़ता-है जब वाग प्रवण्ड  
 और, हुग-मुग बरसापा-ज्वास  
 दीसते सब वे काम-कगल  
 न टिकते रिपु फिर कही-समझ  
 भागकर-होते भीत असल  
 स्वय को धन-मम रख्यक-मात्र  
 समझते हैं मल राज सु-पात्र  
 प्रजा हित-में ही घाठों-याम—  
 घीतते-है, करते-शुभ काम  
 जहाँ-तक उनका अधिकत वेष  
 वहाँ-तक है सुख-वास विशेष  
 गुप्त है, सभी-साधु-बिद्वान  
 दुष्ट को दण्ड मान्य-को मान  
 धर्म-द्विज गो-सेवा सविशेष  
 मुदित-हो करत सदा-नरेश  
 विनों-विन बढ़ता है तरु-धर्म  
 सींचते-है, जिस को धुम-कर्म  
 नीति-म है सूपति निष्णात  
 समझते उन्हें, प्रजा-जन भ्रात  
 जहाँ गुण नृप में भरे अनेक ।  
 वहाँ धनधुन-भी उनमें एक—  
 छिपा-है कि वे लेसते धूत  
 हुए-पर इसस वे न अपूत  
 क्यों-कि इसमें न नृपति का दोष  
 न बिधि ने की कृष्ण वस्तु अपदोष,  
 इन्दु-में कसुप, पुष्प-में कीट  
 सदा करता आया, विधि-हीठ

## द्वितीय सर्ग

किन्तु, नपु-में जो सु-गुण अनेक,  
 छिपा उनसे सधु-दु-गुण एक,  
 जनक इनके जो अब स्वर्गम्य  
 बीरसिंह थे अब दहमोकस्थ  
 देश तब सब-विषय गुणी उदार,  
 स्व-सुख नम-को सौपा निब-भार,  
 सभी-से सब सुजनोचित साज  
 प्रजा रख्यन करते नमराज  
 प्रमुख वह, उनका पुष्करवत्,  
 वेद्य रक्षा कर-रक्षा अमत्त  
 देश-से जन दिव जैसा देश  
 और देवेन्द्र-सुत्य जनतेश  
 मारियाँ पुरुषों के अनुरूप  
 सभी-में सद्गुण मरे अनुरूप  
 ज्ञान-का उनमें पूर्ण प्रकाश,  
 प्रमुख उनमें न सुहास विमास  
 यही है, इसका हेतु-महान्,  
 निपद्य है जो - सुर-लोक समान  
 राष्ट्र-को वे सु-योग्य-सन्तान  
 सदा-करती निष्पाप प्रदान,  
 कि जिनके-हैं देवोचित-काय  
 और वे-कहलाते हैं भाय,

गान-सुस्वी सुन्दर प्रासाद,  
 दूर-रहता जिनसे अवसान,  
 स्वच्छ, धन-धाय-मुक्त, सुविधान,  
 उठाये-हैं गौरव-से भास,

## ब्रह्मयज्ञी

मधुर रस भरसाठा मुझ शान्त  
 जिसे सब सुख पासे जन बसान्त  
 सु-सोभित पीताम्बर से गात  
 और 'महती' बीणा है हाथ  
 पातुका-ध्वनि करती आकृष्ट  
 जनों-की अपने धर्मसुख दृष्टि  
 सजाये यों मुनियों का साज  
 हुए हगत मारव ऋषिराज  
 उन्हें पा सहसा उठे बनेश  
 हुआ हर्षित उनका हृद-देश  
 प्रणत नृप सानुज हुए प्रवीण  
 किये फिर ऋषि आसन-आसीन  
 सलिल-से प्रक्षालन-कर पाव  
 दिखाया निज आतिथ्य अगाध  
 विलोकित कर नृप-प्रेम अमन्त  
 दिया ऋषि-ने आशीष तुरन्त  
 और फिर कृपात प्रश्न-पश्चात्,  
 नृपति ने कहा-ओढ़कर हाथ  
 'आज है पुण्योदय श्रीमान्  
 पवारे, सेवक-गृह भगवान्  
 जिसे दशन-देते हैं आप  
 मष्ट-होते उसने सब-पाप,  
 कहा यह मेरा पुण्य महान्,  
 निरा हूँ मैं दुमति अज्ञान  
 पूर्वजों का यह पुण्योत्सव,  
 हुए जो मुझे देव-के दर्श,  
 अहा-सचमुच बिस्मना सीमाम्भ,  
 स्वयं अम्यागत हैं, गतराग,

देव ! अपधर्म स्वर्ग या मोक्ष  
 यद्यपि ये भी हैं समी-परोक्ष  
 किन्तु हैं सब जन-के आधीन  
 कर्म कर पाते इन्हें प्रवीण  
 देव ! पर यह न कर्म-से साध्य  
 कि-आवें घर बैठे आराध्य  
 आप-ऐसों की कल्या-मात्र—  
 कराती-प्राप्त आप-सा पात्र  
 स्वय-हो कार्य स्वय-हो-हेतु,  
 स्वयं हो निन्दु, स्वयं हो सेतु,  
 कृपा की तो पाया सुम-दर्श  
 दर्श-से होगा ध्रुव उत्कर्ष  
 सुहित होगा कृष्ण भाज विचित्र  
 धन्य जीवन हो गया पवित्र

धोत्र-हैं मेरे व्यग्र-महान,  
 मुष्ण-वाणी-जा हो शुचि-पान  
 भक्त कुछ भाजा देकर नाथ !  
 करो ! सेवक को भाज कृतार्थ  
 हिंसाकर जटिल स्व-क्षीप विद्याल  
 क्षिप्ताकर-कमुम-रखों का आल  
 धीर मन में भर, हर्ष धनन्त,  
 बचन बोले—अमृतोपम सन्त  
 कृमुदिनी-वस्त्रम कलज-अनूप  
 स्वयं सुम योग्य सुखद शुचि भूप !  
 तुम्हारा-प्राप्य स्वतः गुरु-वप  
 तुम्हारे लिए वत्स ! क्या स्वर्ग



## रामपत्नी

तुम्हारा धन्य देश निपपेक्ष !  
 हुआ जिससे निष्प्रम सुर-वेश  
 तुम्हारे देस काय मनुजैन्द्र !  
 सशक्ति रहते हैं देवेन्द्र  
 आपके सु-विचारों-से तात् !  
 क्योंकि है अविविध-से सुरनाथ  
 लोक-रक्षण कर विधिवत भूप !  
 रहा तुमने यद्य—धनसत्सूप  
 और, कर यज्ञ अनेक महान्  
 अपरिमित दे दीनों-को दान  
 योग्य ही तुमने किया उदार !  
 किन्तु, इन्द्रासन-पर अधिकार—  
 न तुम कर-बीठो यह सन्देह,  
 जलाता-है सुरेन्द्र-की बेह,  
 किन्तु करते तुम तो धूम काम  
 छोड़कर, फल-वाञ्छा-अभिराम  
 तुम्हीं-से मिलने की के चाह  
 इधर मैं आ-गहूँचा नरनाह !  
 यज्ञ-कर, बिद्या-से हो मुक्त  
 हुए देवपि अणों-से मुक्त  
 अभी-पर पितृ ऋण से उमुक्त—  
 न हो है वरम ! गृहस्थ अमुक्त  
 यद्यपि भेदिनी भूप की दार,  
 कि जिससे होता भव-उदार,  
 किन्तु, अब पितृ ऋण का परिशोध—  
 करो है यह मेरा अनुरोध  
 हमारे आध्यम-मध्य प्रवेश—  
 करो अब, इसी हेतु जनतेज !

प्रजा-सुख स्वर्ग धान्ति की भूस  
 प्राप्त-कर पत्नी निज अनुकूल  
 करो उत्पादित बर-सन्तान  
 कि जिससे-हो ऋण-का प्रवसान,  
 भीम-नृप-का विदर्भ-जो-देश,  
 आज सुख धान्ति जहाँ-सविशेष,  
 खेप्ट है नृप भी साङ्गोपाङ्ग  
 उहाँ की उन्मा परम शुभाङ्ग,  
 शिरोमणि सुन्दरियों की एक  
 रही वह विधि ने सहित विवेक  
 उसी-की सुन्दरता के गीत  
 स्वर्ग-में गाते देव पुनीत  
 छोड़ अप्सरा स्वर्ग अपवर्ग  
 उसी-पर धाकपित सुर-वर्ग,  
 और है वे सब आज स-मत्त,  
 प्राप्त-हो हमें-कि वह सु-रत्न,  
 तीर्थ-प्रवगाहन कर उस-बार  
 गया - मैं भीम नृपति-के द्वार  
 रम्य कृष्णपुर उसका धाम  
 देख मन ने पाया विश्राम  
 नृपति ने दिया मुझे बहुमान,  
 मुन्हीं जैसे वे - भी गुणवान  
 और फिर कुशल प्रदन कर, तात ।  
 बसायी नभ नृपति ने बाठ,  
 धन्य उनके कहने की रीति  
 हुई जिससे मुझको भी प्रीति,  
 'आज तीनों लोकों में नाथ ।  
 आपसे बीणा हुई सनाथ,

तुम्हारा धन्य देश निषेध !  
 हुआ जिससे निष्प्रम सुर-वेश  
 तुम्हारे देश काय मनुजैन्द्र !  
 सशक्ति-रहते हैं दवेन्द्र  
 आपके सु-विचारों-से तात !  
 क्यों-कि हैं अविदित-से सुरनाथ  
 लोक-रक्षण कर विधिकत भूप !  
 रचा तुमने यज्ञ—धवलस्तूप  
 और, कर यज्ञ अनेक महान्,  
 अपरिमित दे क्षीमों-को दान  
 योग्य ही तुमने किया उदार !  
 किन्तु, इन्द्रासन-पर अधिकार—  
 न तुम कर-बैठो यह सन्देह,  
 जसाता-है सुरेन्द्र-की वेह  
 किन्तु, करते तुम तो शुभ काम  
 छोड़कर, फल-वाञ्छा-अभिराम  
 तुम्हीं-से मिलने की ले-चाह  
 इधर मैं आ-बहुँचा मरनाह !  
 यज्ञ-कर विद्या-से हो युक्त  
 हुए देवपि ऋणों-से मुक्त  
 अमी-पर पितृ ऋण से उन्मुक्त—  
 न हो है वत्स ! युहस्य अमुक्त  
 यदपि मेदिनी भूप की दार,  
 कि जिससे होता मय-उधार,  
 किन्तु, अब पितृ ऋण का परिशोध—  
 करो है यह मेरा अनुरोध  
 दूसरे आश्रम-मध्य प्रवेश—  
 करो अब इसी हेतु जनतेस !

## द्वितीय सर्ग

प्रजा-सुख स्वर्ग शान्ति की मूस  
 प्राप्त-कर, परती निज-अनुकूल  
 करो उत्पादित घर-सन्तान  
 कि जिससे-हो धरण-का अवसान  
 भीम-नृप-का विदर्म-जो-देण  
 आज सुख शान्ति जहाँ-सविशेष  
 अष्ट हैं नृप भी साज्जोपाज्ज  
 उहाँ की सनया परम धुमाज्ज  
 शिरोमणि सुन्दरियों की एक  
 रची वह विधि ने सहित विवेक  
 उसी-की सुन्दरता के गीत  
 स्वर्ग-में गाते देव पुनीत  
 छोड़ अप्सरा स्वर्ग अपवर्ग  
 उसी-पर आकषित सुर-वर्ग  
 और हैं वे सब आज स-यत्न  
 प्राप्त-हो हमें-कि वह सूरत  
 तीय-अवगाहन कर उस-वार  
 गया मैं भीम नृपति-के द्वार  
 रम्य कुण्डिनपुर उसका धाम  
 देख मन ने पाया विश्राम  
 नृपति ने दिया मुझे बहुमान  
 तुम्हीं असे वे - भी गुणवान  
 और फिर कुशल-प्रस्त कर, तात ।  
 बसायी नभ - नृपति ने वात  
 अन्य उनके कहने की रीति  
 हुई जिससे मुझको भी प्रीति  
 "आज तीनों लोकों में माघ ।  
 आपसे बीणा हुई सनाथ

विपद्भी नृणाम् आप-सा आज  
 न कोई भी धृति-गत ऋषिराज !  
 अनेकों बार दुर्गों को बीच  
 सोचता था, मैं मानस बीच  
 हमारे हरने को सब पाप,  
 कदाचित् यहाँ पधारें आप  
 सुता को बीणा वादन ज्ञान—  
 प्राप्त करने को सुखद महान  
 आपकी सेवा में हे नाथ !  
 छोड़कर मैं हो सकूँ कठार्थ  
 अतः मेरी यह विनय उदार !  
 कृपा करके कीजे स्वीकार,  
 योग्यता पूर्वक भाव असीम  
 प्रगट कर बैठ-गये चुप-भीम  
 नृपति ! यद्यपि हम बन्धन-हीन  
 किन्तु हैं प्रणतों के आधीन  
 देखकर उनका निस्छल भाव  
 किया स्वीकृत मैंने प्रस्ताव

बस ! मैंने देने सब-सोक  
 सुरों-से दीनों-तक के भोक,  
 निहारे, धड़े अनिन्य-स्वयम्,  
 किन्तु, अगले दिन ही हे भूप !  
 भीमजा-का बहु रूप-महान् —  
 देख मैं था कुछ क्षण गत-मान  
 घोर विस्मय विस्फुरित अल,  
 देयता मञ्जुस-मूर्ति समस्त,

आज तीनों सोकों में भूप ।  
 न उस बैसी सुन्दरी अनूप  
 पूर्ण वह नारि गुणों की धाम  
 उभित उसका दमयन्ती नाम  
 वहाँ कुछ रहने-के पश्चात्—  
 जान पाया यह उसकी बात—  
 कि 'दम' ऋषि-का पाकर वरदान  
 पा सके उसको भीम महान्  
 सुता का ही था यह सौभाग्य  
 कि जागा भीम नृपति-का भाग्य  
 प्रथम कुछ भी न उन्हें सन्तान  
 किन्तु अब हैं वे पुत्रोत्थान  
 तीन सुत उनके घर में मो—  
 बढ़ाते अब भर माँ की गोद  
 देल - यों गत अपने सन्ताप  
 और, दम ऋषि का पुण्य प्रताप,  
 स्व - श्रद्धा प्रगटानी थी इष्ट  
 और वा ऋषि गुण-गान समीष्ट  
 अत सब निजात्मजों के नाम—  
 भरे सलिल कर 'दम' निष्काम  
 दम दम दान्त समी के वधु,  
 बहन क सम ही हैं गुण-सिंधु  
 भीम भी हैं अब परम-प्रसन्न  
 (प्रथम रहते थे जो अबसन्न)  
 देखकर उसकी बुद्धि क्रुधाग्र  
 प्रहण में तत्पर जान समग्र  
 स्व-सिध्या को पा यों सत्पात्र  
 हर्ष-से पूजा, मेरा गात्र,

बताता उसे तनिक मैं बात  
 भेद-बहु अग्रिम करती ज्ञान  
 छिपाकर रख न सका कुछ जय  
 यही था उसका भी तो ध्येय  
 कि अन्य कसाओं की जिम भाँति  
 पराकाष्ठा उसने भी प्राप्त  
 उसी विध वीणा गुण सर्वज्ञ—  
 बने वह रहे न किञ्चित् भ्रम  
 अल्प से मासो में हे भिन्न !  
 हुई वह वीणा वादन विश  
 आज बस मुझको जग-में छोड़  
 न उसकी और कही है होड़  
 देखकर पूरा विपश्ची ज्ञान  
 बुसाये मैंने नृपति महान्  
 कहा-उत्तसे कि मुझे जो मार—  
 दिया उसको मैं रहा उत्तार  
 पूर्ण तनया की शिक्षा आज  
 परीक्षा ल छोड़े नर राज !  
 बुसाई फिर मैं भैमी शुभ-नाम  
 स-वीणा आ पहुँची गुण धाम  
 कहा उसका वह वादन बग  
 देख रह-गय नृपति भी वग  
 धोमती वीणा उसके धक्के  
 कि हो जिस-भाँति स-एण-मयक  
 शारदा आकर या उम गेह  
 बजाती हो वीणा-म-स्नेह  
 शयण-कर वीणा-की मृदु-ताम  
 हुए चेतन जड़ से अनजान

वहाँ जन जान सके हा-सोव ।  
 सगी थी क्यों-कि नृपति-की रोक  
 किन्तु, पक्षी प्रागम उस-काल  
 बाँधकर रक्त न सके नरपास  
 हुई यों सहसा उनकी भीड़  
 वहीं थे मानों उनके नीच  
 बढ़ा यह तभी कृतूहल और  
 हुआ मम-में धन-गर्जन घोर  
 तनिक पहले था निर्मल-स्वच्छ,  
 वहाँ भव घिरे, बटा थे गुच्छ  
 और फिर बढ़ा वायु का वेग  
 बरसने लगे वेग से मेघ  
 मरोहों-से मर-मर मृदु तान  
 निकलती थी बाहर धनजान  
 मनुज बरबस होकर एकत्र  
 लगे सुनते थे मृदु बाधित्र  
 न था उनको अपा का ज्ञान  
 दीप्तते चित्रोल्लिखित समान,  
 बदलते क्यों, स्वर, उसके - हाथ  
 प्रकृति - देती थी क्यों ही साध  
 हवा वर्षा मम में धन प्राप्त  
 स्व-कर्म से प्राते-ये, उस-काल,  
 देख-बहु अकृत कार्य कलाप  
 धन्य समझी वह मैंने आप  
 परीक्षा फिर वह हुई समाप्त  
 तभी मणि मुक्ता ल पर्याप्त  
 दक्षिणा का उनको - दे - रूप  
 लगे थे मुझको देने भूप



हट्ट हो मैं बोला तत्काल  
 क्षमा कीजिए सुनिए सुपास  
 न बन से धर्म मुझे नरनाह !  
 बिरहों को बन की क्या चाह !  
 तितिक्षा में हे भूप ! दुरन्त—  
 एपराधों का होता भन्त  
 न आवश्यकता रखी शेष  
 कने फिर क्या-बन-का जनतेष्ट !  
 चाहते हम तो केवल मुक्ति  
 कि जिसकी बनासक्ति है मुक्ति  
 द्रव्य-से हो जाती प्राप्तिक्रि  
 कहाँ फिर जप समाधि तप भक्ति  
 द्रव्य ही है बन्धन का मूल  
 माधुता के पक्ष-का कर शूल  
 आपको समझाना है धर्म  
 न है शिला शिखित के धर्म  
 न मैं बन रख सकता हूँ पास  
 किन्तु, भूप ! करना तुम्हें हतास—  
 न है मुझको इस समय अभीष्ट  
 अतः यह स्वीकृत भेंट बरिष्ठ  
 और यों-बहु लेने के साथ  
 दिया वह बन मेरी के हाथ  
 मुविष्ट-दीने फिर भीम महान्  
 न होते पुराग्रही - विद्वान्  
 गई भीमी-भी अपनी ठाँव—  
 सहित भूप-के मुझको कर जोड़  
 मुझे गमनोत्सुक् देख दुरन्त  
 कहा भूप मे भय-भय भनन्त,

समय अब सुता-स्वयम्बर-बाज—  
 विनिश्चित-सा ही है, मुनिराज !  
 उसी शुभ-वेला-में हे नाथ !  
 कृपा-कर कीजे हमें सनाथ !  
 उन्हें धाने-का, वे बिस्वास  
 चला मैं हृषित पथ-आकास  
 हगों-में ममी मञ्जुल सृष्टि  
 और, श्रुति-में तानो-की पूर्ति  
 वही सब-कृष्ण, पहले का चित्र  
 मुझे घेरे-या परम विचित्र  
 उधर कर गगन - वायु का पान  
 छोड़ती थी महती मृगु तान  
 इधर भङ्गुत मेरा हृद् देस  
 दिये था, उसका साथ बिशेष  
 यही उल्लास था एक विचार  
 कौन है ! ऐसा गुणी अपार  
 कि जो हो, नैमी-के सम कल  
 जिसे यह बर-से, देख समझ  
 और बरबस ही मेरी दृष्टि,  
 आप पर होती थी आकृष्ट  
 जैने, तुम ही, मुझ को हे शिष्ट !  
 उसी सम सुन्दर गुणी बरिष्ठ !  
 धूमकर तब से विनिध प्रवेश  
 आज मैं आया, यहाँ जनेश !  
 यही कहने की रसकर चाह  
 कि, उससे करसैं आप विवाह,  
 सखा, या सचिव नारि के काम  
 करे वह पूरे, बन कर बाम,

## कल्पवृक्ष

बाँध सकता मन्तों को कौन !

घट रह गये विषय सब मौन ।

रोपा ज्यपि ने प्रेम-बीज जो, नृप के मानस बीज  
क्रिया प्रकुरित घोर पल्लवित वह स्मृति-जल ने सींच ।  
रह रह सुमन स्वप्न वह बेता ले मूढ़ मन्त्र हिसोर,  
झग-झग बोझिल-सा नृप-का मन रहता गन्ध-बिभोर ।

## तृतीय सर्ग

चुने हुए रणवीर वीर सग सिये-हुए हैं  
 आसेटक-का वेश निपजपति किय-हुए हैं ।  
 स्वेत-अरब-पर चढ़े हाथ-में सिये-दारासन  
 किया नृपति ने मृगया-के हित बन-अवगाहन ।  
 बाजि बेग के सख्य सेवकों की हुंकारें  
 होती थीं दिम्ब्याप्त फणी जैसी फुकारें ।  
 कोलाहल-सा मचा भीत पशु पक्षी शक्ति  
 जागृत बन को छोड़ भागकर हुए असक्ति ।  
 वीर-मड़ा मृग एक मगाया पीछे धोड़ा—  
 बाघ - बेग स्वेताश्व हरिण - के पीछे - वीर ।  
 मृग था कभी समीप कभी आगे जाता था  
 लक्ष्य भ्रष्ट हो तीर अनुप-पर रह जाता था ।  
 भरता था चौकड़ी हरिण, भोंका सा जाता  
 पद-पद पर वह शक्ति प्राण - भय से था पाता ।  
 गदग सहस्र था रहा तुरग भी मृग के पीछे,  
 शक्ति, कहीं - अज्ञात सिये - जाती ज्यों - सींचे ।  
 स्वेदाप्सुत था यात, फेन मुख - से भरते थे  
 मानों पादाब्जन्त धरा-के प्राण भरते थे ।  
 प्राणों की थी होड़ हुई दोनों की बन - में,  
 चले घूमि - पर स्वल्प अधिक थे उड़े गगन - में ।  
 पीछे - ही रह गये नृपति - के सभी सिपाही,  
 कहीं प्राकृतिक भ्रम, कहीं पथ - में थी लाई ।  
 उसभ पड़े हों घास विरहिणी - सिर - में जैसे,  
 भ्रष्टी - उसभीं मिसीं नृपति - को पथ - में जैसे ।

## रामपत्नी

मृग हो गया शवदण्ड सुप मन में मुखाये  
 मारा जाता वही नाम जिसके-सिर भाय ।  
 घीरे घीरे शवध बसा धव उनका बन-में,  
 छटा प्राकृतिक देव महीप मुदित थे मन में ।  
 य लग मृग भासीन सिद्धि सार्वे ज्यों साधक,  
 इनके सुख-में भला बना है क्यों न धाधक ।  
 मनुज स्वार्थ का मरा हुआ पुतला है जग में  
 काम-क्रोध मद मोह माह उसकी रग रग में ।  
 तनिक स्वार्थ के लिए दूसरों के जीवन को—  
 नष्ट करे धिक्कार । शवध इस मानवपन को ।  
 इसीलिए ये दूर ! मनुज से दूर । विपिन में  
 जीवन कर व्यतीत मुदित हो अपने मन में ।  
 किन्तु, बन ये नहीं यहाँ पर भी पाते हैं,  
 रमनोन्मुख नर हस्त ! यहाँ भी भा जाते हैं ।  
 निरपराध य तभी अनेकों मारे जाते  
 दूर नरों-से रहें न फिर भी तो रह-पाते ।  
 जन द्वारा जन कही सताये हैं यदि जाते  
 तो, न्यायार्थ समीप तभी वे मेरे भाते ।  
 इनका किन्तु न कहीं न्यायकर्ता है कोई  
 तनिक स्वाय के लिए नरों ने मरता कोई ।  
 मरता से देवत्व प्राप्त कर सकता मानव,  
 किन्तु, कहीं देवत्व ! पतित हो बनता दानव ।  
 मनुष्यता से हीन मनुज क्यों दनुज रहेगा  
 निज दनुजत्व बिना, दनुज क्या कभी सहेगा ।  
 जब-कि देव बन देव रहें तो भले न क्या वे,  
 पर, मानवता हीन न जाने मानव क्या थे ।  
 जीव मात्र का बनकर हितु, जग-में मर भाता,  
 इसीलिए सबिरोप, प्रकृति से साधन पाता

अगर न हित कर सकें अहित तब क्यों करते हैं  
इनके द्वारा निरपराध कुछ क्यों मरते हैं ।  
इधर लक्ष्य की सिद्धि उधर है भीषण जाता  
फिर भी देखो क्या सब मानव कहलाता ।  
लक्ष्य - सिद्धि के लिए अग्न्य साधन हो-सकत  
और क्षुधा भी मनुज अन्न-द्वारा सो सकते ।  
उपकारी मानव ही मानव हो सकता है  
वही धरा पर जीव - दुखों को सो सकता है ।  
उसको ही कर प्राप्त वस सु-मुक्ति होता है,  
वही मनुज वस अन्य-वृत्तों में जो रोता है ।  
सस्त्र धनुष असि आदि आततायी के हित है  
वृद्ध व्यवस्था सभी दुष्ट के अर्थ विहित है ।  
नहीं आज से निरपराध को मैं माझगा  
अकिञ्चनों को सता न मानवता हानेगा ।  
बैरसेनि के जगे भाव ऐसे तब मन - में  
सखते चले विहार पक्षिया का बेबन में ।  
बातावरण - प्रभाव हृदय पर पड़ जाता है  
अतः सिद्धि के लिए मनुज बन - में जाता है ।  
हुए प्रभावित भूप, इसी - से यह वत ठाना,  
पक्षी उड़ते कहीं, कहीं पर जुगते नामा ।  
जिसे - देख कुछ पूर्व सभी पशु - पक्षी भागे  
भूम रहे अपभीत सभी - वे भव नृप भागे ।  
मोहक रूप निहार, जीव तब भागे बढ़ते  
मन - भावों - की छाप बदन पर मानो पड़ते ।  
पशु - पक्षी कबि - तुल्य मनो विज्ञानी - होते  
देख सुखी को सुखी दुखी को पानी - होते ।  
आया मन्द - समीर गन्ध - पीतसता - लेकर  
हुए बिटप वृत्तकृत्य नृपति - को छाया देकर ।

## रामधन्वी

सग मच्छस कर रहा, तलस्थित गीतोच्चारण  
 मानों धाकर यहाँ नृपति यद्य गाते धारण ।  
 देख न कुछ अवरोध बैलपत्र फूल रहीं वीं  
 श्रद्धा सूप-की प्रजा-तुल्य दुस्र मूस रही वीं ।  
 प्रियतम भीरवि से भिसने इठला इठला कर  
 भरी सरित जा रहीं गीत मस्ती से गाकर ।  
 उनका वह धविराम गमन मामा यह कहता,  
 जहाँ मिलें प्रिय वहाँ दुखों में भी सुख रहता ।  
 करनों का अस सीव बेग से रमक रहा है  
 सूर्य रश्मि पड़ रहीं रजत-सा रमक रहा है ।  
 पुष्प हुमा वा स्वेद धधक बकता जाता वा  
 प्रति क्षण दृश्य महीन मनोरम दिसमाना वा  
 वीं भुगियाँ कर रहीं कहीं दिगुधों से क्रीड़ा  
 मृग बैठे पुप चाप मान बच्चों से क्रीड़ा ।  
 जब नृप को अवलोक उठे वे किन्तु न भागे  
 जाती थी सौन्दर्य प्रति वह उनके भागे ।  
 वी-भर भर नृप-रूप-सुभा को वे वे पीते  
 बड़े-बड़ों के हुए आज सचमुच मनचीते ।  
 ऊह-ऊह गा उठी कोकिमा पथम स्वर-से  
 देती हो सन्देश मनोभव का ज्यों तरु-से ।  
 पुष्प-कुञ्ज से मञ्जु नृत्य केकी करते वे  
 पीर-पीर कह तास जहाँ जातक भरते वे ।  
 घटवी थी वह बनी प्रहृत तौर्यधिक-शाभा,  
 जगें देखकर जिसे विरह की सोती ज्वाला ।  
 छाया देकर बिटप नृपति का भ्रम हारते वे  
 सता-गुल्म-कर सुमन-वृष्टि पत्र को मरने वे ।  
 छोड़ रहा स्मर प्रखर-वारण मानों तम - तमकर,  
 धीर, सु-सज्जित सन्य साध-में हो बन-छा-कर ।

बना रहा था लक्ष्य नृपति को वह छल - बस-से,  
 दिखा रहा था युद्ध - कसा अपनी कौशल - से ।  
 भावस-हुए-महीप, याद भैमी-की आई  
 सहसा हग मुँद गये हृदय ने पीछा पाई ।  
 जिसकी विस्मृति-हेतु चले मृगया छल-करके  
 मानो या एकाग्र मही आई बस भर के ।  
 लगा-शून्य-सा स्वयं उन्हें अपना वह-जीवन  
 हो सकता जो सरस सुखद पाकर भैमी-वन ।  
 निक्सी मुख से आह । हुआ फिर हग उद्घाटन  
 दीख-पड़ा अब उन्हें भीर वह सुन्दरतम वन ।  
 बीच उसी के बना रम्य-प्राकृत आमत सर,  
 सवन-विपन-में आ-साया ज्यों मान सरोवर ।  
 अमल-कमल-निल रहे सकल धैरानाच्छादित  
 करते थे कम-केसि सरस जलधर आह्लादित ।  
 पड़ी नृपति-की वृष्टि तभी उस सर-के तट-पर,  
 थे बिहार में मग्न मुवित-मन हस जहाँ पर ।  
 बड़ी - बड़ी वे सबैत पुष्प-की-सी मासामें  
 अपने प्रिय को घेर रहीं हसी - वासायें ।  
 होता था अमिहार, प्यार से भरी हुई थीं  
 मानो जल-झीड़ाब, अवतरित परी हुई थीं ।  
 करते थे कृष्ट, असग, दम्पती कौतुक नाना  
 थे सब झीड़ा-भग्न न देला नृप का आना ।  
 सब से भीषा पुरण पिमा - सूपति ने पानी  
 भीर, देखने सगे मरासों की मनमानी ।  
 एक हस उस-भीर समी-से छिन्न पड़ा था  
 कल्प-वेसि-का सुमन सता-से छिन्न पड़ा था ।  
 मुरत-धान्त, तन कमान्त घाँस उमने थी भीषी  
 सञ्चिपन-मी कर रहा शक्ति, जो अभी उलीची ।



घेष्ठ स्वर्ण के पक्ष देह-पर दमक रहे थे  
 रवि-भासप-से उत्पन्न और भी चमक-रहे थे ।  
 देख स्वर्ण के पक्ष हुआ नृप-को विस्मय-सा  
 घोर, वृष्टि के साथ उठे उनसे पद सहसा ।  
 हुई वृक्षेष्टा उसे स्वरित कर-गत करने की  
 और निकट से देख स्व विस्मय-को हरने की  
 चल मूप उस ओर युष्म धाकार बनाकर  
 उसे पकड़ मूँ लिया-निकट घीरे-में जाकर ।  
 अप्रत्याशित विपद । चौक-अंग ने दुग-सोले  
 वह नृप-का कर-पद्म लगा असते से शोले ।  
 फड़-फड़ करते पक्ष हृदय-थड़-थड़ करता था  
 मुक्ति-यत्न कर रहा भीत निज बल-भरता था ।  
 किन्तु, हुआ सब व्यर्थ छटा वह सका न निज-को  
 भूप चर्चित थे देख यत्न करते उस-विज को ।  
 सगा काटने कभी विहग तब नृप-क कर में  
 और चीखता कभी व्यथित वह ऊँचे-स्वर-में ।  
 सग दशन-अवरोध लिया नृप-ने मुख भर-के  
 और बचने लगे हस्त-पञ्चर-गत करके ।  
 छुट न सकूँ गा हाय । हाँस ने जब यह-जाना  
 तब वह करने सगा-विकल्प-हो कन्दन-जाना ।  
 चौके-पक्षी सभी कष्टण कन्दन को सुनकर,  
 कोसाहज कर पाता उड़े पक्षों-को धुनकर ।  
 जिस पासम में चीन, हीम, यों पुन पाते-हों  
 निरपराध सब जीव व्यर्थ मारे पाते हों ।  
 वह दुनृप-की घरा न रहने योग्य हमारे,  
 मानों कह इस भाँति सभी थे गगन-सिधारे ।  
 उनका आते देख गगन-में उड़ कर सहसा  
 कनक हंस हो गया हाय । जीवन भी मृत-सा ।

बलहीनों की एक सहायक है उस वाली,  
 जिह्वा-द्वारा क्रोध शान्त करता कुछ प्राणी ।  
 अब है ध्रुव अवसान ! पड़ा मैं किस आशा-में  
 अभय हृद ने कहा स्पष्ट मानव-आपा-में ।  
 धिगू धिगू रे सौ बार मनुज ! यह नरता तेरी  
 होते है नर दैत्य दया से शून्य अहेरी ।  
 बलवत्ता कुछ नहीं मारने में दीनों के  
 होता है क्या नाम हराने में हीनों के ।  
 बनते ही यन्त्र शुरू भरे ! ता वापस जाओ  
 हूँ पद-पद पर भुमट शीघ्र उनको दिखलाओ ।  
 हिसारस की पूर्ति प्रगत-में क्यों-करने-हो  
 मैं हूँ लघु-सा जीव मुझे तुम क्यों-घरते-हो ।  
 कौन ! मिलेगा सुयय तुम्हें बध करके मेरा  
 व्यर्थ शान्त हो काल प्राण यह हरक मेरा ।  
 मुझे मार कर स्वयं अमर क्या रह जाओगे  
 करके इतना पाप भला क्या-फस पाओगे ।  
 हाय ! न अपने मरे-मुझे कुछ भी दुःख होता  
 विलस-विलस कर इस प्रकार मैं कभी न रोता ।  
 हा ! मेरे हृद हुए बुभुक्षित परिजन मेरा  
 तड़प-तड़प-कर स्वयं मृत्यु-का होगा चेरा ।  
 हूँ सोने के पल मानता हूँ मैं यह भी  
 पर इनका क्या-भूत्य जानता हूँ मैं यह भी ।  
 दो, दिन भी तो नहीं कार्य तुम बला-सकोगे  
 दुःख स्वर्ण-की भाँति न इनको गसा-सकोगे ।  
 जिस सुन्दरता-पर मैं प्रति-ही था हरसाया  
 उसने ही अब मुझे कान-का गाल दिखाया ।  
 शक्ति हीन को व्यर्थ ईश सुन्दरता देता  
 देता है तब क्या न, तरी वह उनकी खेता ।

## रमयन्ती

प्रदर्शों का सौन्दर्य नाम है सबसे उठाते  
 बेचारे निर्याम व्यर्थ वे मारे जाते ।  
 प्रम्व ! प्रम्व ! प्रवलम्ब बुझाये का यह तेरा  
 पाकर, अवश घनाप घाव अन्तक से घेरा ।  
 मुझे न पाकर रोवेगी माँ तू, रह रहकर  
 प्रम्व ! पुकारेगा अब तुम्हें कौन माँ कहकर ।  
 घाव पहुँच कर लेंगे अब ये बिहग बसेरा  
 पूछेगी मम प्रिया कहाँ है प्रियसम मेरा ।  
 'वह तो मारा गया' सुनव उत्तर यह सुनकर,  
 मर जायेगी स्वयं प्रिया रो रो सिर-धुनकर ।  
 माता पिता-विहीन हाथ ! सधु-सधु-धिधु मेरे  
 हो जायेंगे स्वयं कुसुक्षित यम-के घेरे ।  
 कुसी न अब तक घाँस न वे कुछ लाभा जाने  
 हैं हाँ निरे प्रबोध न घाना जाना जाने ।  
 भोह ! एक के मरे, सभी वे मर जायेंगे  
 हुए व्यर्थ उत्पन्न न कुछ भी कर-पायेंगे ।  
 रोदन करने लगा बिहग यम-भय का मारा  
 फट हगों से वही कपोलों पर जस-बारा ।  
 चील चील निस्सज हुआ बह कर पञ्जर में  
 दीन-रुदन सुन इधर क्या उपजी नृप-वर में ।  
 कदगा-नद बह चला नृपति की साथ बहे थे,  
 घाँस जल-से भरी, हम को हाथ गहे थे ।  
 टप, टप, पड़ने लगे प्रधु, जग-वर भर भर-कर,  
 हुए सिद्ध से, जस-समान ही वे सूर्या-हर ।  
 हुए प्रथम प्रति चकित नृपति सुनकर मर-वाणी,  
 विस्मयता से भरी घरा सब मन में मानी ।  
 बोले फिर मूढ़ बधन हस ! तुम क्यों डरते हो  
 हागा कुछ भी ग्रहित न, रो, रो क्यों-मरते हो ।

मैं हूँ नृप नलराज निषध-जनपद का स्वामी  
 दीन - दुखी का मित्र न हूँ दुष्पथ-का गामी ।  
 दशनार्थ ही किया घर । तुमको घृत मेने  
 सब परिजन से किया न तुमको अपहृत मैंने ।  
 है न मुझ कुछ चाह स्वर्ण तेरा पाने की  
 और न दम्भा तुम्हे मारकर ही खाने की ।  
 देख तुम्हारे पत्न स्वर्ण के कुछ विस्मय-या  
 पीड़ित तुमको कहूँ न यह मेरा आशय था ।  
 उठ जा बिहग यथेच्छ । छोड़ता हूँ मैं तुमको  
 जिह्वा सोसुप ममक अहेरी मत तू मुझको ।  
 राजहंस को मला कष्ट क्यों पहुँचाऊँगा  
 मुझ भोज्य की कमी न क्यों । तुमको सारूँगा ।  
 या-कह नृप ने तभी हंस कर-मुक्त किया वह,  
 फलाक-निज हाथ गगन में उड़ा दिया वह ।  
 सुधा वक्षस सिकत छुटा-वह पक्षी सहसा  
 देख स्वयं को मुक्त पुनर्जीवित-सा रहँसा ।  
 भर कर एक उडान कूज कुछ नम-में जाकर,  
 नृपति-स्क्न्ध पर बठ-गया वह फिर से आकर ।  
 सञ्जन-पर विद्वान् दाघ्र ही हो जाना है  
 अहिताशंका नाग पीघ्र हा हो जाता है ।  
 करक घोवा बक बिहग बासा - मुदु-वाणी  
 करते अहा - निवास घरा पर तुमसे प्राणी ।  
 सेकर मार अमन्त इसी से ठहर - रही है  
 दीन दयासु - विहीन न सबमुख पुण्य - मही है ।  
 मैं, अपियों के पास आशर्मों-में रहता था  
 मुनता अपि उपदेश, स्व-मन की भी कहता था ।  
 प्राय अपि मुनि सभी दयासु प्रकृति में होते  
 बिना मायमा स्वयं दुखी-न मे दुख प्योत ।

किन्तु, मर ममी वही पर धाया करते  
 न राग वैराग्य ममी के भरने करते ।  
 रस्वती ने स्वयं दया कर मुझे पढ़ाया  
 सृष्टि का अधिकोश ध्यान से ज्ञान सिखाया ।  
 मैं पा - ऋषि आदेश विमल हो जसा वही मे  
 आश्रम ऋषि का बहुत दूर है सूर ! यही से ।  
 भव में बना गृहस्थ सुख मेरा परिजन है  
 निशु कीड़ा मे बलित मोड़ हमी सा बन है ।  
 सोने के हैं पंख हमी से दूर यनों में  
 रहता है निर्वाच उधर नन्-गुल्म-भना में ।  
 पाकर कुशा निरीह हृग्ग उसका जात है  
 कस मीना का सबन मीन भी ला जाते हैं ।  
 यों, निद्रल को सबन मदा साया करते हैं  
 इसीलिए व सहज वण्ड पाया करते हैं ।  
 विहित नहीं है पाप मारने में या इनके  
 आलेटक के लिए ममी ये हैं क्यों तिमके ।  
 मुक्त मारक मी न नृपति तुम ये अम्याई  
 फिर भी जीवित छाड़ धपार दया विजसाई ।  
 किया प्राण का नान आपका उपकत है मैं  
 क्या सेवा कर सबू अथम मायन हूँ मैं ।  
 पर, यदि कुछ कर मना प्राण देकर भी अपने  
 तो हुँया वनकत्य सुखद होंग कुछ सपने ।  
 आशा दो कुछ मुक्त दीध मेरे उपकारी  
 कुछ तो मधु कर मक भार यह जन आमाटी ।  
 मुया वधम मुन कलनता न प्साबित एग के  
 उमड़ी गद - गद हुए हृदय में दया मुनग के ।  
 और, विहग से कहा मित्र ! अपराधी हैं मैं  
 है मज्जा का बिषय तुम्हें क्या आशा हूँ मैं ।

## तृतीय सर्ग

मद्र ! व्यर्थ ही पकड़ सताया तुमको मैंने  
 सोते थे सुख मौद जगामा तुमको मैंने ।  
 इस पर भी इस भाँति मद्रता है दिसलाई  
 वास्तव में तुम राजहंस हो सच्चे भाई ।  
 नर बाणी से युक्त मित्र ! या तुमको पाकर  
 समझा मैंने तुम्हें दिव्य ही हस गुणाकर ।  
 पाकर भी यों कष्ट किया आमार प्रश्रित  
 देन तुम्हारे भाव हुआ मेरा मन-हृदिन ।  
 तुम्हें न बचकर, दया दिसाई कैसे मैंने  
 या जैसा था दिया उसे जैसा ही रहन ।  
 उचित कहाँ था मुझे तुम्हारा जीवन हरना  
 राजा का तो कार्य प्रजा की रक्षा करना ।  
 धृष्ट-राज्य में दीन हीन कब सुख पाते हैं  
 निरपराध जन वहाँ सताये कब जाते हैं ।  
 मैंने तो कष्ट'व्य किया जो मुझे उचित है  
 और इसे कह रहे सखे ! तुम कि 'यह सुहित है ।  
 यह न प्राण का तान मद्र ! यह मानवता है  
 हिंसा - स परिपूर्ण भाव भी दानवता है ।  
 फिर भी यदि तुम आज चाहते हो कुछ करना  
 तो यह आग्रह, मुझ उचित ही है सिर-धरना ।  
 'समा करो ! तुम मुझे यही आज्ञा है मेरी  
 माँग रहा है दया दया से दून्य भहेरी ।

हे मुप ! है क्या भूत्स भसा मरे प्राणों का  
 मीठा माधन मात्र तनिक यह बसवानों - का ।  
 फिर जिसने जो प्राप्त किया वह उसका ही है  
 जीवित-मुझको छोड़ दया द्रुव ! तुमने की है ।

## बमयन्ती

पहले यह सब-जीव आपका काम करे कुछ,  
 तभी अन्य सब उपकारी का कष्ट हरे कुछ ।  
 क्या - कर-सकता काम अकिञ्चन प्राणी है यह  
 किञ्चन व्यर्थ ही मौम्य । आपने मानी है यह ।  
 मैं वाली के कार्य सभी कुछ कर-सकता हूँ  
 सन्देश तो ध्वज नरों से हर सकता हूँ ।  
 जहाँ न नर जा सकें वहाँ भी जा सकता हूँ  
 कल्प वृक्ष के कुसुम कहो तो सा सकता हूँ ।  
 हों यदि कोई दृष्ट तुष्ट-कर दूँ मैं उनको—  
 जाकर हे नृप ! सभी तुम्हारे गाकर-गुण-को ।  
 बना रहा यदि बिरह किसी का तुमको मन-में  
 मधुर मितन में उस बदन दूँ तो मैं क्षण में ।  
 पूर्ण राग उत्पन्न-कराने में दीक्षित हूँ  
 अधिक-कटु-क्या-स्वयं भारती से शिक्षित हूँ ।  
 कोई भी हो कहीं कर्म यों सुखा-पल में  
 नल में हो अनुरक्त अन्यथा जैसे अनल में ।  
 नर-किन्नर गायक सुरों-के भी घर जाकर  
 कर्म दूत का कार्य नायिका का मैं पाकर ।  
 मद्यपि आप समय सभी कुछ कर सकते हैं,  
 पर क्या निज सन्देश स्वयं ही हर सकते हैं ।  
 हुए अक्षित अति सुष हस की सुन मुहु वाली  
 मन में सोचा है कतल कितना यह प्राणी ।  
 सुन उसका पाण्डित्य क्षणिक वे रहे छो-से  
 करके मुक्त से चाह । किन्तु वे सुरत जगे-से ।  
 हुआ भीमजा-स्मरण हस की सुन मधु यातों  
 नृप को सहसा हृद प्रसाद बिरह की धान ।  
 पा पदसर अनुकूल सफल लक्ष्मी यों बोसे—  
 हो सुम मेरे मित्र, आज से पक्षी मोए ।

यदि कर सकते काम सने । तो इतना करदो  
 में हैं मधुमुच तप्त ताप यह मेरा हृद हो ।  
 प्राय भूमि - को सले । प्राय स्वर्गस्व मिना है  
 कल्प-वृक्ष का कुसुम भी पर प्राय मिना है ।  
 है वह प्रान्त विदर्भ भीम है वहाँ नृपतिवर,  
 कुण्डिनपुर है रम्य राजधानी प्रति सुन्दर ।  
 रूपवती है सुता उन्हीं नृप की दमयन्ती  
 नारद ऋषि ने कहा कि वह है प्रति गुणवन्ती ।  
 सले ! उठाकर कष्ट वहाँ सुम सत्वर आओ  
 करके उससे प्रश्न यही उत्तर ल आओ ।  
 मान्यक्षीम वह कौन ! बरेगी वह मुद जिसका  
 क्या गुण देख पसन्द करेगी वह मुद किसको ।  
 कौन बनेगा देव ! उस पृथ्वी पर पाकर  
 है पुण्यात्मा कौन ! भ्रष्ट नर-वध विनाकर ।  
 कह देना तुम एक अकिञ्चन नल भजानी  
 चाह रहा है तुम्हें बनाना अपनी रानी ।  
 कर, कर, तुमको याद हुआ रोता रहता है  
 बृदिषक-वधन तुल्य हृदय में रुज सहता है ।  
 कर यह मधुरासाय मौट सत्वर तुम आना  
 उसका उत्तर सले ! मुझे आकर बतसाना ।  
 है उत्तर अवसम्ब वही मेरे जीवन का  
 भैमी ही आधार, मित्र ! है नल क तन का ।  
 उसे न पा आधार हीन यह वह पायेगा  
 रुज मरेगा कहीं पार कैसे पायेगा ।  
 उसक निकट लगेध ! युक्तियों से सुम जाना,  
 कठिन न कुछ भी मित्र ! खोज विधुत की पाना ।  
 अब वह बीणा लिये बजायी हो उपवन - में,  
 मान रही हो मोह गीत गा गाकर मन में ।



## रमयन्ती

पक्षी घाकर वहाँ वेग से भरते होंगे  
 धवरा सुषा कन पान मुदित मन करते होंगे ।  
 निकट पहुँचना बिहग ! तभी तुम धीरे बस कर  
 होता नहीं निराश मुदित से कोई मिलकर ।  
 और पहुँच कर तभी उसे सन्देश देना  
 ओ नाविक ! नस तरी कुशलता से तुम सेना ।  
 दूंगा उपकृत स्वयं न तुमको सुसा सकूँगा  
 माँगो यदि प्राण मुदित हो वह भी दूँगा ।

ठीक ठीक है देव ! आपकी है यह वाणी  
 सचमुच मेरी योग्य तुम्हारे होगी रानी ।  
 है वह प्रति कमनीय श्रेष्ठ सुन्दरियो में भी  
 उसका ऊँचा स्थान आज सुर परियों में भी ।  
 एक दिवस मैं गया उसी-के कीड़ा-सर पर,  
 देखी मञ्जुस भूति तभी वह पासों मर, मर ।  
 है रमयन्ती वही आगता है मैं उसको  
 विश्व मुन्दरी श्रेष्ठ मानता है मैं उसको ।  
 दूँ सन्देश उसे बात ही यह है कितनी  
 सोचा होगा शक्ति बिहग में है ही इतनी ।  
 जाता ॥ मैं वहाँ धकेले उसको पाकर,  
 कर दूँ तुम पर मुग्ध तुम्हारा यम गा गाकर ।  
 कहें उसे अनुरक्त कि तुम बिन रह न सके वह,  
 क्षण-मर भूप ! बियोग, तुम्हारा सह न सके वह ।  
 जिस दिन भी वह स्वयंवर होगी नृप बान्सा  
 तो ध्रुव ! घोषित करे तुम्हें देकर वर मासा ।  
 उस प्रब घाठों याम तुम्हारा स्मरण करेगी  
 तुम्हें छोड़ कर नहीं और का वरण करेगी ।

उठा न देखे घाँव वड़े भूपति को भी वह,  
 दुःख देगी निकट अड़े सुरपति को भी वह ।  
 समझो निश्चय भूप । कि दमयन्ती अभिरामा,  
 होकर ही भव रहे, धाय नृप नय की चामा ।  
 बिना प्रतीक्षा किय, बिहग नृप कँ उत्तर - की,  
 नम में गाता उड़ा ताल दे देकर पर की ।  
 यह है मधु सा भीव काय है दुष्कर भारी,  
 कर सकता या नहीं सोचते धम्बाधारी ।  
 पर, है यह घति चतुर सुधा-भी इसकी वाली,  
 कौन न होगा मुग्ध । जिस मुन सहृदय प्राणी ।  
 सोच रहे थे भूप सभी सहृदय - गण धाया  
 उस रजनी विग्राम बड़ी पर सबने पाया ।  
 जाता था उस घोर, उड़ा पक्षी धम्बर - में,  
 वायु वेग था भरा धाज उसके युग पर में ।  
 नीचे चलता कभी कभी ऊँचे बढ़ता था,  
 घन में कभी ग्रहण्य कभी बाहर बढ़ता था ।  
 जाता था वह जला हेम तारा दूटा सा  
 मणि आभूषण किसी किन्नरी का छूटा सा ।  
 दमक रहा दामिनी तुल्य वह काले घन में,  
 खिची निकप पर स्वर्ण-रेख - सी नील गगन में ।  
 देखीं घटवी कहीं नदी नव भरना वाली  
 मिली कहीं गिरि भूमि सुखद भारे हरियाली ।  
 आमा वस विदर्भ मस्य दयामलता भारे,  
 कुण्डिनपुर बस रहा नमदा नगी किनारे ।  
 दूनी घोभा - रही सगित - से कुण्डिनपुर की ।  
 भाठी जिसको देख विवदा यी स्मृति सुरपुर की,  
 भरा पूर्ण ताण्ड्य मानिनी सी मदमाती  
 धंक समेटे - समित सरित मर-मर थी जाती ।

छू छूकर ही युगल तटों को जस बह जाता  
 पकड़ सका कब तीर । निकट से छू रह जाता ।  
 मानों नृप यश द्रवित हुआ धूल छल बहना या  
 द्रव होकर भी सुयस-गोस कम-कल कहता-या ।  
 या बासुका प्रसार, सुखद उसके तीरों पर  
 करते हस विहार सुखद उसके तीरों पर ।  
 देखे, पथ सब घोर पुरी से बाहर जाते  
 उदयो-मुख रवि रश्मि जाम की याद दिमासे ।  
 आते आते हुए जनों से घरे हुए ये  
 मानों सारा मार पुरी का घरे हुए ये ।  
 पहल पहल सब घोर सभी जन कार्य निमन्त्रित  
 बमब प्रगटा रही पुरी परिपूर्ण सु-सज्जित ।  
 कोलाहल बढ़ ठौर न जब सू पर पाता या  
 तब बह मानों विषय गगन में बह जाता या ।  
 अभ्य विष्य ये भवन परम सुपमा के सागर,  
 स्वर्ण पताका फहर रही थी महूर महूर कर ।  
 नई बधू-सी सजी-बजी नगरी थी सारी  
 इन्द्रपुरी हो रही स्वयं उस पर बसिहारी ।  
 पीम पयोधर इके बस्त्र से निकल रहे थे  
 जिसे चन्द्रमुख बाल ध्याम से मचल रहे थे ।  
 या अपमा ही मार न उसको भी सह पातीं  
 रूप गविता नरी सरी सी तिरती जातीं ।  
 वे सब सज भज मध्य बिम्ब प्रकटित करती थी  
 बरबस दसाक हृष्टि समाकर्षित करती थीं ।  
 मंचित होकर वही घरों में पुष्पों डाय,  
 घेनु-कुगासी व्यस्त कहीं कुछ भरती पाय ।  
 होता घन्टा-नाद वही पर देव घरों में,  
 माते है द्विज वेद वही पर सधे-स्वरो में ।

एवेन चमकता हुआ पताका-को फहराता  
 वह सबसे सुविशाल नृपति-की कीर्ति जसाता ।  
 हुगात सग-को हुआ भीम का भवन मनोहर  
 उपवन-में था बना जहाँ-पर मध्य सरोवर ।  
 देख उसे तब हुआ मुदित सग धृति-ही मन-में  
 शत्रु तुल्य वह उतर पड़ा नृप-के उपवन में ।  
 आती थीं मकार, गान-की राज-सदन से  
 जिनको, सुनकर रुसक मनुज हों व्यथित-मदन-से ।  
 कुछ साण कर विद्याम हस ने विस्तृत-उपवन—  
 देखा छवि-से पूर्ण हुआ धृति धावतावित मन ।  
 सहसा चिन्ता जगी सोचकर कार्य-महत्ता  
 कहाँ नृपति का कार्य कहाँ मेरी लघु सत्ता ।  
 कर्म-क्षीर के लिए, किन्तु सम जीना करना  
 सरल और क्या-कठिन कार्य करना सो करना ।  
 देख स्व-कार्य अपूर्ण, सुजन चिन्तित रहते हैं  
 बस सिद्ध-सम तान दुस्रो-को वे सहते हैं ।  
 कम वीर तो कर्म पूर्ण कर ही हटत हैं,  
 देख 'भाम्य' का मध्य पतित-कायर रहते हैं ।'

गमन-से रवि-को जाता देख

हुए सहसा सब कमल स-शोक ।

निशा-का कर केवल अनुभाम

विरह-स्मृति से कम्पित थे कोक ।

बहु विहग प्रभात-प्रतीक्षा-में,

हो मध्न, स्व-भाम्य-परीक्षा-में ।

रजनी-का जाना देख रहा

एक-की शाखा-पर बैठ वही ।

## चतुर्थ सर्ग

बस-यही रात मम-बदन हुआ पीसा-सा  
पृथ्वी-भञ्ज-मल-मल-हरित हुआ गीसा-सा ।  
वह सुधमिसारिका गई बिन्हू ये छोड़े  
हस्त प्रेम से तारे उसे पकड़ने दीड़ ।  
मूर्च्छित-मा विधु हो-गया न यह सह पाया  
आ-पहुँचा मन्-समीर, देख मुस्काया ।  
वह व्यजन इंसाने मगा गन्ध-से सींचा  
हो विवध तिमिर ने हाथ धरा से सींचा ।  
उदयबल-पर रवि बड़े दृष्टि दीर्घाई  
तब गोली भालें उन्हें धरा-की पाई ।  
मुख-पोंछ-दिया कर-बड़ा धरा-मुस्काई  
सोयी-सी अपनी शक्ति शीघ्र ही पाई ।  
गाते-यही जन-काम-मन् सब दीखे  
आप्तस्य कहाँ ! वे स्फूर्ति-मरे धब दीखे ।  
जिस-रहे फल सब हास-गन्ध विसराते  
उमके उमर हैं मुदित मधुप मँडराते ।  
छा रही छटा सब धोर राज-उपवन-में  
मदमाता सा जग रजा मरा-पीवन-में ।  
वह सखी समावृत इधर भीमजा धाई,  
उपवन की छोमा देख उसे धारमाई ।  
भैमी-विधु-मुल धिल रहा छटा छुटती थी  
धिर धिर केशों की चपल घटा धुटती थी ।  
कर-कमल वायु-सा उसे हटा देता था,  
सब मुख दामिनी-समान-छटा-देता-था ।

तन पर सुन्दर परिधान सुशोभित होते  
 मँडराते मुख-पर भ्रमर सुशोभित होते ।  
 बबलु खन खन कर रहे, मञ्जु कर हिमता  
 उसका भागम-भाभास स्वयं यों मिलता ।  
 गौरव से भरती धरा पवित्र अन्न पड़ते  
 सू-को दे अपनी छाप अगाड़ी बढ़ते ।  
 वह इधर उधर अवसोक बसी जाती थी  
 अह हेमलता-सी सहृद, मली-जाती थी ।  
 वह देवसोक - की कान्ति, गमकती फिरती  
 उपवन-वन में, वामिनी बमकती-धिरती ।  
 मैत्री-की थी यह निरय भ्रमण-की बेसा  
 करती वह विधु-सी वहाँ पवित्र-उबेसा ।

“हे सखी ! तनिक वह सता-कुञ्ज तो देखो  
 पत्रों-से आवृत वृक्ष-पुञ्ज तो देखो ।  
 उभरे ये स्तन तारुण्य सता पर छाया,  
 उसने यद्यपि यह अङ्ग सपरन छिपाया ।  
 पर, छिपा-सकी वह कहीं फूट-सा पड़ता  
 पाकर जीवन मकरन्द आप-ही भरता ।  
 तुम भी आँख-में छिपा रहीं कुछ दीक्षा  
 क्या-तुमने यह आवरण सता-से सीखा ।  
 तुम कुसल रहीं जो छिपा सकी हो पूरा  
 रह गया सता-आवरण परन्तु अछूरा ।  
 मुस्करा पड़ी तुम ! देखो सता किसी वह,  
 इससे मधुपों-की भीड़, समोद मिसी वह ।  
 मुँह-जले मधुप मकरन्द-पान करते हैं,  
 भक्त रहे सता-सीन्दर्य गान करते हैं ।

## रमयन्ती

जब हो अशेष मकरन्द पुष्प-मुरझाये  
फटी धीमों तब सता न इनको भार्ये ।  
यह है पौष्य-का हाल विश्व-में घाली  
बह रही यही बह जुग सुमन-की डाली ।  
केसिनी हुई पुन मेघ उधर प्रेरित-कर,  
अमिताभा छिटकी इधर भीमजा-मुल पर ।

केसिनी न है यह बात तुम्हें क्या सूझ,  
पौष्य-का कृष भद्रत्व न समझ-बूझ ।  
रबनी भर मुदता कभी अली फलों में  
बिघ-जाता कभी निरीह असी धूलों-में ।  
अपने प्राणों पर लेन सता को पाता  
करता है इसको मुग्ध गीत-मधु गाता ।  
पाकर अमि का सर्वस्व स्वरस ये देतीं  
यह क्या-देना ! जो मात्र परस ये देतीं ।  
देसो अमि का भद्रत्व सता-को छूना—  
कर देना उसे प्रफुल्ल स्वयं से दूना ।  
सक्ति ! दिन दिन सता-विकास चाहते ये-तो  
मधु सता-वदन-पर हास चाहते ये-तो ।  
करते हैं ये कब हामि पुष्प नितम्बे में  
अमि होते-पीडित-सदय सता-हिमने में ।  
ले स्वरस-भात्र गौरव प्रदान करते हैं,  
अपना सब स्नेह उड़ेस उसे भरते हैं ।  
क्या-काम धाय मकरन्द ! न यदि ये सेबें  
हैं अप्य-सता-सौन्दर्य न यदि ये सेबें ।

“शुचमुष सुन्दर रमयन्ति ! तुम्हारा कहना,  
पर, यों पीरय-अनुरक्त तुम्हारा रहना ।

## चतुर्थ सर्ग

क्या अभिष्यक्ति कर रहा मुझे बतसाधो !  
 भ्रष्टा ! धीरे-धी कहो नान-मे धाधो !  
 यों-सुनकर मैमी हुई नमी सज्जित-सी  
 जिससे भाँसे सविशेष हुए मज्जित-सी ।  
 पाटल यों-हुए कपोल रक्त-को पाकर  
 सहसा सिमटी सब लाज वही क्यों-भाकर ।  
 कुछ कहने मैमी बली लकी पर सहसा  
 वह हेमलता-सी लचक मुक्ती पर सहसा ।  
 प्रति वक्ति भ्रमित-सी खड़ी कशिनी बोसी—  
 धी भुजा नाल-सी सघी चिटकती बोसी ।

देखो देखो, हे सखी ! उधर वह कसा !  
 बैठा-है सुन्दर-हस न देखा जैसा !  
 सुनकर मैमी धी चकित ठिठक-कर-बोड़ी  
 इंगित-पर मृग-सी दृष्टि विवश-हो-दीड़ी ।  
 सम्मुख बैठा था हस किये मुख नीचे  
 योगी-सा ध्यान-निमग्न हगों-को नीचे ।  
 कुछ पासपास धी उसे न सुध-मी लगती  
 पर चमक रहे थे पल ज्योति-सी जगती ।  
 मुख-पर उभार आश्चय मरी - सी देखा,  
 आपाद हस विस्मित-हसी ने देखा ।  
 वह दिव्य-दृष्टि आ पड़ी दिव्य तन पर अब,  
 रह गई प्रकृति भी स्तब्ध विमोहित-सी तब ।'

है यहो भाग्य सखि ! आज हमारा कितना  
 क्या-हमने सचमुच पुण्य किया है इतना ।  
 यह राजहस कब कहीं दोस्तता किसका  
 इतकरय हुई हम आज देखकर इसका ।



जब हा अधोप मकरन्द पुष्प-भुरभार्ये  
फली आँखों तब सता न इनको भार्ये ।  
यह है पौल्य-का हास बिषय-में आसी  
बह रही यही बह पुष्प सुमन-की आसी ।  
केशिनी हुई कुप नेत्र उधर प्रेरित-कर,  
अमिताभा छिटकी इधर भीमजा-भुज पर ।

केशिनी न है यह बात तुम्हें क्या सूझा,  
पौल्य-का वृद्ध भद्रत्व न समझा-झुझा ।  
रजनी भर मुदता कभी असी फलों में  
विष-जाता कभी निरीह पत्नी धूलों-में ।  
अपने प्राणों पर खेल सता को पाता  
करता है इसको मुग्ध गीत-मधु गाता ।  
पाकर अमि का सर्वस्व, स्वरस ये देतीं  
यह क्या-देना । जो मात्र परस य देतीं ।  
देना अमि का भद्रत्व सता-को सूना—  
कर देना उसे प्रफुल्ल स्वयं से बुना ।  
सति । दिन दिन सता-विकास चाहते ये-तो  
मधु सता-बचन-पर हास चाहते ये-तो ।  
करते हैं ये कब हानि पुष्प क्षिप्तने में  
अलि होते-पीड़ित-सदय सता-हिलने में ।  
से स्वरस-मात्र गौरव प्रदान करते हैं,  
अपना सब स्नेह उँडेल उसे भरते हैं ।  
क्या-काम आय मकरन्द । न यदि ये सेबें  
हैं व्यर्थ-भता-सौन्दर्य, न यदि य सेबें ।’

“सचमुच सुन्दर दमयन्ति ! तुम्हारा कहना  
पर, यों पौल्य-अनुरक्त तुम्हारा रहना ।

क्या-प्रतिभ्यक्ति कर रहा मुझे बतलाओ !  
 प्रपन्था ! धीरे-धी कहो कान-में आओ !  
 यो-सुनकर भैमी हुई तभी सज्जित-सी  
 जिससे घाँसे सविशेष हुई मज्जित-सी ।  
 पाटल यों-हुए कपोल रक्त-को पाकर  
 सहसा सिमटो सब साज वही ज्यों-आकर ।  
 कुछ कहने भैमी चली, रुकी पर सहसा  
 वह हेमलता-सी लज्ज मुझी पर सहसा ।  
 प्रति चकित भ्रमित-सी सखी केशिनी बोली—  
 धी मुजा नाल-सी सखी चिटकती बोली ।

“देखो देखो, हे सखी ! उधर वह कैसा !  
 बैठा-है सुन्दर-हुस न देखा जसा !  
 सुनकर भैमी धी चकित ठिठक-कर-बोड़ी  
 इंगित-पर मृग-सी दृष्टि, विवश-हो-दोड़ी ।  
 सम्मुख बैठा था हुस, किये मुख नीचे  
 योगी-सा ध्यान-निमग्न, हगों-को मीचे ।  
 कुछ पासपास की उसे न सुघ-सी लगती  
 पर चमक रहे थे पल ज्योति-सी जगती ।  
 मुख-पर उभार आश्चय मरी - सी रेखा,  
 आपाव हुस, विस्मित-हुसी ने देखा ।  
 वह दिव्य-दृष्टि जा पड़ी दिव्य सन पर जब,  
 रह गई प्रकृति भी स्तब्ध विमोहित-सी सब ।”

है यहो माम्ब सखि ! आज हमारा किन्तना,  
 क्या-हमने सचमुच पुण्य किया है इतना ।  
 यह राजहुस कब कहां दोखता किसको ,  
 इतदृश्य हुए हम आज देखकर इसको ।

सोने के इसके पंख धीमे मन को,  
 होगा न प्रफुल्लित कौन ! देख इस धन को ।  
 किसना धनुषित सा नीक्य हगों-में भरता  
 यह सदा दीक्षता रहे यही मन करता ।  
 धापा जैसे भी धन इसे हम रोकें  
 रखकर पिंजड़े में बन्द सदैव बिलोकें ।  
 लेकर बिटपा-की घोट स्व-पाव उठाना  
 हो जान न ध्वनि कुछ कही मन्द-गति धाना ।  
 सखियों-को लेकर जमी भीमजा नृप-सी  
 उस पद्म-हस-पर धाम लगी मधुप-सी ।  
 हो गया किन्तु जग सजग तनिक ध्वनि सुनकर  
 बढ़ गया इमी से धीरे छप कुछ गुनकर ।  
 तब सखियों-स नृप-सुता प्रम से बोली—  
 बी धाँसे धापा मरी मृगी-सी मोमी ।  
 सब माथ रही तो हाथ न यह धायेगा  
 ध्वनि होगी कुछ धनिवार्य भाग जायेगा ।  
 अच्छा छाड़ो ! तुम मुझे मीन सब जापा  
 के तिल-नृप हैं पुष्प उन्हें चुन जापा ।  
 मत धापा मेरे माथ धकेल जाऊँ,  
 जैसे भी हा यह हम पकड़ कर लाऊँ ।  
 तुम, बिबिध मली जल पड़ी पुष्प धय करने,  
 बैदभी भी हम धोर स्व-विस्मय-हरने—  
 बढ़-जसी, पूव-की भाँति, धनध्वनि गति-से  
 रह-गई तनिक-सी दूर, कि, जय जग पति से ।  
 तब तनिक बूझकर विहग बड़ा कुछ धाँडा,  
 भेमी ने निकट विसाक, न माहस छाड़ा ।  
 ज्यों-ज्यों कुछ ममी बढ़, हम भी वेने,  
 बढ़ता था धागे हा न मने धून जम ।

पद-पद पर 'कर-गत' समझ भीमजा-पीछे—  
 जाती, साता हो हस, उसे ज्यों-ज्यों।  
 वह छाया की ही भाँति, चली-जाती थी,  
 कर, बार-बार भी यत्न छली-जाती थी।  
 पद, होती थी न निराश, न धीरज हारा,  
 सोचा, पद-पद पर मफस कि, धम धम सारा।  
 भभी के मुख-पर जगे स्वेद बना ऐसे  
 प्रात कमलों-पर लगे, घोम-कण जैसे।  
 चलते चलते सग पहुँच-गया निजन-में  
 तरु-गुल्म-भ्रता से पूरा सघन-उपवन-में।  
 अब द्वास तीव्र चल रहा चकित थी बासा,  
 इस सग-जातुक को देख चकित थी बासा।  
 सहसा जा-बैठा हस कूद शाखा-पर,  
 पानी-सा फेरा भीम-सुता भाषा-पर।  
 करके उसको प्रति चकित-सुधा-सी वाली,  
 यों, कहने लगा-अगे, सुनो कल्याणी।  
 साधारण समझो मुझे न दिव्य विहग है  
 दारुदा-धम्ब-को वहन किया वह सग है।  
 क्या-करा मुमुक्षु! तुम व्यर्थ पकड़ कर, मेरा  
 मैं, धाया था इस ठौर क्षुधा-से प्रेरित।  
 सुमनों-को करके प्राप्त सौख्य-मिलता है,  
 ज्यों-रबिकर का पा योग कमल खिलता है।  
 भोजन तो मिलना दूर हुआ अब आकर  
 तुम मुझे पकड़ने चलीं भरी! हरमाकर।  
 शिशुता ने ही पर विवदा किया यह तुमको,  
 नभसता ने ही भाव दिया यह तुमको।  
 भन्यपा धान्त हो तुम्हीं, विचारा मन-में  
 कर गई भूल तुम बड़ी सुनयने! अग-में।

हम पृथ्वी-जल-वस-धवल और है ममचर  
हमको है प्राकृत प्राप्त पक्ष-मे-सुन्दर ।  
तुम केवल सुचर धुमे । प्रवसा प्रवसा हो  
कोमल हो प्रसि सु-कुमारी इन्दु-कसा-हो ।  
बाहा फिर भी इस भीति पकड़ना लग-का  
पदचर को समव कहा । पकड़ना लग-को ।  
भद्र । न उचित व्यापार पकड़ना-मुझको  
पक्षी को बन्दी बना मिस क्या-तुझको ।

मैं तुम्हें पकड़ हूँ हम । न कुछ भी करती  
केवल निज-विस्मय तुम्हें देखकर हरती ।  
प्रवसोक स्वर्ण-के पक्ष बड़ा जो मुझको  
तुमको पाने का नया बड़ा जो मुझको ।  
सचमुच है मेरी भूल किया जो मैंने  
लग ! व्यर्थ तुम्हें यह बघट दिया जो मैंने ।  
तुम क्षमा करा जब मुझे विनय यह मरी  
इतना कहकर सुन्दरी छूमि-गर हेरी ।  
सरजा भय विस्मय साध जगे सब मन-में  
लग-भूत करने का माह सृजत वा क्षण-में ।

“तुम समझ न पाइ धरे ! मेव यह स्थाना,  
वाले । मुझको यह देल लेव है कितना ।  
दीपक देता मसि उगल तिमिर को साकर,  
पानी भी मुक्ता घमे छीप का पाकर ।  
सरागत्र ही तुम नाय-गुणों का जानों  
बस, इमी भीति तुम देखि ! मुझे भी माना ।

## चतुर्थ सर्ग

मोती ही मैंने चुगे मदा-से साये  
 बस इस प्रभाव से स्वर्ण-पल उग-भाये ।  
 मी-मरम्बती को दया देवि ! यह जानो  
 इसलिए न अचरज गुमे । हृदय-में मानो ।  
 हाँ-मुझे पकड़ना स्वयं बतागा है मैं  
 जो तुम्हें पकड़ना उचित बताता है मैं ।  
 सुन्दरि ! नल-नृप-का हाथ-पकड़मो जाकर  
 हो जाओ तुमुझि । कताप उन्हें तुम पाकर ।  
 अगणित हैं उनके मृत्यु इस मुक्त जैसे  
 रहते हैं उनके पास बिहुगवर ऐसे ।  
 देखोगी धासे । उन्हें हाथ-में लेकर,  
 तुम पूरा कराना उन्हें अनुज्ञा देकर ।  
 हा गई दीनता मष्ट दान-से नल-के  
 हा गई मूसता-दूर ज्ञान-से नम-के ।  
 गट उस सा कोई और न है अब जग-में  
 है भरि-कंटक अवशोर न उनके मग-में ।  
 बिधि-से हैं अगणित प्राप्त श्रेष्ठ गुण उनको  
 गिन-सकता कोई कहीं भला-उड़-नारा को ।  
 बिधा उदारता दया और मन रजस  
 वे-हैं सब में ही प्रथम दीन-दुल-भजन ।  
 मुनकर नल नृप-का नाम हुई तुम सञ्चित  
 धापा हुई सकोच सिन्धु-में मञ्जित ।  
 पर, अनुचित है यह धाव तुम्हारी सज्जा,  
 करती है कमी अनिष्ट कुमारी ! सज्जा ।  
 इसलिए, न अब सकोच करो तुम इसमें  
 जीने-मरने-का प्रश्न निहित है जिसमें ।  
 हाँ जीवन सार्वक तभी बरो ! अब नल-को  
 हो काम तुपा-सी दान्त प्राप्त कर जस को ।

मणि-काञ्चन का ही योग सत्य तब होगा  
 नम-दमयन्ती संयोग कि धन जब होगा ।  
 यदि पा न सकी तुम उन्हें, विफल है जीवन  
 यह विफल दिव्य सौन्दर्य विफल यह जीवन ।  
 तुम सुन्दरियों में दृष्ट भाजकम जैसे  
 हैं कीर कीर सौन्दर्य पूर्ण नल बसे ।  
 विभि ने सुन्दरता सिन्धु मया यों आनो  
 निकले जिनमे दो रत्न तुम्हीं यों मानो ।  
 फिर यदि वे दोनों मिलें अहा-क्या कहना  
 कर देगा नू का स्वर्ग तुम्हारा रहना ।  
 माना कि इन्द्र भी बली गुणी सुन्दर है  
 अनुपम है बिद्यावान सुरो में बर है ।  
 हो जायेगा तैयार तुम्हारे हित वह  
 पर सोचो सुन्दरि! तुम्ही न है समुचित यह ।  
 किमती अप्सरा शशी अनेकों रानी—  
 रहती हैं उनके निकट स्वयं वह मानी ।  
 दो दिन भी तो तुम भान न उमसे पाओ ।  
 हे नृचिन्मित ! बर उह मदा पक्षताया ।  
 है यद्यपि योग्य अनेक किन्तु व्यवसायी  
 वह कार्याधिक न तुम्हे न हो मूलदायी ।  
 सोपो यदि अपना हाथ बक्षण-के कर-में,  
 तो वह रखेगा तुम्हें मृत्यु-के घर-में ।  
 हैं नरक वहीं पर भीन काम स फिरते  
 अस होकर मानो अक्षय सिन्धु-में तिरते ।  
 क्या वही काम तुम मला-यमन्द करोगी  
 अन्तक-कोड़ा-सी देय न धैर्य धरोगी ।  
 रह गया अग्नि जाज्वल्यमान है वह तो  
 उसको बरना धुक, प्राण-नाश है वह तो ।

यम हैं प्रति ही उद्विग्न कूरता वाले  
 सुनकर भासों का रुदन मरोगी वाले ।  
 हैं धन्य देव पर वे न उच्च पर वाले  
 धाकपक भी तो नहीं, तवपि मद वाले ।  
 सम्मानित होना वहाँ तुम्हें दुष्कर है,  
 ह नरी । तुम्हारे लिए योग्य-वर-नर है ।  
 जिसमें नख तो नररत्न मसा फिर-बँसा  
 पाओगी धवसर कहाँ मिले वर ऐसा ।  
 मैं मान रहा हूँ साज तुम्हारा गहना  
 पर, उचित न करके साज मैं धव रहना ।

हे हंस ! जान यह पड़ा गुणाकर हो तुम  
 चातुय-पूर्ण सग बस दियाकर हो तुम ।  
 यह भवो भाग्य ! जो आज मिले तुम मग-में  
 तुम जसा पत्नी सुना न मैंने जग में  
 हे विहग ! धन्य तुम धन्य तुम्हारी-वाणी—  
 करों-को करती तुष्ट सुधा-से सानी ।  
 तुम अनुगृहीत हो स्वयं शारदा माँ - से  
 तुमने पाया भव - पार पाग्ना माँ से ।  
 हाँ - तुमने जो कुछ कहा मानती हूँ मैं  
 कन्याओं के भी भाव जानती हूँ मैं ।  
 एकान्त-प्राप्त-कर निज मविष्य-का चिन्तन  
 वे करतीं कैसा मिले हमें जीवन-धन ।  
 सनका मन माना-निव्य-कल्पना करता  
 पर, अपने-में ही उन्हें-सँजोये रखता ।  
 कहती वे अपने भाव सही-कब । किन्तु  
 तुम पूछ-रहे हो प्रश्न वही भव भुम्हारे ।



मैं तो हूँ गड़ सी रखी साज के मारे  
अवरज जो सम्मुख लड़ी देह-को घारे।"

हे योग्य तुम्हारे देवि । तुम्हारा कहना  
नारी को पड़ता चाह । विवश मय सहना ।  
इस मृत्यु-शोक में सुमुखि । जीव-गण-सारा  
पुरुषों ने वस में किया कुटिम-मति द्वारा ।  
देखो महिला भी आज विवश है कैसी  
कहती न हृदय-का मास अवश तुम एसी ।  
पर यही विवशता तुम्हें बड़ाती ऊँचा  
पुरुषों से भी बहु-गुणा बढ़ाती ऊँचा ।  
पशु और नरों की एक भेदिका लज्जा  
किस वधुओं की है सर्व धेए यह लज्जा ।  
इसलिए, मैं कह रहा कि लज्जा छोड़ो  
तुम अपनी वह अनिवाय सुलज्जा छोड़ो ।  
पर उभिन जहाँ-हा वही मास-पट तानो  
मैं तो पछी हूँ मुम न तुम नर मानो ।  
फिर लज्जा की भी बात न है कुछ हमने  
अवलम्बित जीवन-मना तुम्हारी जिममें ।  
मानो तुमने ही ठीर जिम नी-मन-में  
कर-दे वह अस्वीकार तुम्हें यदि लए-में ।  
तो मसा बिचारा तुम्हीं दसा हो कैसी ।  
तुम हो साधारण नरी न औरों जसी ।  
निज बस रीति अनुमात्र मनी ही हो तुम  
ता क्या-फर-महमा प्राण न तब दोगी तुम ।  
हो मुक्त विदित बृद्ध मय तुम्हारा देयो ।  
ता सम्मन मुन्न वन मुन्न पद म्बा ।

उस जन के जाकर निकट भूमी में क्षण-में  
 कर-दूंगा तुम पर मुग्ध विचारो मन-में ।  
 यों कहकर था तब मौन विहग क्षण भर को  
 पकड़े जो भूमी इधर स्व-कर से कर-को ।  
 नीचे हग ध कूट आह रही-थी कहना  
 कह सकी न पर था भार मौन भी सहना ।  
 दौड़ाकर मुक्त-पर रग विवश फिर बोली—  
 धी पदांगुष्ठ पर धाँस भूमी-सी भोली ।  
 हे विहग ! श्रुत है निपघराज यदि जग में  
 वे प्रथम गण्य सौन्दर्य सुयदा बन-मग में ।  
 भमरों-द्वारा भी मान धाज के पाते  
 बिरुपावलि जिनकी राजहंस भी गात ।  
 तो है मेरा सौभाग्य अकिञ्चन पर वे—  
 कर दया करें स्वीकार तुम्ह-का कर वे ।  
 उनकी दासी बन-सकूँ माय्य अपने पर,  
 हो-रहा नहीं विद्वास सुलभ-सपने पर ।

‘कटु-सिखा शीत का तप्त सवण को मीठा  
 सुन्दरि ! जो यह उद्गार करेंगे मीठा ।  
 कह-सकें अकिञ्चन तुम्हें वे बाले ।  
 नस तो सुन्दर सुयोग्य कहेंगे बाल ।  
 फिर तुम्हें न बर-कर कौन आतुरी होगी  
 भवभोक तुम्हें तो मौन आतुरी होगी ।  
 पाकर तुमको निपघेश प्रफुल्लित होवें  
 उन स्वण-क्षणों को सूझ न भूपति लोवें ।  
 मैं तुमको यह विद्वास दिसाता भूमी !  
 यह विहग तुम्हारी आस जिखाता भूमी !

'प्रस्तुत मेरा सर्वस्व उन्हीं के हित है  
 सब वही करो तुम हस। जो कि समुचित है।  
 'हे माधुवाद दात भीमनन्दिनी। तुमको  
 प्राप्तीय परम ध्यानन्दकन्दिनी तुमको।  
 यह निर्णय सबमुख योग्य किया है तुमने  
 निज मति-का परिचय ठीक दिया है तुमने।  
 पर स्वयं न हो स्वाधीन वास्तिके। इस क्षण  
 इसका यदि करे विरोध तुम्हारा गुरु-जन।  
 या देख स्वयंवर-मध्य देव-गण घाये  
 हे रमणि। तुम्हारा विषय हूँ वयं नम जाये।  
 तब क्या होगा क्या सोच लिया यह तुमने  
 या यों-ही वचन-प्रदान किया यह तुमने।  
 भी हुई अकुटिल कुछ कुटिल क्रोध में भरके  
 मैमी बोमी निज दृष्टि बल यों करके।  
 क्या कहा भसा क्या वचन टलेगा मेरा  
 पहले यह कुत्सित देह जलेगा मेरा।  
 है पूर्णतया स्वाधीन स्वयं मैं इसमें  
 जीवन-का सुख दुःख सभी निमरित जिसमें।  
 इसमें कोई अवरोध न कर सकता है।  
 है कौन विवश कर मुझे कि बर सकता है।  
 बेचारे मूर क्या-मुझ स्व-यय से टारें  
 वे आकर मुझपर तनिक दृष्टि तो डारें।  
 रे विहग। अधिक क्या बहूँ मुनो प्रण मेरा  
 यह हो न सके निषेधा प्राण-धन मेरा।  
 पहना-याई यदि उन्हें न निज-वर माता  
 तो अविवशित ही रहे सदा यह बाला।  
 मैं धनन रहूँ तो धरण धनन की जाऊँ  
 ही नहीं किसी-को प्रसित स्व-मुद्रा दितसाऊँ।

## चतुर्थ सर्ग

साक्षी-हो मेरे हंस मूर्य शशि तरु-गण  
 ये सिमों मत्तार्ये गगन सरोवर, उपवन ।  
 इस पुष्प-भूमि पर जन्म मिया है मैंने  
 आयुष्यों-का सत्संग किया है मैंने ।  
 यह सवुपदेश दे रहा जहाँ बर-कण है  
 प्रण के प्रागे निस्तार-हीन, जीवन है ।  
 छोड़ो न धनूरा उसे कहो जो मुक्त-से  
 साहस को रक्ता सजग न डरना दुक्त-से ।  
 फिर सतियों के पद-चिन्ह कि जिसने देखे  
 हैं वने दुक्त भी सौख्य कि जिनके देखे ।  
 मैं कहूँ न वे पद-चिन्ह कसकित उनके  
 हाँ और कहूँ हड़ सती-कीर्ति-पट बुनके ।  
 प्रा-देवों भव सब विघ्न मुझे विसमावेँ  
 जीवन रहते वृद्ध मुझे स्व-पथ-पर पावें ।  
 हो सकता है निपघेष्ट अमादुत करवें  
 पुरुषत्व-केन्द्र वे भले भग-वत् करवें ।  
 तब विदित अनस-पथ मुझे सहाय देगा,  
 हठ भाग्या को वह सदाय किनारा देगा ।”

“हे भैमि ! समझलो सत्य मिमो तुम वानों  
 दामिनी-मेष-से मिले सिमो तुम दोगों ।  
 जिसने शिव से संयोग किया गिरिजा का  
 श्री-हरि, का सुन्दर युग्म हिमाद्रु-निगा-का ।  
 उस विधि ने वह अम्मास तथा क्या-अपना  
 जो हो न बन्धके ! पूर्ण तुम्हारा सपना ।  
 आहा-किन्तु वह समय मनोहर होगा,  
 जब मन-कर-में यह सुमुक्ति-बन्धन-कर होगा ।

भीषण ही उसके बिना निरर्थक मेरा  
 मैं रहूँ सदा सर्वदा सुमुखि-पद मेरा ।  
 यों-संबोधित कर तुम्हें निपद्यपति कहते  
 निज तन-मन पर दिन-रात ध्याना में सहते ।  
 सहृदया नहीं हो भोगि ! एक दिन बोले—  
 है नूतन से स्मृत मुझे वचन में मोले ।  
 जब का मैं यदि इस भाँति-उपासन करता  
 तो अपने-पर निश्चयक धर्म-मन हरता ।  
 पर ममी-जरदा हुई न पूजित होकर,  
 मैं उसका सेवक बना महीजित होकर ।  
 निज रोदन जब-से अर्घ्य उसे देता हूँ  
 उत्थानासन के समय नाम लेता हूँ ।  
 आकृष्ट न फिर भी भीम-नन्दिनी मुझ पर,  
 सहृदया-नहीं वह भोह ! कठिन उसका उर ।  
 कहते कहते रो-पड़े निपद्य-पति सहसा,  
 दुर्दुस्स मित्रों-को तुम्हा देल दुस्सह-सा ।  
 फिर तुम्हीं कहो ! हो गये मुग्ध जो ऐसे  
 कर - दैये अस्वीकार तुम्हें वे कैसे !  
 अब तक जिसको भी छिपा रही वीर-से  
 नृप-मुता सिसक अब उठी उसी-पीड़ा-से ।  
 केवल मुझ से कर आह ! हस-सं बोली—  
 भृगु धावक जैसी आँखें-भरकर भोली ।  
 यह, आह हुई या वेग वायु-का घामा  
 जिसने भज्जा का पूर्ण-यमोव हटाया ।  
 "जो भी भस्मावृत हुई, हृदय - की ज्वाला  
 उसको कर धुत-से संवित धधका-जाया ।  
 अणु-पर छिड़काया, सवण भरे ! क्यों तुमने  
 भी सुष्ठ वेदना, सजग किया यों, तुमने ।

यों कहकर रह कुछ मौन स्वरित-फिर बोली—  
 वाली भीमी की हुई वरुण रस बोली ।  
 हे हृम ! न हूँ क्या माम्यपालिनी भव में  
 पाती-हूँ मन में स्थान कि उनके जब-में ।  
 यदि आयपुत्र यों स्मरण मुझे कर-लेते  
 तो, पतिता को फिर मान न क्या-वे देते ।  
 जो सुन्दरता को देख प्रेम-होता है  
 वह मोह ! व्यथ-ही प्रेम-मूल्य सोता है ।  
 वह कर स्व वामना पूर्ण नष्ट होता है,  
 उसमें दोनों ही घोर नष्ट होता है ।  
 पर, मुझे उन्होंने कभी न देखा भासा  
 फिर भी अपने को प्रेम घनस में डाला ।  
 है यही मानसिक प्रेम खेमकर जग में  
 यह विष्य-सुधा बरसाता जीवन-मग-में ।  
 हाँ एक पल-से कभी नहीं यह होता  
 दोनों हृदयों में सभी कहीं यह होता ।  
 मैं, बहुत दिनों से, आर्य्य - पुत्र - पद - बेरी  
 जो निपथराज की दशा, वही है मेरी ।  
 हे खग ! उनसे भी अधिक, क्यों कि वे नर हूँ,  
 ज्ञानी विद्या-मति-सिधु, भटों में बर हूँ ।  
 सहना फिर उन्हें वियोग न कुछ भी भारी  
 मुझको देखो ! मतिहीन भयस-कष्ट-नारी ।  
 जब उनकी ऐसी दशा हुई इस दुस्त-से  
 तब क्या-है मेरी दशा कहीं किस-मुक्त-से ।  
 वे हैं सब निप-के घूट जिन्हें पीती-हूँ  
 विस्मय होता, किस भाँति कि, मैं जीती-हूँ ।  
 घट जाता है दुस्त - मार, कम्पन करते से,  
 पीतस होता उर दाह, आह, भरने - से ।

## धर्मपत्नी

दुर्गम भवसा के लिए किन्तु पक्ष दोनों  
 क्या को ये सविशेष बहिष्कृत दोनों ।  
 श्रुति-मुसद नाम वह सुना अभी से मैने  
 कर आत्म-समर्पण-बिया तभी-से मैने ।  
 मन मन्दिर में प्रिय पाद अर्चना करती  
 मैं इस प्रकार कुछ ताप हृदय का हरती ।  
 वी बरमासा कर चुकी स्वयंवर बीठा  
 है फिर भी हाथ । अपूर्ण अभी मनचीता ।  
 अब धार्य-वरण बस मोक-दिखाना ही है,  
 देना उसको बरमास बहाना-ही है ।  
 वे नाथ हुए, हौ-नाथ और मैं-बासी  
 मेरा मन तो हे बिहग । अपस बिश्वासी ।  
 हा पूँज गया क्या मात्र कौनसा मनी  
 कर गया हाथ क्या-तत्र कौनसा । तन्त्री ।  
 क्या-बादू, उनपर मोह । न भेद बसा है,  
 जो भवसा-मन असहाय अदृश्य समा है ।  
 जब-से विधि निश्चित-हुई स्वयंवर-की है,  
 तब-से बरसों के सपुत्र एन पस-भी है ।  
 जग । धार्य-पुत्र-के निकट पहुँच तुम जाना  
 कहना कि यहाँ अनिवार्य उन्हें है जाना ।  
 यदि धार्य स्वयंवर-मध्य न दृग्गत होंगे  
 तो इस भवसा-के प्राण स्वयं हत-होंगे ।  
 भवसा हत्या का पाप बढ़ेगा उन पर,  
 सग जाय कभूत फिर क्या-न भसाधुमशुणपर ।  
 पर, यह सब सुन के मुझ हीन मानेंगे  
 निश्चय सज्जा से रहित मुझे जानेंगे ।  
 उससे मत कहना हंस । अतः तुम कुछ भी  
 ही कह सकते हो बात स्वतः तुम कुछ भी ।

मैं स्वयं सहींगी सभी वेदना मन-की  
पर, धाँसें हठ कर रही धार्म्य-दर्शन-की ।  
मैं तड़प-रही हठमाय्य अजस-शफरी-सी  
फटी भी धाँसें रहें, पयोद भरी सी ।

सहसा, सग-बोला-उधर तुम्हारी सलियाँ—  
आ-पहुँची सुन्दरि । शीघ्र पोंछलो धँसियाँ ।  
तुम रहना इसी प्रकार सुहृद निज प्रण-पर,  
रखना पूरा विश्वास निपघ-के धन पर ।

‘बोका-सा ठहरो हस । अभी जाती-हूँ  
मुक्ता चुगना-तुम खोद्य लिये जाती हूँ ।

‘मुक्ता-से भी बहु-मूल्य तुम्हारी बाणी  
कर-बुका पान यह हंस लियो । कल्याणी ।

उड़-गया हस रह-गई ठगी-सी वासा  
सुन सभी । सखी । सम्बोध जगी-सी बासा ।  
होता प्रमात-का चन्द्र गगन-में जैसा—  
निष्प्रम भँमी-बन्नेन्दु हुआ भव वैसा ।  
उत्सास हास सब साथ सुप्त-सा दीखा  
उसकी अपना ससार सुप्त-सा दीखा ।  
बलवती हुई वह किन्तु और अभिमाया  
दे-रही धैर्य परिपूर्ण उसे भी आशा ।  
अपने समान ही दशा स्व-प्रिय की मुनके—  
हो रहा तोप कुछ, सुलद-मधुर-गुण उनके ।



## रमयन्ती

ये कर सब सञ्चित पुष्प प्रतीक्षा-करके  
 सज्जि ! हम भाई पद-भिन्नु तुम्हारे धरके ।  
 हम तो थीं सो-सी गई न तुमको पाकर,  
 क्या-सोच रही हो यहाँ बिजन-में आकर ।  
 मुझ पर कैसे भा रही उदासी घासी !  
 क्यों ! धौल घरग-मी हुई, धरी ! य कासी ।  
 मय सगा न क्या-कुछ तुम्हें यहाँ पाने-में  
 हम तो सब धक मी गई तुम्हें पाने-में ।  
 वह राजहंस है कहाँ ! न हाथों धाया  
 पक्षी के पीछे, व्यर्थ कष्ट यह पाया ।

मैं पकड़ न उसको सही यही फिर बैठी  
 ये विविध-भाव उर-जग उन्ही में पैठी ।  
 या कितना सुन्दर हम नेत्र सुलकारो  
 घाता वह कैसे हाथ ! गया नमच री ।  
 मञ्छा ! धाया धर धम नाम धति धीता  
 सग रह, सुलभ धाराम मुझे सब रीता ।  
 धागे भमी-जो बिये बसी सब सलियाँ  
 कुछ पात्र रही लोया-भा उसकी प्रीतियाँ ।  
 मन स्वस्थ न था भीमबा मान-सा भूमी  
 इग मग इग मग पद-पङ्क मौस थी फपी ।  
 वह बार बार हाँ सावधान बसती थी  
 पर, बिगत सणों-की याद उसे छपती थी ।  
 उसका केसिमी सैयाम-सिय जाती थी  
 पद-पङ्क पर ही उड़ोप निध जाती थी ।  
 हे मन्त्री ! तुम्हारा बन्ध, गुन्म ने पकड़ा  
 रह गई गढ़ी क्या-भरी ! पौर क्या-जगड़ा ।

यह वाद कटिफित इधर उलझ आधोगी  
क्या सम्मुख पथ धक्का न नल पाधोगी ।  
हो गया तुम्हें क्या-भाज-सकी । ओ ऐसी ।  
विक्षिप्तों की भग-रहीं न देखी बीसी ।

हे सखी ! न है तन स्वस्थ उछलता मन है,  
छटपटा रहे-से प्राण वितप्त-बदन है ।  
घाँसों-आगे तम बहर बहर धड़ता है,  
हो गया मुझे कुछ रोग जान पड़ता है ।  
यों-भुन मैत्री के वचन कसिनी-बोली—  
सचमुच हो तुम अनजान कुमारी सोमी ।  
भायावी बा-बह इस रची कुछ माया  
यह स्वयं-सता-सी बस तुम्हारी काया ।  
आया क्या-कोई बेब ! छप बशी वन  
— से — गया चुराकर, मग्न-सक्ति से मूढ-मन ।  
फिर कभी धकेले कहीं न आमी । जाना  
हम भी आती थी साथ न कहना माना ।  
कहती सुनती घा गई भवन में वे सब  
नृप-सुता रोग-उपचार-भ्यस्त थी वे सब ।

उस घोर, जग-अन्तुष्ट हो, गाता हुआ बा उड़ रहा,  
घह! दीप्ति-सा ठँके, कभी नीचे, कभी कुछ मुड़ रहा ।  
बहु, वृत्त भीमी-का सभी, मृप-से निवेदन जा किया,  
पीमृप-का-सा पान वह! नृप ने युगल श्रुति से पिवा ।  
वे सावुवाव अगेरा को, आभार घति प्रगटित किया  
बा हर्ष से परिपूर्ण तब उम-युगल-मित्रों का हिया ।  
दिन स्वयंवर-वे गिल रहे अब निपधपति हर्षित हुए,  
उस दिव्य-सी नृपनन्दिनी मे पूर्ण आकर्षित हुए ।

## पञ्चम सर्ग

मूरु सोक भी घग हुआ  
 स्वर्ग को प्रतिष्ठा किया  
 प्रान्त बिदम वहाँ पर है  
 भार्य्य सूमि का वह बोना  
 कुण्डनपुरी गजधानी  
 वही भीम नृप के घर में  
 त्यो दमयन्ती सुता हुई  
 मुरपुर में भी पाव कही  
 अब वह स्वयंवरा होगी  
 उत्सव सफल बनाना है  
 यही सोच अपने मन-में  
 तैयारी में लगे हुए  
 पर मेरा अनुमान यही  
 बनी गुणी जो सुन्दर है  
 हाठ हाठ रवि मुह पर जगते  
 उगह देवकर वह बापा  
 किन्तु सफल जीवन करने  
 और देवने धार्य्यो का  
 जाना वहाँ समीपन है  
 धत सभी जाओ जाओ  
 ऐसी मारदाकिन मुनक  
 सज्जित मुर-मुर अधिबामी  
 हुए वहाँ पर जान का  
 उरग यक्ष बिम्बर गधव

पाव न उससा धन्य हुआ ।  
 मेने उममें भ्रमण किया ।  
 शासन भीम जहाँ पर है ।  
 एसा हुआ न है होना ।  
 बसे धनी मानो ज्ञानी ।  
 इन्दु उदित ज्यों भम्बर में ।  
 सब गुणा से युता हुई ।  
 है उमसी सुन्दरी नहा ।  
 शानित आय-बरा होगी ।  
 ठाठ बाट दिखसाना है ।  
 धार्य्य मुदित है कण-कण में ।  
 मानों है सब जगे हुए ।  
 निगधराज नल मौम्य बही ।  
 मधमुच पुरुषा में वर है ।  
 भ्रमर न उस नर से भगते ।  
 हे न धन्य जो बर-भासा ।  
 मन में महा मोद भरने ।  
 उनके उज्ज्वल कायों को ।  
 बहुता यों मरा मन है ।  
 नहीं गए तो पछताओ ।  
 मन में सभी भाँति गुनने ।  
 मैमा-दर्शन धमिसापी—  
 घग-मुमम सग घाने का ।  
 बसा वही न मुर-गण मब ।

हो मानव वेशी से वे  
छद्मदूतिर्मा निज निज-हीं—  
निज प्रेयक गुण गावें जा  
जिससे स्वयंकरा बाधा  
सुरपुर की सोभा सारी  
हुमा वि-सुर-भुरनगर वहाँ  
अपने अपने बाहुन में  
वे सज्जित हैं कौन ! जड़े  
मे बात बिन्दु गात वाले  
धीर कौन ! सुरनाथ वही  
अग्निदेव का तेज अरे !  
'बदल' पाश को सिये हुए,  
बैठ कैसे निवृत्त हैं,  
यम ने निज-बाहुन छोड़ा  
धीर धाज रथ में बैठ,  
जाते ही ज्यों-धाज इन्हें,  
दस समय धनुक्कम सभी  
या रव-याप पमोवों-सा  
सुर-सरि जल के साथ चले,  
अपने हाथों कट हुए—  
बाज स्वाहृष्टि पहाड़ों पर,  
वे नाकेश चले जाते  
मैं हूँ सुन्दर सजा हुआ,  
मुझे छोड़कर इन्हें कहीं,  
चारों के वे भाव यही  
क्रम से चारों उतर पड़े,  
गद् गद् हा गुण-गात्र किया

धार्म्य वत्त-वेशी से वे ।  
मेजी सब ने पूर्व वहाँ ।  
जाकर उसे रिझवें जो ।  
दे न धन्य को बरमासा ।  
धार्म्य-भूमि ने भी धारी ।  
प्रोपितपतिका बास जहाँ—  
मानों बिद्युत हो बन-में ।  
होकर चारों मीन बड़ ।  
सज्जित-बप्प हाथ बासे ।  
बदल' 'अग्नि यमसाथ वही ।  
सुखते हैं दुग हरे ' हरे ' ।  
भैमी-में मम दिए हुए ।  
सोच रहे जल कुछ सन हैं ।  
महिपराज-से सुह मोड़ा ।  
सोच रहे सज्जित एंठे ।  
भैमी अपने लिए चुने ।  
सुरम्पुर से वे चले सभी ।  
तुरग-जोश या योर्षों सा ।  
तट पर चलते सगे मले ।  
पक्ष सभी के छँटे हुए—  
अमे विष्णु से भाड़ों पर ।  
वे तीनों भी वे आते ।  
मम यश बका बजा हुआ ।  
भैमी-करे पसन्द नहीं ।  
भाई तब तक धार्म्य-मही ।  
हाथ जोड़कर हुए सड़े ।  
धार्म्य भूमि को मान दिया ।

है हिम धवल मुकुट वासी  
 धोता है पद्म सिम्बु-उभर,  
 अतुल्य कमल से धातीं  
 भाँति भाँति के धन्य यहाँ  
 सुर-सरि से भी सुन्दर-ये  
 हरि ने किस्ती बार धरे !  
 तज कर स्वर्ग यहाँ आना  
 किन्तु तुम्हें भवाता है  
 मर-सकते हम अगर कहीं  
 मरना भीता यथा यहाँ—  
 कम-साध्य है यहाँ सभी  
 अपि मुनि जन उद्भूत यही  
 पतित पावनी मात तुही  
 बसी गुणी तुम्हपर जन्मे  
 जिन्हें जन्म तुम देती हो  
 धर्म पवित्र हुए सब वे  
 मद-सा बढ़ता जाता है,  
 तुम्हको देखा कर यही  
 आँखें आज कलार्थ हुई  
 हो प्रणाम स्वीकार तुम्हें  
 कहते कहते देव सभी  
 रज-कण सेकर हाथों-से  
 हो गद गद मन सभी भसे  
 जस-जस गगन पहाड़ों में  
 ये अचिराम यान जाते  
 अटवी धाई कहीं सबी  
 सम्य-निराते कृपण कहीं  
 प्रिय-हिम गंगे सिधे हुए

सुख-स्यामलित पट वाली ।  
 भास विराजे इन्दु धर ।  
 सुधा-प्रवर्णन कर जातीं ।  
 होवे है ये और कहीं ।  
 हैं नव नवी भीस सर मे ।  
 जननी ! तुम पर जन्म धरे ।  
 जन्म धन्यमा का पाना ।  
 दिव से उज्ज्वल बहाना है ।  
 तो आ धरते जन्म यही ।  
 वरगत है, धन्यत्र कहीं ।  
 बचिर साध है यहाँ सभी ।  
 आदि ज्ञान के दूत यहीं ।  
 स्मरणीया नित प्रात तुही ।  
 तुम्ह पर धर्म धुनी जन्मे ।  
 जिनकी सुख तुम लती हो ।  
 गेय चरित्र हुए सब वे ।  
 यही चित्त में धाता है ।  
 सुखदायक प्रिय पुण्य मही ।  
 अपनयना भी मार्ग हुई ।  
 कर माँ ! अगीकार हमें ।  
 मुक्त भूमि-पर माध सभी ।  
 मगा-सिधे निज माधो स ।  
 बैठ रथों में सभी बले ।  
 बिटप-गुम्फ में अहों में ।  
 बाया कहीं न ये पाते ।  
 कहीं मिली गिरि-भूमि कहीं ।  
 जिनकी सब सम्पत्ति मही ।  
 ध्याम गीत में दिय हुए ।

सुन्दर सुमन-समान सिली  
सस्य रसिका अहाँ-सहाँ  
कहीं वेनु बरतीं चारा  
गोप दण्ड-धर धूम रहे  
भार फलों का सहन न कर,  
बिबिध सुपुष्प निरसते ये  
बेसी भूमि फसी फली  
सहसा चौके शक तभी

कूपक-तण्डुलियाँ उन्हें मिसीं ।  
बैठी गाती गीत वहाँ ।  
फिरता साध वत्स-प्यारा ।  
शासक-भव में भूम रहे ।  
भुके हुए ये शाली-वर ।  
बाते विवृष न बकते ये ।  
धमरावती उन्हें सुसी ।  
यह क्या-दीक्षा धरे ! धमी ।

'मद्रो ! यह सेना किसकी  
कितना सुन्दर शिविर पड़ा  
टिके सुमट कमनीय बड़े  
क्या - यह पड़ी देव सेना  
उधर धकेला वह भटवर  
हसे देखकर ध्यान यही  
स्कन्द-सहित ज्यों भोज मरी  
मधवा ने यह बात कही  
सहसा सब के मान रुके  
सगे देखने सभी उधर  
उसकी सुन्दरता-नेली  
हठी न दृष्टि चकोरी-सी,  
तभी विड्रीजा बोल-उठे  
है यह मस नियमेष धरे !  
है मेरा अनुमान यही  
वे तीनों सुनकर चौंके  
देव ! ठीक अनुमान यही  
आहा, कितना सुन्दर है,

हो न सके गणना जिसकी ।  
बसा हुआ ज्यों नगर बड़ा ।  
हय-नाज दुर्बमनीय जड़े ।  
उसे यहाँ पर क्या-केना ।  
बैठा है कितना सुन्दर ।  
होता है अनुमान यही ।  
सुर-सेना नम-से उतरी ।  
चौक पड़े सब सचमुच ही ।  
सुरेसोक्ति पर ध्यान भुके ।  
बैठा था-जह भुवक जिधर ।  
धमरों ने नरता नेली ।  
नम-मुसेन्दु-पर वीरी-सी ।  
वाणी-में रस भोस-उठे ।  
सर्वभद्र जनतेय धरे !  
विष्य-दृष्टि का ज्ञान यही ।  
कपि-सुमन ज्यों पा भोके ।  
है नसराम महाम यही ।  
सु-भवतरित सुभाधर है ।

घाँसों किजनी घड़ी घड़ी  
 मुकुट सुशोभित है सिर-पर,  
 तेज भरा यह मास ग्रहा !  
 गठित भुजा सम्भी किजनी !  
 बिम्बुत वक्ष उभरता-सा  
 किजना दिव्य क्षीर मिला  
 नर जब बर प्राकृति-पाते  
 भक्त न सुन्दर ही जानो  
 स्वयम्बरोत्सुक जाता है  
 सच यदि कुम्भिनपुर जाये  
 इसके होते कभी कही  
 क्षण-में कार्य सभी भिन्न  
 सत्य न होगा यदि सपना  
 दृग-प्रेरित कर मुस्काये  
 सभी-मन्त्रणा फिर होने  
 उभरी बिम्बा की रेखा  
 दृष्टि लोचनी-अर्ध मरी—  
 सुरपति से फिर बोले यों  
 हो सूरपुर के नाथ तुम्ही  
 धाम बसो कोई इसम  
 इनका वृत्त हमें-सारा—  
 है अनुरक्त परस्पर ये  
 जीवन-मुखी बनाने को  
 दोनों ने प्रण किये कठ  
 देखेंगे हम स्वयं यही  
 यही विचार नृपति-का है  
 यदि न वहाँ-पर ये जायें  
 प्रभु इन दोनों को-परन्ता

क-घों पर हैं भटें पड़ीं ।  
 क्षति क्षोभित-यों मटवर-परा  
 जगता दिनकर-बास ग्रहा !  
 कब बों पुरुषों-की इतनी !  
 वृग प्राकृति-करता-सा ।  
 स्वयं भवनि-पर कल्प बिसा ।  
 गुण स्वयमेव बसे भाते ।  
 इसे गुणाकर भी मानों ।  
 यही समझ में आता है ।  
 यह ध्रुव भूमी-को पाये ।  
 अन्य-वरण वह करे नहीं ।  
 क्यों-फिर इतन धन-सिमें ।  
 जाना व्यर्थ वहाँ अपना ।  
 यान छोड़ नीच जाये ।  
 बीज-कुटिल-से कुछ बाने ।  
 मन्त्रने मुरपति को देखा ।  
 चिन्तो-धि न सहज धरी ।  
 देव ! मड़े धन मोले क्या ।  
 दिग्पालों के हाथ तुम्ही ।  
 वहाँ न यह जाय जिससे ।  
 सु-विदित गुप्त-धरो-द्वारा ।  
 भूमी के निश्चित वर य ।  
 दम्पति ही वन जाने को ।  
 प्रणय-धमि-न सभी पड़ ।  
 भूमी की स्पर्शित वही ।  
 अपना भूमी-पति का है ।  
 बने ! दम्पति धन पायें ।  
 सीटामा इनका घर-को ।

पातिव्रत मैत्री का वह  
 आज परीक्षा में आसो  
 कहा शत्रु ने हँसकर यों  
 प्रशंसा, तो है यही भरे !  
 मैत्री के है योग्य यही  
 इनकी जोड़ी मिले-भली  
 इनके समुपस्थित रहते  
 यदि मैत्री ने करे न ये  
 सब मैत्री की गुणवत्ता,  
 स्वयं धूलि में मिल जाये,  
 मिटे नगों से कहाँ-कहीं  
 मेरा भपता अनुभव है  
 किन्तु तुम्हारा यह भाव  
 मुझको अगीकार रहा  
 मुझसे टभा सुराग्रह कब  
 यह नृप, पुरुषों में भण्ड है,  
 वचन से यह न भुकरेगा  
 इसकी प्रियतर वस्तु अभी  
 कर कुछ हील हवाले यह  
 फिर देवासन-प्राप्त इसे—  
 और क्षीण हों पुष्प सभी  
 एक पत्र दो काज बने,  
 सही परीक्षा भी होगी  
 सावित्री का माग बढ़ा  
 अब वह दारिद्र्य-सा होगा  
 नव जागृति हम साथेंगे,  
 दिया वचन पूरा करना  
 यही हमारा ध्येय भूहा !

सम्बन्धत इनका भी मह—  
 अब कुछ मत देखो-मासो ।  
 क्या-सोगे तुम फँसकर यों !  
 सब जन निज निज कार्य करें।  
 इसका समुचित भोग्य वही ।  
 मिल जाये धन-से बिजली ।  
 और स्वयं कहते कहते—  
 दिव्य-तरी-से सरे न ये ।  
 पातिव्रत की सब सत्ता ।  
 वह न गुणवत्ता कहलाये ।  
 कब जीते हम, नहीं ! नहीं !  
 पर-से देव-पराभव है ।  
 साथेगा यद्यपि विग्रह ।  
 कौतुक अब कुछ करें महा ।  
 जो मैं इसको टाँसूँ अब ।  
 सच्चा यशोधनी ही है ।  
 कहने पर सब कुछ देगा ।  
 माँगें हम पहुँच सभी ।  
 यदि दे वचन, न पाले यह ।  
 होगा कभी न प्राप्त इसे ।  
 मिल न धुम-धम मैत्री भी ।  
 ऐसा कुछ सप्त-जात कुन ।  
 जग-हित, नव-चिन्ता होगी ।  
 ज्यो धूमरित सुरतन पड़ा ।  
 पुन प्रमाणित-मा होगा ।  
 बुनियाँ को दिखसायेंगे ।  
 खेप्ट, अग्न्या है मरमा ।  
 जग-में धर्म स्थापना हो ।



मैमी इनको बरण करे,  
 वहाँ अन्य सबका जाना,  
 किन्तु, वहाँ बसना होगा  
 तब कुछ गई-कान्ति-होगी,  
 यों-कह मन्वा चले तभी  
 बठे वे निपघेषा जहाँ

प्राणों-का या हरण करे ।  
 मेने तो मिष्कस माना ।  
 धीर इसे । छसना होगा ।  
 अपगत सकस भ्रान्ति-होगी ।  
 यम वरुणानल साथ सभी ।  
 पहुँचे सब दिग्पास वहाँ ।

सुनकर सुर-यव-की आहट,  
 प्कार तनोदधि ने पाया  
 बेशाकृति सं ही जाना  
 अठ पदों-में क्रम-क्रम से  
 देवों ने आक्षीप दिया

स्वागत-हेतु, उठे नम भट ।  
 मन-में भाटा-सा छाया ।  
 मम-में महा उन्हें माना ।  
 मुँके मरेण अचक धम से ।  
 नृप का हृषित हुषा हिया ।

'हम-मुरपुर के वासी हैं  
 कहिए, कुलल दाम तो-हैं  
 भूपति हो तुम अन्य अरे ।  
 सुमट सभी तुमसे बकते  
 तुम नित नूतन मक करते  
 मम-में भाग निकसता है,  
 देवों के अवसम्ब तुम्हीं  
 सु-यश दिशाधों में व्यापा  
 आज स्वयं हमने आकर  
 पुष्प तुम्हारे उषित हुए,  
 निपघराज बीस-सहस्रा  
 ओठों - पर कुछ महार बसी  
 मिनिमेय दृग देर प्रभो  
 दर्शन देकर नाथ । मुझे,

अनबोध अभिज्ञापी हैं ।  
 बसता नित्य-नेम तो है ।  
 सचमुच वीर अमन्य अरे !  
 देव तुम्हारा मुँह तकटे ।  
 अनावृष्टि सू-से हरते ।  
 वह हम सबको मिसता है ।  
 धर्म अज्जा के स्तम्भ तुम्हीं ।  
 सुर-पुर तब जिसने माया ।  
 दशन दिये तुम्हें पावर ।  
 हम भी तो अति भुदित-हुए ।  
 मन उनका अति ही रहँसा ।  
 मानों लिमने पसी बसी ।  
 जान गया सब दास बिमो ।  
 किया महान् इतार्थ मुझे ।

पुण्य कहाँ मेरा इतना  
 तप वस आज स-मूर्त नभी  
 किन्तु, एक जिज्ञासा है  
 कौन ! कौन ! हैं आप हरे !  
 भाने का क्यों कष्ट किया  
 दास अनुज्ञा यदि पाता  
 बोले सुरपति मुस्काकर  
 ओ नमराज ! पुनीत ससे !  
 फिर भी तुमको जान गये  
 कठिन न यह हम कुछ मानें  
 देवराज मैं इन्द्र लड़ा  
 और इधर ये पावन से  
 स्वयं उपस्थित करण महा  
 आप ! जटिस तेजोवर-से  
 पूत सु-धामि उपस्थित है  
 और इधर ये वण्ड सिये  
 धर्म-रूप दुर्वम यम हैं,  
 तुम्हें देखकर आज भरे !  
 मद्र ! तुम्हें यों सम्मुख पा  
 तुमसे है यह धन्य बरा  
 इतर भवानक आ-निकले—  
 निपवनाय ! प्रबसोक तुम्हें,  
 मन-में पर-हित को धरके  
 तुष्ट करो तुम आज हमें

यह है प्राप्त देव करणा ।  
 मेरी इच्छा पूर्ति समी ।  
 महती सी अभिसापा है ।  
 सेवक परिषय प्राप्त करे ।  
 व्यर्थ निज समय नष्ट किया ।  
 स्वयं उपस्थित हो जाता ।  
 दन्त कान्ति सी फैलाकर ।  
 हमने तुम न कहीं देखे ।  
 तुम नम हो हम मान गये ।  
 सुर पर-मन तक की जाने ।  
 जो शतमक्ष विख्यात बड़ा ।  
 पाश-लिये मन भावन से ।  
 देखे दर्शन तुम्हें प्रहा ।  
 दीक्ष रहे जो सुन्दर से ।  
 करते जो निव जग-हित हैं ।  
 मुक्त-पर तेज प्रवण्ड सिये ।  
 चारों लोकपाल हम हैं ।  
 हैं हम सब प्रति-हर्ष - भरे ।  
 इच्छा हो तो विस्मय क्या ।  
 तुमसे है भव हरा भरा  
 हम अब तुमसे मित्र-मिले ।  
 कुछ इच्छा हो गई हमें ।  
 वस्त ! कार्य पूरा करके ।  
 फिर मुह-माँगा मिले तुम्हें ।

“यह है-जया-मैं धन्य नहीं,  
 मुझसे तुम सेवा भते  
 आज न मुझसा धन्य कहीं ।  
 देव स्वयं आज्ञा देते ।

वास प्राण को लेकर भी  
 क्षीय वेब ! कुछ क्षीय कहो !  
 मीन हुए भूपति भोले  
 सुर किलर गन्धर्व तथा  
 जो हम कहते हैं तुम से,  
 वे ऐसे गुणधाम कहाँ !  
 केवल तुम कर सकते हो  
 है वह काय बड़ा वुस्तर  
 सोच समझकर 'हाँ' करना  
 नृप ! तुम उत्तम वक्ता हो  
 जम वहाँ जो पाते हैं  
 प्राण मले ही जो जानें  
 सोच समझ से घोर प्रभी

पूरी धाजा करे सभी ।  
 धाजा-यो मत मीन रहो ।  
 उत्तर में सुरपति बोले—  
 सेवा उद्यत बौन । न था ।  
 कहा न हमने क्यों उनसे ।  
 कर पाते यह काम कहाँ ।  
 विघ्न-सिन्धु तर-सकते हो ।  
 पर तुमको करना सत्वर ।  
 पड़े न सज्जा से मरना ।  
 स्वयं चन्द्र के अग्रज हो ।  
 अपना बचन निभाते हैं ।  
 बचन पूर्ण पर हो जानें ।  
 करना धक्कीकार सभी ।'

पाकर सम्मुख पात्र सही  
 प्रभी हो यदि पास लडा  
 केवल क्रिया सवुत्तर है  
 जिस कृत्त में यह वास हुआ  
 घोर यहाँ तो स्वयं सुरेस—  
 तब क्या मैं सोचू मन में  
 देव ! आपका कार्य कहे !  
 कर्म न बस कर्मकृत में  
 बड़ी व्यग्रता धैर्य गया  
 सादी प्रभुवर आप सभी  
 पूरा कार्य यदि मैं न करूँ  
 मेरा सभी पुण्य क्षय हो  
 सद्गति पाऊँ एक नहीं

सोच समझ का प्रश्न नहीं ।  
 कितना भी हो प्रश्न कहा ।  
 वहाँ विकल्प न हितकर है ।  
 कब!जन वहाँ निराश हुआ ।  
 हैं सम्मुख पुण्य-प्रद-वेष्ट ।  
 अच्छा कुरा थ पठ धन-में ।  
 व्यर्थ ! नहीं तो देह धरूँ ।  
 हूँगा कहीं न शक्ति मैं ।  
 क्या वह वैबिच कार्य नया ।  
 करता है प्राण वास प्रभी ।  
 तब न बिबुलित देह धरूँ ।  
 मुझे न प्राप्त कहीं जय हो ।  
 रहे न माय विबव कहीं ।

साधु-साधु की ध्वनि से सब  
 बन्धी बोसे हर्ष भरे,  
 मरु बल में यह कुमुद क्षिता  
 अन्य रूप हैं रूप यहाँ  
 यों उत्साह जहाँ पर हो  
 प्रवृत्ता ! अब तुम काम सुनो  
 तुमको देव ताप हरना  
 चिन्ता करो न कुछ उर-में  
 निकट पहुँच गुणवन्ती के—  
 काम कृपामता - से सेना,  
 उसका निकट स्वयंवर है  
 अतः स्वयंवर में बाला  
 हम चारों पर ध्यान धरे !  
 हम उस पर आसक्त हुए  
 यदि वह हो तैयार नहीं  
 चतुर्नीति - से समझना  
 उसमें देव प्रेम भर दो—  
 यह सब कर सुरकार्य बहाँ,  
 यहीं तुम्हें हम पावेंगे  
 जाने से पहले गुन - लो,  
 हानि लाभ बतलाने पर  
 यदि वह मरी नहीं माने  
 तो कहना यह बात सही  
 हम हैं देव शक्तिधारी !  
 हमें न बरना उस बेमा,  
 सहन न हम यह करें कभी  
 कोप हमारा सुबिदिष्ट है,  
 सुर, नर, असुर, सद्युक्ति-से—

कम्पित-सा था वह स्थल-सबा  
 धन्य स्वयं हैं देव भरे ।  
 जो तुम जैसे मित्र मिता ।  
 केवल तुम हो उदधि महा ।  
 फिर क्या-कठिन वहाँ-परहो ।  
 मली भाँति फिर उसे गुनो ।  
 इनका दीत्य कार्य करना ।  
 जाओ अब कुण्डिनपुर में ।  
 भीम - सुता दमयन्ती-के ।  
 यों सन्देश उस देना ।  
 पुनना उसको निज-वर है ।  
 दे न अन्य - को वर-मासा ।  
 किसी एक को वरण करे ।  
 देव उसी के मख हुए ।  
 माम न जाना हार कहीं ।  
 अतुल सुरों-का यश गाना ।  
 पूर्ण मुख हम में कर-दो ।  
 आना सत्वर लौट यहाँ ।  
 सब तक कहीं न आवेंगे ।  
 कह देना वह भी सुन-सो ।  
 सु-यश सुरों-का गाने-भर ।  
 बासोचित कुछ हठ ठाने ।  
 समझे कोरी विनय नहीं ।  
 वह है अवला सु-कुमारी !  
 देवों की हो भवहेला ।  
 वही क्रोध में करें सभी ।  
 कौन न उससे परिचित है ।  
 हमसे सध आतक्ति - से ।

दास प्राण को बेकर जी  
 दीध देख। कुछ दीध कहो।  
 मीन हुए भूपति भोमे  
 सुर किन्नर गंधर्व तथा  
 जो हम कहते हैं तुम से,  
 वे ऐसे गुणधाम कहाँ।  
 केवल तुम कर सकते हो  
 है वह काय बड़ा दुस्तर  
 सोच समझकर 'हाँ' करना  
 नृप। तुम उत्तम ब्रह्म हो  
 जन्म वहाँ जो पाते हैं  
 प्राण भसे ही मो जावें  
 तोच समझ मो और अभी

पूरी आज्ञा करे सभी।  
 आज्ञा-दो मत मीन रहो।  
 उत्तर में सुरपति बोले—  
 सेवा उद्यत कौन। मया।  
 कहा न हमने क्यों उनसे।  
 कर पाठ यह नाम कहाँ।  
 बिष्णु-सिन्धु तर-मकते हो।  
 पर तुमको करना सत्त्वर।  
 पड़े न सन्धा से मरना।  
 स्वयं ब्रह्म के प्रसाद हो।  
 अपना वचन निमाते हैं।  
 वचन पूर्ण पर हो जावें।  
 करना भङ्गीकार तभी।

पाकर सम्मुख पात्र सही  
 प्रणी हो यदि पात्र बड़ा  
 केवल किया सवुत्तर है  
 जिस ब्रह्म में यह दास हुआ  
 और यहाँ तो स्वयं मुरेस—  
 तब क्या मैं भाषू मन में  
 देख। आपका कार्य कर्त्त  
 कर्त्त न वश कल्पित मैं  
 बड़ी व्यग्रता भेय गया  
 साक्षी प्रमुख आप सभी  
 पूर्ण कार्य यदि मैं न कर्त्त  
 मेरा सभी पुण्य दाय हो  
 सद्गति पाऊँ एव नहीं

सोच समझ का प्रदम नहीं।  
 कितना भी हो प्रदम बड़ा।  
 वहाँ बिकल्प न हितकर है।  
 कलज्जम वहाँ निराश हुआ।  
 है सम्मुख पुण्य प्रव-वेश।  
 प्रवृत्ता बुरा धेष्ठ बन-में।  
 व्यर्थ। नहीं तो देह धर्त्त  
 हुँगा कहीं न दानित मैं।  
 क्या वह देविन काय मया।  
 करता है प्रण दान अभी।  
 तब न बिकुरिसत देह धर्त्त  
 मुझे न प्राप्त कहीं जय हो।  
 रहे न साथ विवेक कहीं।

साधु-साधु की ध्वनि से तब  
 बज्जी बोले हृर्ष भरे  
 मरु षष्ठ में यह कुमुद सिखा  
 धन्य रूप हैं रूप यहाँ  
 यों उरसाह जहाँ पर हो  
 धन्य ! अब तुम काम सुनो  
 तुमको देव ताप हरमा  
 चिन्ता करो न कुछ उर-में  
 निकट पहुँच गुणवन्ती के—  
 काम कुसलता से सेना  
 उसका निकट स्वयंवर है,  
 अतः स्वयंवर में जाता  
 हम चारों पर ध्यान धरे ।  
 हम उस पर आसक्त हुए,  
 यदि वह हो लैयार नहीं  
 चतुर्नीति से समझना  
 उसमें देव प्रेम भर दो—  
 यह सब कर सुरकार्य वहाँ  
 यहीं तुम्हें हम पार्यगे,  
 जाने से पहले मुन - सो  
 हानि साम बतसाने पर,  
 यदि वह नरी नहीं माने,  
 तो कहना यह बात सही  
 हम हैं देव छच्छिभारी ।  
 हमें न वरना उस बेसा,  
 सहन न हम यह करें कभी,  
 क्रोध हमारा सुविधित है,  
 सुर, मरु, असुर, सशक्ति-से—

कम्पित-सा था वह स्वस-सबा  
 धन्य, स्वयं हैं देव धरे ।  
 जो तुम जैसा मित्र मिता ।  
 केवल तुम हो उन्धि महा ।  
 फिर क्या-कठिन वहाँ-परहो ।  
 मसी माँति फिर उसे गुनो ।  
 इनका दोष्य कार्य करना ।  
 जाओ अब कुण्डिनपुर में ।  
 भीम सुता दमयन्ती-के ।  
 यों सन्देश उसे देना ।  
 चुनना उसको निज-वर है ।  
 दे न धन्य को वर-भासा ।  
 किसी एक को वरण करे ।  
 देव उसी के भक्त - हुए ।  
 मान न जाना हार वहीं ।  
 अतुल सुरों-का यश गाना ।  
 पूर्ण मुख हम में कर-दो ।  
 आना सत्वर सौट यहाँ ।  
 तब तक कहीं न आयेगे ।  
 कह देना वह भी सुन-सो ।  
 सु-यश सुरों-का गाने-पर ।  
 वासोचित कुछ तूठ ठाने ।  
 समझे कोरी विनय नहीं ।  
 वह है अवला सु-कुमारी !  
 देवों की हा भकहना ।  
 वहीं क्रोध - में भरे सुनी ।  
 कौन ! न उसमें परिचित है ।  
 हमसे सब आनंजित - सु ।

‘अरे सूप ! क्या-कहते हो  
 कुछ क्षण पहले वचन कहे  
 देते थे तुम प्राण हमें  
 पर न प्राण माँगे हमने  
 काम बताया यह बोझ  
 सदा एक पक्ष चसते हम  
 कब, देवों के वचन सहे—

अपयश नव में बहते-हो ।  
 क्यों अब उनको सुल रहे ।  
 रहा न क्या-यह ध्यान तुम्हें ।  
 उसटे छली कहा तुमने ।  
 उससे भी यों मुँह मोड़ा ।  
 कहकर नहीं बचसते हम ।  
 जो आशा-हो चुकी रहे—

‘प्रसु ! यह बोझ काम नहीं  
 भीम तन्दिमी सुन्दर बहु,  
 यदि न भीमजा मुझे किसी  
 देव । धर्म सकट-से अब

सँधी-सम धन धाम नहीं ।  
 मुझे प्राण से बढ़कर है ।  
 जीवन-की बुझ-जाय-कली ।  
 पार-उतारो मुझको सब ।’

‘अच्छा ! अब सुर जाते हैं,  
 हाथ सु-यश से तुम बोझो ।  
 तुम थे यशोवती समझे,  
 अब हमने सब कुछ जाना  
 देव हुए गमनोद्यत से  
 जाओ मत, ठहरो ठहरो ।  
 बही धमी जाऊँगा मैं,  
 किन्तु, देव यह नीति बुरी,  
 मुर-पति-दौत्य करूँगा मैं  
 तुमने ऋषि-मुनि-जन सारे  
 ऋषि ऋषीभि के प्राण सिये,  
 क्या देवत्व महान यही  
 देव ! अमृत का पान किया,

बचन न पूरा पाते हैं ।  
 देव-समय पर मत लोभो ।  
 पुरुष-वर्ग में माँगे समझे ।  
 अपना कुछ तुमसे पाता ।  
 बोले-तब तब उन सब-से ।  
 बन्ध बने बहरो, बहरो ।  
 उनको समझाऊँगा मैं ।  
 करती है अनरीति बुरी ।  
 अपने हाथ भरूँगा मैं ।  
 धोखा दिया लूपा - डारे ।  
 पक्ष-हीन सब अचल किये ।  
 क्यों न सिसकनी स्वर्ग-मही ।  
 गीर धमरता-दान सिया ।

जब, वह भी सब धोखे से  
सब न कुटिलता धामे कर्मों  
कारण-जनित प्रभाव भले  
अमर-कुटिलता कभी कभी !  
किन्तु, पक्षिक तब जग रोमा,  
निज घस कभी न टासूंगा  
भैमी हीन अवश्य मर्हें  
मह सुरस्व कौटिल्य मरा  
नष्ट घट्ट होगी सुरता  
हे देवो ! दुष्पथ छोड़ो  
अब न किसी को ठगो कहीं  
मैं, मानवता के वश अब  
पर, यह अजय अमरता की,  
मों-कह नियमराज द्रुत से

कुटिल नीति के मोंके-से ।  
छुप न या करवाये कर्मों ।  
कृत्या पर अनिवार्य पड़ें ।  
जा-सकती क्या-नहीं ! नहीं ।  
जब सबस्व सुटा सोया ।  
दिमे वचन वे पालूंगा ।  
फिर क्यों कलुषित सुयस करूँ ।  
सहन न अब कर सके धरा ।  
देव-भक्ति हा हुन ! घटा ।  
बुद्धियों से मूँह मोड़ो ।  
सावधान हो जगो यही ।  
सुटा स्वयं बेकर सर्वस्व ।  
और विजय ध्रुव ! नरना की ।  
जाने को वे प्रस्तुत-मे ।

'नहीं शिष्टता को छोड़ा  
निज प्रण-पर मो मुस्विर हैं,  
और स्पष्टमापी कितना !  
मूनकर देव सुसज्जित थे  
सुनो वचन निपभेष भरे !  
वचन पासना कम बढ़ा,  
अपना वचन निभाकर यों—  
अपना स्वयं वीर्य करना,  
घट न हम जा-सके वहाँ  
क्यों-कि इन्दु-पक्षी तुम हो  
सुमय तुम्हारा बढ़ा-बढ़ा  
तब निज वचन पूर्ण करना,

और न भय से मूँह मोड़ा ।  
मरने को भी तत्पर हैं ।  
हमने कब, देखा इतना !  
बोले-शाक सु-सज्जित स ।  
क्यों, हो यों धावेस-भरे ।  
जग-में है यह धर्म बढ़ा ।  
धन्य रहो यद्य पाकर यों ।  
अवल सुयस को है हरना ।  
धाकर तुमसे कहा यहाँ ।  
उज्ज्वल-चन्द्र-जानी तुम हो ।  
है सबज मृ-नाम कड़ा ।  
ध्यान मुरों-का यों-धरना ।



निज-कुस-नाम धड़ाना है  
जग में ऐसे भी जन हैं  
तनिक स्वार्थ-हित हरे। हरे।  
व्यर्थ कर्म-कित होते हैं  
तो भोएँ, अधिकार उन्हें  
पर वे यह न सूझ जायें  
यह तन सदा न धरना है  
अमर सुयश नश्वर तन है,  
समय हाथ से जब निकले  
मश्वर भोगों को बेसो  
उस बधीषि से शिखा सो  
दान न तन यदि करते वे  
किन्तु, जानता कौन उन्हें  
जीवित है यह, कहाँ मरा।  
फलते देव अमीष्ट सदा  
शक्ति अलौकिक है हम में  
वहीं बैठ हम सुरपुर में  
भैमी को मँगवा भेते  
पता किसी को चलता क्या  
है यह वही मुरख महा  
हमें रुष्ट कर पड़नाओ  
मानों यदि तुम नहीं गये  
मिथ्यावादी होगे तब  
हम भी मया विघ्न करके  
रोक स्वयंवर को सक्ते  
इधर रुष्ट हा बेव-भभी  
यों नृप उभय अष्ट होंगे  
इमीतिग हम कहते हैं,

अतुलित यश फैलाना है।  
जो न निमाते निज-अण हैं।  
उनमें ये दुर्भाव-भरे।  
पुण्य, पाप से धोते हैं।  
हुमा वेह से प्यार उन्हें।  
सदा न जग-में रह-पायें।  
एक विषय द्रुव। मरना है।  
आता लौट न गत क्षण है।  
तब क्या होता हाव-मण।  
और अनश्वर यश लेखी।  
पर हित-में निज तन भी दो।  
तदपि एक दिन मरते वे।  
अन्य मानता कौन उन्हें।  
गाती जिसका सुयश धरा।  
किसका किया अनिष्ट कदा।  
हैं प्रकाश हम ही तम में।  
बूठ भेज कुण्डिनपुर में।  
कष्ट न तुमको भी वेते।  
पर यह हमें न लसता क्या।  
जो उस पक्ष से रोक रहा।  
तुष्ट न तुम भी रह पाओ।  
तो अपयश सिर चढ़ें नये।  
कुस की धाम मिटेगी सब  
या दमयन्ती को हरेके।  
हम से सभी सोक धकते।  
पत्नी मिस न भैमी-भी।  
मुग्ध बिनष्ट नष्ट-होंगे।  
निग्य बचन भी सहठ है।

जो होता, सो होता है सुधी समय कब सोता है ।  
 भक्त भद्र ! जाओ, जाओ सन्देशा दे ही जाओ ।  
 अपना वचन निभाकर यों, जग में यथा फैलाकर यों ।  
 देव-नौद, निज कंगे कथा कहते हम 'स्वस्त्यस्तु' तथा ।  
 हुए विवश नृप सुनकर यों, कीलित-सर्प कहीं हो ज्यों ।  
 पर, सहसा कुछ सोच समी छाड़ हृदय-सकोच समी ।  
 नृप ने कहा—ठीक सब है प्रस्तुत भी सेवक भव है ।  
 किन्तु, वहाँ अपना जाना मैंने, महा कठिन माना ।  
 द्वारों-पर सब ठौर खड होंगे दाग-बीजा बडे ।  
 दमयन्ती के निकट कहीं, जाने दें वे मुझे नहीं ।  
 पहुँच न अब मैं पाऊँगा, क्या सन्देश सुनाऊँगा ।  
 भक्त उपाय सुझाओ तुम मुझे वहाँ पहुँचाओ तुम ।  
 सुनकर निर्जर समी हँसे बेसे मम-करि-यंक फँसे ।  
 हो स्मित-वदन शक्र बाले—ओ नलराज मित्र भोसे ।  
 धरे ! बात यह है कितनी देव शक्ति क्या-बस इतनी ।  
 मन्त्र प्रभावित-गति वाली यह मुद्रिका समझानी ।  
 इसे पहन मन पर मित्र ! हो जाओगे परम-बिचित्र ।  
 जहाँ इष्ट आ सको वहीं देस न कोई सके कहीं ।  
 इसीलिए तुम इसे पहन—सन्देशा यह करो बहन ।  
 केवल दौलत करावगी, फिर निष्कल हो जायेगी ।  
 कहकर यों प्रति मुहु स्वर में, दी मुद्रिका नृपति-कर-में ।  
 भव वे मौन नृपति भीसे तब यों-वचन अनस बोले—  
 मान मन्त्रगुण मेरी तुम करो न सम्प्रति बेरी तुम ।  
 दिव्य-गुणा क भाकर तुम हो 'शक्ति-वस-दिवाकर' तुम ।  
 धरे ! पूरा निज वचन कंगे, दिग्गमों-का ताप हरो ।  
 सुमन तुम्हारा विस्तृत-हा प्रायत पूर्ण-अभीप्सित हो ।  
 पुष्प तुम्हारे बहुत बड़ शक्र तथा सुर निकट लड़ ।  
 यह शुभ-भवसर तुम्हें मिला, जाओ मित्र ! पुनः नु-तिला—

'मरे यशोधन अग्रगणी ! तुम हो विधुत धर्म-धनी ।  
 पर-हित-रत सब कुछ भिमका, भव आभारी उस भ्रष्ट-का ।  
 उस सुधाधु के वषज-हो पर-हितकर के प्रशज-हो ।  
 अत ठीक ही करते हो, जो सन्देशा हुरते हो ।  
 जाओ मित्र शीघ्र जाओ, पुण्याकीर्ण मार्ग पाओ ।  
 गुप्त हो वरुण देव जब तक दुर्दम-यम खोल-तब तक ।  
 हाँ-हाँ जाओ मित्र अभी पूर्ण करो यह काम समो ।  
 दूर यही तो करते हैं कहकर नहीं मुकरते हैं ।  
 तुम जसों-से ही भूतम—सम में पाता है सम्बन्ध ।  
 प्रभु ने जो कुछ हमें दिया उससे पर-हित यदि न किया ।  
 तो इस भाँति अनर्थ मरे—जीवन है सब व्यर्थ धरे !  
 फिर, किसको देवेस कहीं ! देते यों आदेश नहीं ।  
 करना सुर उपकार मिले भव-सागर का पार भिम ।  
 दौत्य-काय यह करने-पर, सुर सन्देशा हुरते पर ।  
 जग में नाम कमाओगे मूँह-भाँगा बर पाओगे ।  
 फिर सब सुर 'हाँ-हाँ' बोले इधर विबध भूपति मोले—  
 हुए समुद्यत जाने वा वचन पूरा-कर आने को ।  
 घरी मुद्रिका निज-पट-में छिपी-सुधा मानों बट-में ।  
 मन-में ये उद्विग्न हुए, सुर-मद-मत हो भिन्न-हुए ।  
 बैठ शतक्रतु के रज-में वायु समान बले पथ-में ।  
 मन में भाव विविध आगे ईश्वर ! क्या-हागा आगे—  
 भैभी क्या-न मिले मुझको बिघ्न ! भिस्ता मैं ही तुझको !  
 आज्ञा मृत्यु ! तुही आज्ञा आ फिर शक्ति ! मुझे पाजा ।  
 धरी नियति ! मत मुझे सता निहत-हृदय ! भव तुही बता ।  
 भीम-सुता के पहुँच निकट मैं दूँगा जब वृत्त विवट ।  
 तब भी माय रहेगा तू, वह बुद्धि सहेगा तू ।  
 तुझे धैर्य धरना ही है वचन पूरा करना ही है ।  
 काम न रह जाय घघभर फिर तू फट जाना मत्सर ।

पृथ्वी माँ ही सुख लेगी मुझको विवश जगह देगी ।  
 हाँ, पर इसी महाने से कृष्णनपुर में जाने से ।  
 प्रिय दर्शन हो जायेंगे नेत्र सफलता पायेंगे ।  
 घरा-घाम का सार नमी क्षण-भर तो मिल जाय सभी ।  
 यद्यपि सुरों ने मुझे छप्ता फिर भी जीवन घम्य ! भत्ता ।  
 वचन पूरा कर हर्ष इधर और प्रिया-का दर्श तबेर ।  
 हे यम ! तुम आकर उस शरण-करना मेरा झालिझन ।  
 हृदय भाव रख चक्र भले लगा होइ सी तीव्र चले ।  
 मारी या राजा-का मन पर वह भी या सुर-स्यन्दन ।  
 तुरगों-में वह सु-गति अगी, खीत उसी के हाथ लगी ।  
 अब सम्मुख कृष्णनपुर या थक थक करता नृप उर था ।

नगर से बाहर जगह विशोक  
 सिया भातलि ने रख को रोक ।  
 उतर कर पैदल ही नरनाह—  
 चले नृप भीम सदन की राह ।

## पष्ठ सग

कहीं गाना होता स-दुख-जन भी है तड़पते  
 किसान को देते हैं कुछ, अपर-का वे हड़पते ।  
 हुमा-जाता यो-ही नियति-नटि का नाट्य-जग है,  
 वही हैं धन्यार्हा पर-हित-गने जो मजग है ।

विपरीत हृदय अमिताभा क	भँके में वठ निराशा के ।
मुद्रिका पहन अपने कर मे	धन धिरा इन्दु ज्यों अम्बर-में ।
उस भाँति अदृष्ट नरेण अहा	वन दबदूत निपयस वहाँ ।
भैमी दर्शन हों यो प्रमन	पर मिसे न वह इसमिण मिन ।
यों मुख दुल क मध्यस्थ बरु	मन-में बिचार ये दुरे मले ।
जल उगँ म कोई देख सका	प्रतिविम्ब भी न था लेस सका ।
मज-पज बिलोक कुण्डिनपुर-मे	बुद्ध रूप बडा दृपति-उर-में ।
सज्जा में पुर जन लगे हुए	निष्णय लोक दुल भगे हुए ।
पुर घोमा से दूग छक नहीं	ए धम स भी नृप बर नहीं ।
या पहुँचा भवन भीम-का धम	मज्जित द्वारेण खड ये सब ।
पदी सब जय न वहाँ जाना	फिर जन प्रवेण बँस पाता ।
ये घुम भूप अष्ट होकर	ठारणा की मति का गोकर ।
ज्यों विविध वंद्य कुछ बैठे हा	रुणोपधार में बैठे हा ।
पर फिर भी प्राण निनय जाता	उमकी न दृष्टि तक में घाला ।
द्वारों पर गर धन धामे	ये निर्भय हुए धन जात ।
अन्त-पुर में यों भूप पण	मन-म स्मृति क ज्यों स्तूप बन ।
ये वहाँ भीम विद्यामी जन	व घात जात ये दण दण ।
अपने कुर्यों म जया मगन—	मविरोध यहाँ था दागो गण ।

धी गूँघ रहो कोई माया  
 यह जाताबग्न विमोद - भरा  
 व इधर सिय कुछ घाली है  
 रमणी कुछ मन् में मूम रही  
 या हुआ धन्यावा परियों का  
 नल बड़ सतक जैसे जाते  
 कमरा पर कमरे घाते थे  
 घाया भमी का कल तमी  
 द्वाराहित या गायन सामा  
 नूप ने तब देखा कल वही  
 फिर करक धपना उर बसिष्ठ,

कुछ साक्षात् ने जातीं धामा ।  
 मगती थी स्वय-समान-भरा ।  
 कुछ उधर सिये ये जानी हैं ।  
 सुस्तनी उभर व मूम रही ।  
 वह धन्य-गुर, नूप-नरियों का ।  
 तिस-मात्र परम-म वध पाते ।  
 वरवस नूप वृष्टि सुमाने थे ।  
 कुछ धड़क-उठा नूप-बल तमी ।  
 भी द्वार-पामिका भी वाला ।  
 आ-चिपक-स नूप-प्रसि वही ।  
 हो गय कक्ष-में नूप प्रविष्ट ।

मानों मन महमा छमा गया  
 मुद-गमा किमी का सब महमा  
 निज गण्ड हृषेभी पर देकर  
 परम-हामन भमी विभवा—  
 भी-यदपि मसिन-सी वदन प्रभा  
 दुष प्रार्कषित करती फिर भी  
 बीगा नीरव सी पास पड़ी,  
 नूप यह सब देख लो - स थे,  
 दुम भर वह मधुर-कान्ति दम्भी  
 कष थे कर्षों पर पड़े हुए,  
 मानों, मणि-मुन्न की रक्षा-ग्यों  
 माये - पर बोनी न्यक रही  
 पीरूप बनक घट - में जैसे  
 धीमों पर धीमों पड़ी अहा  
 पी मुन्गना नूप ने न गिने

कोबित-होकर प्रिय बला-गया ।  
 पुषु त मिसा प्रव दुरसहसा ।  
 धाहों-के मिस साधें लेकर ।  
 दली ज्यों नम में इन्दुकन ।  
 कुछ-कुछ निकसी थी रत्न प्रभा ।  
 मुन्दरियों-में बर थी फिर भी ।  
 नगती वह स्वय तन्म वडा ।  
 वित्राहित - स न जाने स थे ।  
 विभ्रम ने धहा शान्ति दली ।  
 मुक्ता उनमें थे बड़ हुए ।  
 करती उरगों की कला हों ।  
 मुद्रिका पाणि में बधक रही ।  
 सीन्ध धरण पट में बस ।  
 कबराये थी थे बड़ी अहा ।  
 कट टिपहा यों-प्राश्नाद मिस ।

आर्यो सन्नियौ उस ठौर तमी  
 उनसे धावत भीमी थी यों  
 अब भी न उसे उससे घीड़ा  
 सोझित सा भीमी का रहना  
 सब सुनिदित था यह सन्नियों-को  
 वे भीमी को समझाती थीं  
 कुछ धीरज सब उसको धाता  
 अब सोच निमग्ना देख उसे  
 कर पकड़ केहिनी यो बोली—  
 समुचित है क्या-यह तुम्हें कही  
 मत यों अपने मन को मारो  
 क्या पूर्ण तपस्या है न धरी !  
 इसलिये ! उठो बैठो धावो  
 इस नीति पड़ी पछताओगी  
 रमयन्ती योनी—धरी सखी !  
 मैं समझ न कुछ भी पाती हूँ  
 कुछ भाग हृदय में मगती है  
 मगती न भूल मित्रा धानी  
 मे तट पर जाने के हिन ही  
 पर ज्यों-हो कुछ तट-पर आनी  
 मगता कुछ मग अभाव मुझे  
 है अनन्य हृदय में सगी हुई  
 हा इसी अनन्यता मे मुझको  
 अब हाय ! बनाया ऐसा है  
 जिससे मैं गेह समझती हूँ  
 मणिशेखर न यह कुछ और बना  
 यह दास्य न हूँ अनन्यता जो

बैठी उसके चहुँ धोर सखी ।  
 पत्रों-से पुष्प धिरा हो ज्यों ।  
 थी विदित उन्हें भीमी पीड़ा ।  
 सपनों में निपच-नाच कहना—  
 उन-हृदय-रक्षिनी घोंसिया-को ।  
 गुग्ग निपच नाच के गाती थीं ।  
 पर शीघ्र हवा-सा उड़ जाता ।  
 मुकुमिल-कमिका सी देख उसे ।  
 सखि ! हाय स्वस्थता सब सोली ।  
 सँभलो सँभलो यह ठीक नहीं ।  
 है डेर न कुछ धीरज धारो ।  
 समझो तट पर आ-गई तरी ।  
 घूमो बोला लाओ गाओ ।  
 मैं समझे छिया न पाओगी ।  
 क्या स्वयं वसा यह मैंने की ।  
 क्यों दिन दिन छुलती जाती-हूँ ।  
 जिससे लज ज्वाला जगती है ।  
 बड़ बड़ करती गहनी छानी ।  
 करती न यत्न क्या नित नित-ही ।  
 त्या-निज-को अघमर-में पाती ।  
 सुयकर न सुयज्ञ प्रस्ताव-मुझे ।  
 उपवन घर-बाहर आनी हुई ।  
 सखि ! धोर विवसता मे मुझको ।  
 मन धरी 'म जाने कैसा है ।  
 कर-कण्ठ धीपच धरती है ।  
 जिमने अबसा को हाय ! छिया ।  
 तो क्या-जाने घामी क्या हा ।”

“हम भूमी सरोवर जाती है  
 तुम सगा उन्हें उर स लेना  
 यों कहकर वे सब जाने को  
 ‘ये सब जायें तुम यहीं रहो  
 वमपन्ती ने यों बात कही  
 वह सगी विनोद विविध करने  
 बातों के बीच फँसाकर ही  
 दुखिनी को पाकर सड़ सड़  
 मन हुआ, विषय उन्मा उन्मा  
 ‘हा-हा इस कमल-कली के हित  
 पर, ऐसा मुझसे हो न सक  
 यह प्रेमानल में जलती है,  
 है कितनी मीठी सी मोली  
 मेरी अप्राप्ति, अनलता यह  
 यह धवसा हाकर भी इतनी,  
 है मे भी इतना तप्त कहीं  
 ओ कुटिल-वेग-से प्रेरित-मन !  
 सुर सन्देशा हरना - ही है  
 होना का मुक मला मेरा  
 सब कहना वह इससे होगा,  
 ‘हे भूमि ! बरो तुम देवों को  
 पर, इसका भी तो हित इससे  
 यह सुसकर सन्देशा इसको  
 यदि दिया न ता क्या-प्रेम रक्षा  
 सब स्वर्ग - लाभ होगा इसका  
 तब मुझको भी ध्रुवीसुख होगा,  
 सबमुख देवों के योग्य यही,  
 फिर, स्वयं चाहते देव जिमे !

बहु-खिले, कमल ले जाती हैं ।  
 यों-शान्त अनलता कर देना ।  
 प्रस्तुत यों नीरज सामे को ।  
 केशिनि ! बैठो कुछ बात कहो ।’  
 सब गई, केशिनी रही वहीं ।  
 भूमी का मनस्ताप हरने ।  
 छोड़ी भीमजा हँसाकर ही ।  
 मन स्वयं बितापित हुए बड़े ।  
 सन्देश उन्हें सारा भूमा ।  
 क्या बरू नूपार बरूँ दुहित ।  
 क्या-भीम न यह जड़ बने-भके ।  
 सहचरियों को यों-समती है ।  
 किस-भाँति पतुर, धम सेबोमी ।  
 प्रस्ताव हृदय-को छलता यह ।  
 दुःख है अपने पथ-पर कितनी ।  
 देखा सब जितना हमे यहाँ ।  
 तू क्यों बैठा-जाता इस जग ।  
 मित्र-बचन पूर्ण करना-ही है ।  
 वर किन्तु, न तनिक बला मेरा ।  
 देवों का हित-जिससे होना ।  
 स्वीकार करो उन देवों को ।”  
 यह नगी बने देवी जिससे ।  
 मैं स्वयं प्रेम करूँ जिसको ।  
 जिसमें प्रेमी - का लोभ बड़ा ।  
 वह मिलता यों-सदेह किसको ।  
 हौ-स्वयं सहे ओ दुःख होगा ।  
 पार्थिव नर-का यह मोम्य नहीं ।  
 सब देवा हाना उचित हमे ।



सचमुच नारद ने ठीक कहा  
पर उनका वह आशीस अभी  
बिघि-क आगे गया-वदा बमता  
मम वचन पूर्ण यह देवी हो  
दोनों प्रकार मेरा हित है,  
यों-साच भीमजा हास्य सग

यह है जग में सुन्दरी-महा ।  
होने-को चला असत्य समी ।  
हुमगिय 'हाय' सबको छलवा ।  
सुरपति-की सुग-यण-सेवी हो ।  
तब बृस-निवेदन समुचित है ।  
गुप हुए मुद्रिका-भूय यज्ञ ।

कोणस्थ पुरुष सहसा देखा  
जो माही क्षिमकी पड़ी हुई  
सहसा-भीरव एकत्रित कर—  
मुन्दरता मिस-कर क्षमा-उसे  
'तुम कौन ! यहाँ आये कैसे !  
क्या द्वारेष्टा मे तुम्हें कही  
किन्तु माहस-पर पद यहाँ-दिया  
कुल-नाम बता कर अभी अभी  
रक्षक अन्यथा अभी आये  
राजाज्ञा से मारे-जाओ  
'हे मुमुक्षु ! भय न मन-में मानों  
मैंने प्रवेश जो यहाँ किया  
अनिवार्य-कार्य-वश ही मैंने  
अन-दूगा सन्नेहा देकर—  
पर भीति किसी की मुझे नहीं  
बिबुधों-का जनवर दूत-यहाँ—  
बाई भी मुझे न देग-सक  
फिर पकड़ेगा, बोई बंस !  
मैं द्वार-द्वार पर होकर-ही—  
मैं सभी टौर-जा-सकता हूँ,

मुँह पर ढोड़ी मय-की रेखा ।  
सिर-पर वह उस-ही ढड़ी हुई ।  
निजमत-में अतुलित-साहस भर ।  
बोभी वमयन्ती रमा उसे ।  
तस्कर की-भांति लड़ ऐसे ।  
आने से रोका यहाँ नहीं ।  
कितना गुस्तर अपराध किया ।  
जाओ बस-है अव-शम-उभी ।  
वे तुम्हें पकड़कर ॥ जायें ।  
भागो सत्वर, नृप मय-स्ताओ ।"  
तस्कर-दुर्जन न मुझे जानो ।  
अपराध-कार्य यह महान-क्या ।  
हे सुम्नर ! घुटि यह की मैंने ।  
दवों-की तरंगी को ले कर ।  
हे दधि ! विषय में धाज नहीं ।  
आया जन धा-मकत न जहाँ ।  
प्रतिबिम्ब न मेरा लय-यक ।  
हम देव दूत देवों जस ।  
आया जन सक्त-बिसाक नहीं ।  
पर, दृष्टि-में न धा-सकता हूँ ।

देखो यदि हा विस्वास नहीं  
 पल-भर में ही फिर दीख-पड़े  
 बोले—इसलिए, न भय माना  
 चित्रित-सी जिनकी श्रैष्ठियाँ थी  
 है शक्ति अनन्त-देव-गण की  
 'अच्छा सो, सुनो सुनाता-हूँ  
 देवेन्द्र वरुण यम अग्नि तथा  
 मैं दूत उन्हीं-का देवी हैं  
 हैं देवि ! तुम्हारे प्रेमी वे  
 तुमसे विवाह करना चाहें  
 भव आया-निष्ठ स्वयम्बर-है  
 जिसको तुम चाहो अतः उसे  
 बर-सेना बर-माला देकर  
 मुझको सुरपति-ने मेजा-है  
 देने-में यह सम्वाद शुभे !  
 ऋषि-मुनि जमा-जम्माँ ही मैं—  
 तब कहीं स्वर्ग-में जा पाते  
 वह भवसर विना प्रयास तुम्हें  
 क्या भाव्य तुम्हारा अन्य नहीं  
 देवी-निष्ठाक बनोगी तुम  
 उन देवों-के गुण को गाना  
 विदुषी-हा है पहचान-तुम्हें,  
 दे-इन्द्र सुरों-के शासक-हैं  
 उन देवराज-को छोड़ कहीं  
 शासक अनेक हो गए बली,  
 सब दुष्ट मही-से खीन दिये  
 अस-विद्या उन्होंने जीती-हैं  
 यज्ञों-में भाग निकसता है

सहसा नृप हुए अदृश्य-वहीं ।  
 उस कोने में वे वहीं-सबे ।  
 मेरे हित शत्रु-भय-जानो ।  
 विस्मित-सी दोनों सम्मियाँ थी ।  
 धारणा स-भूत हुई मन-की ।  
 फिर शीघ्र यहाँ-से जाता-हूँ ।  
 जग-विभूतजिनकी कीर्ति-कथा ।  
 उन पूत-यवों-का सघो हूँ ।  
 तीनों-मोर्कों-के क्षेमी-वे ।  
 कर स्मरण तुम्हें भरते आहें ।  
 जिसमें तुमको चुनना वर है ।  
 पर उन चारों देवों-में से—  
 है तन्त्रि ! वृत्त यह ही लेकर ।  
 प्रमोचित पन्थ सहेजा-है ।  
 मुझको है हर्ष अगाध शुभे ।  
 रत रहते शुभ कर्मों-ही में ।  
 हों पुष्प-क्षीण तो, फिर आते ।  
 देने आया सुर-दास तुम्हें ।  
 है भाव न तुमसी अम्भ-कहीं ।  
 सुख देवमयक-बनोगी तुम ।  
 है गवि-का दीपक दिसलाना ।  
 हित अनहित-वा है ज्ञान तुम्हें ।  
 उनके सब सोक उपासक-हैं ।  
 कर-सजा अन्य शत-यज्ञ नहीं ।  
 पर, एक न शत्रु-समक्ष सभी ।  
 गिरि-तक भी पक्ष-विहीन-किये ।  
 सब पूरा शत्रु-मनोही-हैं ।  
 पहले उनको ही मित्रता-है ।

करतीं सुर-धेनु निवास यहाँ  
 क्षण-में इच्छा पूरी होती  
 तुम उनको बर-मात्सा देना  
 है दाऊ दसी सुन्दर मानी  
 अप्सरा किलारी घौर शशी  
 आवेश तुम्हारा-पास-वे  
 सुर-पति के कर-में कर होगा  
 देवाश्च-सवारी-के हित वह  
 प्राणों-से भी सविशेष तुम्हें—  
 इसलिये, न यह अवसर छोड़ो  
 है समय न धोखा जा-जाना  
 नम-स्तरि में स्नात किया करना  
 देवामृत पान किया-करना  
 नम-भूमि प्रचल या जल-जल में  
 करना सर्वत्र विहार अहा  
 छू-सके न कोई शोक तुम्हें  
 सब सुर इस मुक्त-को ताकते  
 यह अवसर मिला किसे 'कब कब'  
 है अम्य वरुण आशापारी  
 कल्याण जगत का होता है  
 यह सिन्धु महा वरुणालय है  
 मणि-मुक्ता हीरक लाभ जहाँ  
 तुम पकड़ वरुण का कर' कर-म  
 श्री ने भी हरि को ग्रहण किया  
 भी स्वयं बही स है निकलीं  
 सब देव वरुण के आभारी  
 जोदह रत्नों की प्राप्ति हुई  
 कितने हैं रत्न वहाँ अब भी

हे कम्प-वृक्ष-सा बास वहाँ ।  
 सुख, तनिक न आधि व्याधि सोतीं ।  
 सुख-स्वर्ग सदेह सुमुखि । सेना ।  
 तुम बनना उनही पटरानी ।  
 भानों तेरी सेवार्थ रची ।  
 हाँ-मही तनिक भी टामें-वै ।  
 अधिकार दिशाधों-पर होगा ।  
 हो हृदय हृप नित नित ही अह ।  
 रक्षों हे सु-मुखि । सुरेश तुम्हें ।  
 मत स्वर्ग-सुखा-सं भुँह-मोड़ो ।  
 फिर पड़ सब ही पछताना ।  
 मन्दम-में गान किया करना ।  
 मुह-माँगा दान किया करना ।  
 पहुँचो इच्छा-ही स पल-में ।  
 पाना सुरपति का प्यार महा ।  
 हों प्राप्त स्वत सव-सोक-तुम्हें ।  
 कितना न मूल्य-वे भाँकेगे ।  
 मिस-रहा सुमुखि । जो तुमको अब ।  
 स्थित है जिनपर जगती सारी ।  
 दुष्काम उन्हीं स काता है ।  
 ससृति-हित जो कल्याणलय है ।  
 जग पाता है धन भास वहाँ ।  
 करना बस केति उमी धर-में ।  
 वरुणालय-में ही रमण किया ।  
 भी सुभा-सुरों को वहीं मिनी ।  
 पूजे उनको जगती सारी ।  
 अब भी पर, नहीं समाप्ति हुई ।  
 होंगे वे जगत तुम्हें ममी ।

काटे गिरिपक्ष इन्द्र ने जब  
 अपने घर उन्हें छिपाया था,  
 पाक्षी से निज को समझ अवश  
 भव वरुण शरणगत गिरि होकर  
 पाक्षी के यशोगीत गाते  
 इसलिये शक्र बस को भी कम  
 उस पराक्रमी की होकर तुम  
 जलदस्थित भ्रमण रमण करना  
 है अग्नि परम तेजोधारी  
 उनसे सब देवों-को सुख है  
 सब देवों के भवसन्ध वही  
 हाँ सदा ऊर्ध्वमुख मला कहीं—  
 जग उनका वन्दन करता है  
 वे भक्तदेव सब कुछ साते  
 यदि दृष्ट किसी से ये होते  
 उनके ऋषि मुनि सब हैं स्नेही  
 कोई भी तो संस्कार कहीं,  
 समते हैं स्वयं वरुण डरते  
 बड़वानस रूप बनाते हैं,  
 कोई भी बधा न सकता है  
 हैं अतः वरुण से बढ़कर वे,  
 मिस्रुक वे प्राज्ञ तुम्हारे हैं,  
 आहो यदि तुम तो बरो उन्हें,  
 सुन्दरि ! उनसे प्रति हित होगा  
 ऐसा न मिस्रगा स्वर्ण-योग  
 इसलिये वरुण उनको करना  
 वे भीये निर्जर सुर्वम यम,  
 वे सब का न्याय बुकाते हैं,

धी शरण वरुण मे उनको तब ।  
 कुछ भय न शक्र-से लाया था ।  
 कुछ जसा था नमपवा का वश ।  
 बसते हैं वहीं भीति-सोकर ।  
 सुरपति से कुछ न भीति पाते  
 कर गया वरुण-का ही विक्रम ।  
 पी सुधा द्रुक्षो को सोकर तुम ।  
 जग वन्द्या वन जगभय हरना ।  
 जिनसे जगती कम्पित सारी ।  
 इन्द्रादिक का वह ही मुख है ।  
 इससकल विषय का स्तम्भ वही ।  
 जगमध्य भक्त को छोड़ नहीं ।  
 सुरगण अभिमन्वन करता है ।  
 इसलिये सर्वमुख कहलाते ।  
 अणु अणु उस का जग-से स्रोते ।  
 उनको नित नित पूजे गेही ।  
 हो पाता उनके विमा नहीं ।  
 जब भक्त स्वनेत्र अरुण करते ।  
 तब वरुणदेव कौं जाते हैं ।  
 बस भक्त भक्त से बकता है ।  
 बस रूप गुणों में बढ़ कर वे ।  
 निज सब कुछ तुम पर वारे हैं ।  
 भैमी ! निज प्रियतम करो उन्हें ।  
 जग में पूजन नित-नित होगा ।  
 गर को न सुखम है देव भोग ।  
 हाँ सम्मानित गुण को करना ।  
 है जो न किसी भी सूर से कम ।  
 यों धर्मराज कहलाते हैं ।

हैं सब से अधिक प्रथम वहो  
 उनसे कोई भी भीष कही  
 वे जिसको भी हरना चाहें  
 उसको न बचा कोई सकता  
 उनका है ऊँचा स्थान सदा  
 उनको सहयोगी बना बना  
 वे नित नित परिवर्तन करते  
 सब धर्मी पुणी मानी ध्यानी  
 उनके समीप सब जाते हैं  
 वे रचते हैं सब का सेना  
 कोकिलकण्ठी ! यदि उन्हें बरो,  
 जिसको चाहो वह मरे-महीं  
 है एक एव से धर्मी पुणी  
 प्रब सोच-समझ कर बतलाओ  
 बतलाओ देवि ! बरो जिसको  
 क्या नाम विबुध का है उसका  
 भुमको यह उत्तर पना है  
 मेरा तो है सुविचार मही  
 तुम सुरपति को दो वर देना  
 या जिसकी इच्छा उस बरो  
 'बुध बहन की अभिसापा थी  
 बहन का समय न पाती थी  
 पर, बरा कन मे धनुमान  
 बोनी भैमी स्मित-भी हो यों  
 हे दूत ! चतुर तुम जान पडे  
 फिर भी विस्मय ! तुम क्यों ऐसे—  
 मैंने तुमसे क्या प्रदत्त किया,  
 मैंने पूछा कुम नाम तथा

देते दण्ड्यों को दण्ड मही ।  
 हे कमलदुर्गा ! बच सके महीं ।  
 जिसको गतासु करना चाहें ।  
 उनसे सब बेब बर्ग सकता ।  
 वे पाते सब से मान सदा ।  
 देवों ने दुष्ट-समूह हना ।  
 धन्यक बनकर नर्तन करते ।  
 हों दुष्ट वनुज या बल्याणी ।  
 निज कल्या का फल पाते हैं ।  
 गणितज्ञ न है उनका-देसा ।  
 तो निज मन्त्र प्रिय जन धर्मर बरो ।  
 तुम से हो कुछ भी परे-नहीं ।  
 सुन्दर, मद्य बाना धर्म-धुनी ।  
 भगवा न तनिक इसमें पाओ ।  
 है बौन कृतार्थ करो जिसका ।  
 तुमने सकल किया जिसपा ।  
 आकर वरों-को देना है ।  
 मन भी कहता हर बार यही ।  
 उनका ही कर मैं कर देना ।  
 स्वच्छा-से एक पसन्द बरो ।'  
 हो जाती किन्तु निराशा थी ।  
 बहती-बहती रह जानी थी ।  
 बुध-बुध धर्मरमणक जिम दाए ।  
 निमती हों नव वसिष्ठायें ज्या ।  
 सुर विपयस तुमको मान बड़े ।  
 बोन हो विशिष्टों - जैसे ।  
 तुमने उत्तर बिम्ब भाँति दिया ।  
 तुमने यह कही विचित्र क्या ।

पद-में आधात धाँस फटी  
 अरिस्तार्य न क्या तुमने की है  
 क्यों नाम न अपना कहते हो  
 किस कुल की तुमने धन्य-किया  
 धनलोफ तुम्हारी सुन्दरता  
 बर वस बिस्वास यही होता  
 है मग्न ? मुझे है खेद यही,  
 मैं निशि दिन उन्हें सुमरती हूँ,  
 किस लिये ? न है क्या ज्ञान उन्हें  
 मेजा फिर भी यों मन्वेष्टा,  
 तुम कहते हो मेरा ही हित  
 हित भी न मुझे यह स्वीकृत है  
 वर चुकी स्वयंवर वीत गया,  
 कार्यान्वित करना रोप रहा,  
 पा समय वही पूरा होगा  
 कहते कहते लज्जा धाँस,  
 'है ममा कौन परिषय मेरा  
 बिन पूछे मैं बताना ही  
 होता पूतों का काम यही,  
 बिनका तुम पूजन करती हो  
 वे हैं प्रसन्न वर लेते हैं,  
 वर बनकर स्वयं उपस्थित है  
 इसस भी अति फल पूजा का  
 जिसको वर सिया कहाँ वर है,  
 होता विस्मय सकमुच मुग्धों,  
 'है दूत निषय के स्वामी - वे  
 उनका भैमी मैं वरण किया,  
 संकल्प किया उनका इसने

यह वही कहावत अब झूठी—  
 फिर भी कहना सुन्दर-ही है ।  
 किस जनपद-में तुम रहते-हो ।  
 किस माँ-को मग्न ! धनन्य किया ।  
 है यह वेवस्थ नहीं नरता ।  
 तुम-सा तो दास नहीं होता ।  
 क्यों विदित सुरो-को भेद नहीं ।  
 नित-नित-ही अधन करती हूँ ।  
 भक्तों की नहि पहिचान उन्हें ।  
 मेजा न कहीं पहिले जैसा ।  
 कहना पड़ता पर खेद सहित ।  
 क्या-कहें विषय यह ही वत है ।  
 अब तो यह लगता गीत नया ।  
 सम्यह न इसमें भेष रहा ।  
 या इस तन का बुरा-होगा ।  
 अदक्षिमा रूपोर्ध्व पर छाई ।'  
 मैं - दूत देव पद का चेरा ।  
 मा बिना बुलाये जाना ही ।  
 इसलिये घुष्टता मैंने की ।  
 बिनको दिन रात सुमरती हो ।  
 जो स्वयं तुम्हें वर लेते हैं ।  
 करते न तुम्हारा क्या हित हैं ।  
 तुम कहो सुमुखि ! वह दूजा क्या ।  
 वह कोई सुर धनवा नर है ।  
 वह भेद बताओ सब मुझको ।'  
 हैं गुणियों के अनुगामी वे ।  
 मल मे इनका मम हरण-किया ।  
 यह मान किया गुण का इसने ।

जब भैमी मज्जित-सी देखी  
 सब नृप से धृत्त बेगिनी ने  
 सुनकर सुरदूत हँसे कैसे  
 रदमाँ की कान्ति फट निकली  
 यदि सोच समझ सुम बोली हो  
 दिग्पाल कहाँ नल भूप कहाँ !  
 वर लिया अंगर तुमने नल है  
 यह तो सोचो नल है किस्ना !  
 फिर बरए मामनिक भया कही  
 यह स्तुत्य न कर्म तुम्हारा है  
 इसलिये अशोभन पण्य तजो !  
 यदि निपन्न नाथ पर सुमन बला  
 कार्यान्वित करने से पहिने  
 होते रहते हैं सभी कही  
 मुर सम्मुख नल नृप को वरना  
 नल सम्मुख स्वर्ग छोड़ना है  
 इसलिये बताओ धैर्य करो  
 यह कहकर नृप नृप हुए सभी  
 सह सकी ॥ यह नृप की बोली—  
 'बोली—हे दूत ! अहा-तुमने,  
 मनका क्या कुछ सबल्य नहीं  
 जिसका सबल्य सीपना है,  
 क्या ब-नित नित बदल जाते  
 दवानप-नी क्या नृत्ति कहीं  
 धार्याओं का यह कर्म नहीं  
 वर चुकी जिस वे एष बार,  
 यदि उमरा भी सबल्य बहा  
 गुरु स्वर्ग न मुझको मुभा सकें

कतव्य निमज्जित सी देखी ।  
 यों-कहा सुमन्धु बेगिनी ने ।  
 खिल गया इन्दु नभ में जैसे ।  
 बोले-फिर भूप यों-गिरा मसी ।  
 तो सचमुच कितनी मोसी हो ।  
 सुरमरी कहाँ जल-रूप कहाँ ।  
 तो बिया न क्या निज-से छल है ।  
 उन सरो के न दासों कितना ।  
 रलता सत्ता कुछ नहीं ! नहीं !  
 शोभन न सुमन्ध ! विचारा है ।  
 नल को तजकर दिग्पाल भजो !  
 हो गया अहित तो कौन भसा ।  
 सबको ही विविध विचार भले—  
 पर, होते वे सब सफल नहीं ।  
 है क्या-न भूखता का करना ।  
 तो काँटों बीच दीड़ना है ।  
 किस भोक पाल को बरए करो ।  
 पर वी सुस्थिर दमयन्ती भी ।  
 कर दिष्ट अत सज्जा भोसी ।'  
 क्या-यह न अपूत कहा तुमने ।  
 उसम बढ़कर क्या बचन कहीं ।  
 निज मन में जिस रीपना है ।  
 निज नभ हृदय-में ठौर पाते ।  
 अयो जाती है निज-नित ही ।  
 सबल्य छोड़ना धम नहीं ।  
 जीवन भर उसको करें प्यार ।  
 तो क्या धार्यस्व बिधेय रहा ।  
 धार्कें देखें वे सभी धर्कें ।

मैं मोद मान-मर सकती हूँ  
 लेकर तन मन धन-रूप-मूल्य  
 वे वर न मुझे क्या क्यों देते  
 उनसे है आशा मुझे यही  
 'सोचो भीमी धीतल मन से  
 देवों को असन्तुष्ट करना  
 उनकी इच्छा विपरीत कहीं  
 वे सबस तुम्हें हर सकते हैं  
 मरना भी उनके विना कहीं  
 मर कर भी क्या बच पाओगी  
 हाँ—अन्तरिक्ष में कहो कभी  
 तुम क्या-सब जीव घूमते हैं,  
 उसके स्वामी वे सुगुपति हैं,  
 यदि मरो समिल मैं दूब कहीं  
 यदि मरो जलाकर निज तनको  
 मरने पर न्याय बुकायेंगे  
 आनाकानी तब एक कहीं  
 इमनिषे भला है इममें ही  
 देवों का ही तुम प्यार करा  
 "दिलसा कर व्यर्थ प्रलोभन यों  
 यह भीति व्यर्थ दिसमाना है,  
 इन्द्राणी बनना कभी कहीं  
 है दूत ! स्वर्ग भी वस्थन है,  
 है सुखम वहाँ सुख भोग सदा  
 प्रियतर है यह ही भोक हमें  
 उपभोग न कुछ करके दुख का  
 नर-मुसम, भोग का अवसर है,  
 यों भला स्वर्ग में धर्म कहाँ

प्रण भग म पर कर सकती हूँ ।  
 पूजा देवों को पिता-मुल्य ।  
 सब पिता सुता-हित ज्यों देते ।  
 मैं कभी बरूँगी उन्हें नहीं ।  
 मुह मोह रही कैसे धन से ।  
 है यह ही जीते जी मरना ।  
 तुम वर पाओगी कभी नहीं ।  
 या-भौर विघ्न कर मकने है ।  
 होता जीवों को प्राप्त नहीं ।  
 सोचो कैसे मर जाओगी ।  
 तुम क्या-न रहोगी मर कर भी ।  
 कुछ बेसा वहीं भूमते है ।  
 बच कहीं न सब उनसे गति है ।  
 तो क्या न बरुण-की सरण-वही ।  
 तब कुछ ही धनस-समर्पण हो ।  
 यम क्या न तभी अपनायेंगे ।  
 हे इन्दुमुखी ! वे सुमें नहीं ।  
 कस्याण छिपा यो जिसमें ही ।  
 अब कहो किसे स्वीकार करो  
 करते है आप अशोभन क्यों ।  
 कह रुड़ है, जो मन माना है ।  
 करती मैं तनिक पसन्द नहीं ।  
 जब एक अवस्था-में जन है ।  
 यह कर्म प्रवृत्ति कहाँ बरदा ।  
 मिसते गुण सुख या शोक हमें ।  
 है भला मूल्य ही क्या सुख का ।  
 क्या छेष्ठ न फिर सुर से मर है ।  
 इस शोक गुल्य है कर्म कहाँ ।



है तन-का लाभ कम करना  
 यशा से देव तुष्ट होते  
 फिर निर्दोषी को कभी नहीं  
 कर विविध सु-कर्म स्वयं-गामा  
 कर चुकी वरण जिनका मन-में  
 इसलिए स्व-परिधय अब देकर,  
 सुर-गण को प्रणति-सहित बेना  
 पाण्डित्य पूर्ण उत्तर सुनकर  
 सहसा नृप हुए प्रसन्न बड़े  
 हे भैमि ! सुरों के आगे वे  
 कैसे तुमको बर सकते हैं,  
 नान मर है बस है ही कितना  
 इसलिए कार्य सविवेक करो  
 यों-नूत मिरा सुनकर भैमी  
 बोली साहस एकत्रित कर  
 सतियों की धम महत्ता-को  
 क्या जानेंम कितनी है वह  
 क्या एक-स्वर्ग ! त्रिभुवन का मुख  
 तुम ध्यान न वह कुछ बरत हो  
 मुख भार्गु होकर धमभञ्ज  
 भावी कय टालो टसी नहीं  
 मैं मुदित पुत्रा का भैरूगी  
 आमरण यातना भस-सहूँ  
 प्रत भंग न पर कर सकती है  
 कहत कहते रो पड़ी पाह  
 हिन्की रंध-गई हगा-में जम  
 भूषर्द्धा का रंग बड़ा महमा  
 कनिनी वगकर हुई जस्म

देता है स्वर्ग धर्म करना ।  
 इस बिध सब पन्थ पुष्ट होते ।  
 वण्डित करते सुर-सौम्य नहीं ।  
 हैं रोक न सकते सुर माना ।  
 निम्नल है मन उस ही मन-में ।  
 मेरा मन्देश नम्र स्वर—  
 हैं विवक्षित समा तिलवा-देना ।  
 उसको मन-ही-मन में सुनकर ।  
 बोले-पर फिर भी लड़े लड़े ।  
 सोचो निपथय अभाग न ।  
 मुर नम-को ही हर-सकते हैं ।  
 मुर-बर करे क्या-उस जितना ।  
 अब कहो भीमजी ! किने बरो ।  
 सब समझ उस सहसा सहमी ।  
 हे वृत्त ! भला-जगती-में नर—  
 उस देव-बुर्खभा सत्ता को—  
 हम नृप जानें जितनी है वह ।  
 कर सके न हमका धम-विमुख ।  
 इसलिए बुराधह करते हो ।  
 उमते पहले हा नृह मष्ट ।  
 कब जग की इच्छा फली नहीं ।  
 सी सी साँपा-स भैरूंगा ।  
 मैं क्या न नरक में सदा रहूँ ।  
 अब धन्य को न बर सकती है ।  
 सैभना न बदना का प्रसाह ।  
 भर-गया बि,हा ज्यों सज्जन-कमल ।  
 नृप को भी दुग था दुस्महमा ।  
 धी धीरज धर उपधार-धम्य ।

उपचार रग अपना माया  
भी पूर्ण सजयता कहीं भ्रमो  
हा-निपथनाथ इतना कहकर,  
बोसी-केशिनी सभी-सभसो ।  
दुख समी दूर हो जायगे  
यह मुन भगी ने हृग-सोले  
कुछ देख रही टकटकी लगा  
कल व्य-सूढ़-वे हुए तभी  
भव कहीं स्वय को रोक् सके  
वरवस मुस-से मों गिरा हुई  
जिसक हित सब कुछ त्यागा है  
मैं निपथ देव का स्वामी हूँ  
धिग् धिग् है मुझको मरी प्रिय  
पर बिबल वचन पासना पड़ा  
हूँ धन्य ! मुझे तुम जैसी-का  
परिचय देना तो था न उचित,  
भव ससिमों को बिस्मय भी था  
मे वचन सरस ठव दवा-हुए,  
मुँह-पर आरुष्य उभर आया,  
मानस मैं धति धानन्द हुआ  
बिस्मय केशिनी सभी बोसी—  
किसना छल तुमने किया नहीं,  
तुमने यह पीड़ा क्यों-दी है  
“केशिनी ! नहीं छल किया यहाँ,  
मैं भी यों-ही दुख पाता - हूँ  
धिधि-भ्रदा ठीक ही करते है  
भव जैमा य समुचित जाने,  
सदियों का सुग बालाहल-सा,

कुछ उसे होत मे ले धाया ।  
कुछ मेत्र सोनती कभी-कभी ।  
चुप हो जाती दुख-मे बहकर  
धा-जाय निपथनाथ जव-मौ ।  
निश्चय ! वे मुझको पायगे ।  
पर छल-कपट मे क्या-बोले ।  
नूर-का भी प्रेम प्रवाह जगा ।  
विमरायी अपनी दशा-मभी ।  
रमणी बूढ़ प्राण-स जक धके ।  
भैमी मुनकर अस्थिरा हुई ।  
यह सम्मुख वही भ्रमाणा है ।  
नल हूँ कुमार्य अनुगामी हूँ ।  
जो ब्रष्ट तुम्हें हूँ बाज दिये ।  
है स्वय मुझे भी शोक बड़ा ।  
सत्येन मिसा जो यह नीचा ।  
पर, यह सब किया तुम्हारे हित ।  
सज्जा-मिथित कुछ मय भी था ।  
सुन सब भैमी-दुख हवा हुए ।  
आँख-जिसका, उस-पर छाया ।  
वह इमी लिए सत्यन्व हुआ ।  
क्यों तुमने ठगो प्रिया-भाभी ।  
भात ही परिचय दिया नहीं ।  
या-प्रेम परीक्षा - यो कौ है ।  
सुर-सन्देश ही दिया यहाँ ।  
पर, गुण भैमी - क गाता-हूँ ।  
वे ही सधक दुःख हरते है ।  
सब करें बहो न भीति माने ।  
हो गय मृपति यदुष्य सहसा

जा दिया वृत्त-देवों को तब सुमकर कोषित से निर्जर सब ।  
 समझें-उस का हम उस बेसा जब करे हमारी अवहेला ।  
 पर, हो इच्छा नृप मान किये सबने उनको वरदाम किये ।

भोगो अक्षय स्वर्ग नृपति-से सुरपति बोले—  
 सदा सहायक रहूँ अनन्य-सर्व वर-मति-बोले ।  
 कहा वरुण ने काम तुम्हारे मैं आऊँगा  
 करो मुझे जब या उपस्थित तब पाऊँगा ।  
 बोले-यम हे सूर्य ! तुम्हारे हम आभारी  
 तुम ही सुदृढ़ प्रतिज्ञा सुरों-के भी उपकारी ।  
 पाक-मास्त्र मैं बिज्र न कोई होगा तुमसा  
 कहकर हुए अवृष्ट वही-सर्व निर्जर महसा ।

सोचती थी मैत्री मन में  
 हुआ यह क्या संन्या-क्षण में ।  
 अहा वे सुन्दर हैं कितने ।  
 भीर हैं वाकबनुर इतने ।

## सप्तम सर्ग

( १ )

वह निकट कुण्डिन नगर के ध्रुवि-भूमि-पर मण्डप बना  
 प्रति-दिव्य-सज्जा-से मुसज्जित दीप्तिमान हुषा-बना ।  
 प्राकार चहुँपा घबस उन्नत सजग प्रहरी सा खड़ा  
 परिक्ला-वभय जिसके चतुर्दिक सिन्धु-सा सोया-पड़ा ।  
 प्रति-मण्डिता-मण्डप-अवनि-के मध्य धुन्न-वितान था  
 जिसके सकल सीमान्त-पर, मुक्ता-निकर सुतिमान था ।  
 हैं उड़-रहे ध्वज गगन-में चहुँ-घोर गौरव-से भरे  
 मण्डप विज्ञान न नेत्र-पथ-में छोर घाते वे परे ।  
 वह बीच मण्डप-के चौदोवा लग रहा मोहक बड़ा  
 जो स्वर्ण लतिका प्रादि से है शिखर-विशों ने जड़ा  
 मृदु-कदलियों के द्वार, कैसे मध्य-उन्नत-सिर-झड़े  
 जा, स्वागतार्थ समागतों के हो रहे उत्सुक बड़े ।  
 यह भद्र-शुभ्र-वितान से मण्डित महा-महिमा-मही—  
 कुण्डिनपुराधिप के सुयश-का व्योम-पर विखरा रही ।  
 भतिकान्त-मण्डप-मध्य-में थी मध्य-विस्तृत-बेदिका  
 ममी-स्वयंवर के विभव-की सरस मौन - निवेदिका ।  
 है बेनि-झूटों से रचित छोटा वहाँ छार्द हार्द  
 मानों स्वयंवर देखने, मरुमी-न्यय भाई हुई ।  
 उस बेदिका-में स्फटिक-मणि की लग-रही सण्डावली  
 धरदिन्दु की वह चांदनी-सी, शामती कितनी मनी ।  
 माणिक्य-मणि बहुमूल्य उसमें ठौर ठौर सगे-हुए,  
 सित-मय-के आकाश-में नलज-तुल्य-जगे-हुए ।  
 मापान चारों घोर जिन-पर वस्त्र-हैं सुन्दर-बिछे,  
 उन पर मुनहरी काम क, व बलि प्रूटे हैं गिबे ।

वे स्तम्भ निमित्त-भाण्ड के, चहुँ-धोर सज्जित मे सड़े  
 सिर-पर टिका मण्डप गगन, तन-पर रेंगीले-पट पड़े ।  
 भी चढ़ रही तन-पर सता पुष्पादि से वे सज्जिता,  
 मधु-हास-सा बिसरा-रही, सद्गन्ध-प्रम-निमज्जिता ।  
 बहु गुच्छ पुष्पा-के लटकते, दिव्य-से मण्डप-तले  
 मुँह बेदिका-में देखने, क्या-स्वर्ग से घाते चम्पे ।  
 द्वारेख-गण से युक्त चारों धार तोरण द्वार हैं  
 उस धोर सिंह-द्वार पर अभिगीत मंगल-बार हैं ।  
 ये कमल दोनों धोर सिंह-द्वार के जल-से भरे,  
 हृषित लड़ी कुछ तरुणियाँ भी छिपट निज-मिर-पर घरे ।  
 उस द्वार-के शुभ भास पर बा बिन्दु स्वस्तिक का जडा  
 घबटे सुन्दर नादिक स्वर था हो रहा मादक बड़ा ।  
 मज्जित सड़े सनिय समी क मध्य सुषठित वेह वे  
 मुझ-मधुरिमा-भर ॥ सभी पर छाड़ते सु-स्नेह दे ।  
 मण्डप-तले उस बरिका पर मध घामित हो रहे  
 धामीन होने का जहाँ सुर-गण विलोभित-हो रहे ।  
 अपि मुनि तथा विद्वत्प्रमाणम ध्यान रखकर पूर्व-स  
 धामन पृथक ब विष्ट-रह बहु-मून्य मञ्जु अपूर्व-स ।  
 उस धार है वह स्थान वर्गक-मण्डली के हिन-सजा  
 सुरपति-ममा के तुम्य वह मण्डप ममी समुचित सजा ।  
 वे बज रहे बहु शय त्रिजपति माम-गायन कर रहे  
 गंधिब मनुज उस स्थान को कर-गन्ध स वे भर रहे ।  
 भी जगमगा-सा सब रही वह शिषियों का जानुरी  
 निज मन्त्र स्वर बिगग रही बजकर रेंगीली बामुरी ।  
 इन धोर ध्वनि-सजेत था उस धार वह बाजा-बजा  
 धाने लगे सब यह बजाने क लिए पट्टरी स्वजा ।  
 होने मगा उम ठौर कामाहून प्रतिपि धामे मगे  
 मुख लोग अपने योग्य वर धामन वहाँ-धाने लग ।

सुरपति नृपति सब धा गये, सब के मनाहर बेत हैं,  
 शरदिन्दु से हैं धवन धन-संख्याम-मुन्दर-बंध हैं।  
 भीमे-मटा से फूट तन की कांति बाहर आ रही  
 वशिष्ठ-से परिपूर्ण सब पर ही विधा-सी छा रही।  
 मण्डप छायाभर भर गया सब देखते अन्योन्य को  
 यह है न सुन्दर, बस मुझे ही आज भैमी प्राप्त हो।  
 ये भाव उन सब के यही पर भाव्य-का आथम्य तिये  
 बैठे सभी धुप-बाप वे निज-ध्याम मज्जा-में दिये।  
 सुर-वग बैठा है इधर गण-गण उस ठौर-है  
 वह भीड़ कैसी किन्नरो की, छा-नाई अति-धोर है।  
 यम वरुण इन्द्र हुतास भी घर रूप नल-का धा-गये  
 इस धोर हैं राजन्य-गण उस धोर दर्शक छा-गये।  
 आगमन अब भी हो रहा है यद्यपि मण्डप भर रहा  
 जिसको न घाना हो यहाँ ऐसा न कोई नर रहा।  
 यह अघयायी संतनिक भी, रुद्ध-पथ यदि हो गया  
 तो समझो पीछे रुकों-का बंध मारा लो-मया।  
 घातुर बने अविशम्व वे नव माग निर्मित कर रहे  
 नद-मुत्स-धर गति नीव-जी मण्डप-जमधि को भर रहे।  
 भू-में अमर भर यक्ष किन्नर मगन-में जलधर बिरे—  
 जग-के तृणाहर भीम-तनया भी तृण उर-में धरे।  
 प्या सिन्धु कुम्भज बुलुक में, त्रैलोक्य ज्यों हरि-जठर में  
 रपों-ही समाई भीड़ विस्तृत, भीम सूरपति नगर-में।  
 कृष्णनपुरी के भार ही से, पूर्व वे अतिशय - धके,  
 कर मल धत धत फिर धके इस हेतु माग न धा सके।  
 हा, हन्त ! तब पावन पवन, होकर स-दह न धा-सके  
 या हृदय-धक्का पर, न अपने योग्य बाह्य पा - सके।  
 उनका हरिण भैमी-जयन छवि-य परम-भयनीत-या,  
 अब सिंह-भी क्षिपत, प्रथम-से, तब हरिण-की क्या-कथा।

मैं हूँ पितामह यह समझ, विधि भी न तब थे आ-सके  
 दुर्गम-ही समझा, न दर्शन भीमजा के पा-सके ।  
 ओ भी प्रतिधि नृप भीम-से, सविशेष स्वागत-पा-गया,  
 उत्साह-से भरपूर, आद्यायुक्त बहु बैसा-गया ।  
 भी देव भाषा तब सभी की देव से-ही बेश थे  
 यों मर भ्रमर का मेव तब, बस जानते अलिलेश थे ।  
 निपद्येस सानुभ आ-गये, बमकी-स्वर्गधर-की-स्थली  
 थे बन्दि-जन अमुगत रहे गाते-हुए विश्वाससी ।  
 पूजित हुए बहु भीम-से फिर योग्य आसन मिल-गया  
 ताराबसी के मध्य था शरदिन्दु मानो खिल-गया ।  
 सौन्दर्य नल-जा दक्षकर स्तम्भित हुए भूपति-सभी  
 विधि की सुवृत्ति सभी उसी-क हेतु ही मानी सभी ।  
 तब भीमजा के रूप-का ही सब जगह सुप्रसंग था  
 प्रत्येक नृप जिसको व्यवहार हो रहा अति बग था ।  
 सहसा विचित्र प्रकार के आदत्र जा फिर से बड़े  
 आद्या भरे मुकराज-गण मज्जित हुए भी फिर सबे ।  
 बरबस सभी की दृष्टि सिंह-शाह-पर जा-रुक-गई  
 ज्यों, कण्ठ प्राणा-नृपित-हरिणी सरित-तट-पर झुक-गई ।  
 जल-रूप आकर रुक-गई उस घोर भी वर-पावकी  
 उपविष्ट त्रिभुवन-मुल्गरी जिसमें मुता-नरपास-की ।  
 सवि-बग में अवलम्ब द नीचे उतारी भीमजा  
 मानों, उतारी अघनि पर यह स्वर्ग-मे नव-दबजा ।  
 तब पान दिव्य स्वरूप का, नृप-दृष्टियाँ करने सभी  
 भ्रमरत्व-फन निज-नृपित-हृदया-में सभी भरने सभी ।  
 नृप-दृष्टियाँ के भार-म युग पसक जिससे मृष रहे  
 निब्रसाम्त में ज्यों विषय अति युग पंजजा में रुक रहे ।  
 वह मुमम था अथ तक नहीं जा हाथ मासी-के पड़ा  
 था, रत्न था अनाविष्ट, अक-तण जो न मापा-में जड़ा ।

गुण्डित कनक-परिधान-में था धरुण धानन भ्रमकता  
 मानों कि ऊया कास में जामार्क नय-में समकता ।  
 बेदी भ्रमकती भाल-पर व कर्ण भ्रूषण हिम रहे  
 दिव्याम रत्न कपोल जिनको घूमने को मिल रहे ।  
 वह धमर-वाह्यो की कमा को व्यक्त करती थी लड़ी,  
 हंस बेसिनी बोली सभी खलि । धाज शुभ बेला बड़ी ।  
 यह याचकों के सहसा नृप मण्डप तुम्हें अवलोकता,  
 'किमको करोगी धन्य' यों प्रत्येक जन है सोचता ।  
 है सब फलात्मक हे भुमे । यह समुत्सुकता मेट दो  
 दिव्यायते । निज योग्य वर धुनकर अपूर्व स्व भेंट दो ।  
 सकोष धन किस बात का आधो । बढ़ो । आगे चलो ।  
 पाकर सुयोग्य-मुक्तद-बिटप हं सुलतिक । फलो फलो ।  
 यों-कह, पकड़कर मञ्जु-कर वह भीमबा को के बसी ।  
 बेदीप्यमान हुई सभी जिससे स्वयंवर की स्वामी  
 अपसक अभी तक बेजते सब नृपति वैवर्ही छटा ।  
 हे बन्ध नृप-गण ! बहु बचन मुन, ध्यान उन सब का हुटा  
 अत्याय का मुक्त देनकर सज्जित हुए सहसा सभी ।  
 हे बन्ध नृप-गण ! कह रहा था उधर बहु बन्दी अभी  
 है धन्य । प्रतिष्ठय धाज-की, यह मुक्तद-शोभाभय-धड़ी ।  
 की आप लोगों ने यहाँ आकर कृपा हम-पर धड़ी  
 उससे कृतज्ञ महीप हैं उनका निवेदन है यही ।  
 उसको नरेश क्षमा करें, त्रुटि हो अगर हम से कहीं  
 उनकी-सुता-के रूप में वह पारिजात-सुमन-जिना  
 जो आपने यह पुण्य - स्वागत - का हमें अवसर मिला ।  
 यह वर-गुणों से मण्डिता, उपमा न है जिसकी कहीं,  
 बहु बालिका बरुणार्च, मन्त्रियों - सहित धन आई यही ।  
 उसका स्वयंवर हो सफल, ऐसा, सुमन सभी करें,  
 यदि, बिघ्न कुछ घाम, उसे-ता सदाय-वरभस्वर-जरे ।



परिचित करायेगी उसे प्रति भूप से उसकी सखी,  
 जो हम क्या में बिज्र पिछा है यही जिसको कि वी।  
 वह चित्र-युग प्रत्यक्ष नृप के वृत्त को है जानती  
 उस-पर कृपा-भय भाज हैं दुःखसाम्बरा - माँ भारती।  
 हृसासना का धंश सम्प्रति केहिनी को मामिये !  
 यह है कुसागठ-माम्यता नृप भीम की सख जानिये !  
 वह यह बता क्यों-ही एका क्यों ही सु-मन्त्र-बुल-केसिनी—  
 भीमारमजा-का कर पकड़ कर बढ़ बसी सखि-कसिनी।

देखो लम्बी ! यह मल-गण इस ओर सोमा-या रहा  
 बिद्याधरा का संघ वह देखो ! उधर बैठा महा।  
 गधर्म गण यह ! सेविका जिसकी सकल गायन क्या  
 बिरलावसी इनकी मनुज क्या लाक में गाये भवा।  
 ये निषट मल बेबेन्द्र के सब काम रहत हैं वहाँ  
 दुल नाम को भी है नहीं सुर अदि-मिदि रहे जहाँ।  
 उनमें न कुछ रवि भीमजा की देव वह आगे बसी  
 तिमती मला रवि-के बिना कब कमल-की कोमल फली।  
 सज्जित हुआ घामीन है युवराज गण हम ठौर से  
 परिनिष्ठा कराती है तुम्हें हे प्राप्ति ! मैं हम छोड़ मे।  
 दे

यह सु-तन मन जिसमें मुकुट-मम दमकता  
 दमरा भाम रवि गम धमरता।  
 यहाँ द्रौप का यम - गण है मध्याम में  
 तथा है काम नी काम में।

ब्रह्मा र है जहाँ  
 को म यहाँ।

हूँ !  
 सी।

उस द्वीप पर विख्यात इस भूगोल का न्यग्रोध है  
जिससे कि सारे द्वीप का स्वयमेव आतप रोष है।  
हिम सुख्य वह द्याया सखी कसकेसि तुम करना जहाँ  
हे सुमुखि ! अपना सुरत धम तुम सहज-ही हरमा वहाँ।  
इसके सुमध के सामने हसावली की श्वेतता  
रम्भोर ! है अब हीन सी उससे स्वयं पाकर बता।  
पर, केशिनी तब भीमजा की वह मुक्ताकृति हेर के  
सेकर उसे आगे बढ़ी उस नृपति से मुँह फेर के।  
उनके गये पर रह गया मों बदन पुष्कर नाथ का  
ग्यो पश्चिनी पति निहत्त सा रहता गगन में प्रात का।  
देखो चकोराखी ! इधर ये शाक द्वीप मरेश हैं  
वे शाक नामक विटप इनके राग्य में सविशेष हैं।  
आहूसादकारी हिम धनिस, उनसे निकल बहता वहाँ  
वह उदय गिरि इनके सुमध को स्तम्भ बन कहता वहाँ।  
उदयाद्रि पर करना भ्रमण बनकर धुमे ! विस्मय नया  
सोचें मनुज रवि स्वान पर, यह बिबु कहीं-से आ-गया।  
तुमको जगायेगी लड़ी उस ठीर ऊपा सुन्दरी  
गैरिक छटा से पूर्ण है उदयाद्रि की विस्तृत - दरी।  
करना विहार वहीं सखी होगा सफ़ल जीवन तभी  
मिलता नरी-को इन्द्रमुषि ! ऐसा सु-योग कभी कभी।  
यह नत बदन निम्र नीलता की प्रगट करना आप है  
रण-बानुरी को विदित करता यह करस्थित आप है।  
रहते वहाँ पर विष्णु हैं अचला वहाँ हैं 'चञ्चला'  
रिपु एक का भी तो मही अब तक जहाँ बुद्ध वश चला।  
अभू शेष पाकर भीमजा - का चक्षिनी आगे चली,  
चसती हुई भीमात्मजा हसी - समान भगी भसी।  
दर्शन करो कमसाक्षि ! तुम इस वीर ऋषि महीप के,  
यधि मण्डकोन्धि वह रहा, उन्हें धोर उस बर द्वीप के।

परिचित करायेगी उसे, प्रति भूप से उसकी मसी,  
जो इस जला में बिज सिखा है यही जिसको बि दी।  
बह धिम-गुल प्रत्यक्ष नृप के बल को है जानती  
उस-पर कृपा-भय आज है लुप्तसाम्बरा माँ मारती।  
हमासमा का भय सम्प्रति केशिनी को मानिये !  
यह है कुलागत-भायता नृप भीम की सब जानिये !  
वह यह बता, ज्यों-ही रुका त्यों ही सु-मरु-जुल-बैशिनी—  
मीमात्मजा-का कर पकड़ कर बड़ बनी ससि-केशिनी।

देखो सखी ! यह यक्ष-यण इस धोर जोमा-मा रहा  
विद्याधरों का सब बह देखा ! उधर बैठा महा ।  
गधर्ब गण यह ! सेबिका जिसकी सकल गायन क्या  
विद्याधरी इनकी मनुज क्या साफ में गाये मन्ना ।  
य निकट सब देवेन्द्र के सब काज रहते हैं वहाँ  
कुल नाम को भी है नहीं मूल छटि-सिद्धि रहें जहाँ ।  
उनमें न कुछ रुषि भीमजा की देख बह पागे बनी  
मिलती मन्ना रवि-के बिना कब कमल की कोमल-बनी ।  
सज्जित दुष्मा आसीन है युवराज गण इस ठौर से  
परिचित कराती है तुम्हें हे भासि ! मैं इस छोर से ।  
देखा मन्नी ! यह सु-सन मन जिममें मुकुर-मम मन्त्रा  
गुड मन्त्र विद्याम इमरा भास रवि मम कमलना ।  
यह माय पुकर द्वीप का मम मनुष्य है सग्राम में  
माकार धर्म रमिक गया है काम मा ही काम में ।  
बह द्वीप मममो स्वयं ग्रहा स्वयं रहते हैं जहाँ  
कुत्यादि कछ भी मनुज को महना नहीं पड़ता यहाँ ।  
एतव्य पूरा तुम्हें मिले इसको बरो हे मुन्नी !  
ग्रहा स्वयं मु मुदित रहें हरकर निज जानुनी ।

उस द्वीप - पर विस्मृत इस सुगोन का न्यग्रोध है  
जिससे कि मारे द्वीप का स्वयमेव घातक रोष है ।  
हिम तुम्य वह छाया मसी कलकेसि तुम करना वहाँ  
हे सुमुखि ! अपना सुरस अम तुम सहज ही हरना वहाँ ।  
इसके सुयश के सामने हसावसी - की स्वतन्त्रता  
रम्मोह । है धन हीन सी उससे स्वयं पाकर घटा ।  
पर, केसिनी सब भीमजा - की वह मुखाकृति हेर के  
सेकर उसे आगे बढ़ी उस नृपति से मुँह फेर क ।  
उनके गये पर, रह गया यों बदन पुष्कर नाथ का  
ज्यों पथिनी पति निवृत्त सा रहता गगन में प्रात का ।  
देखो जकोरासी ! इधर से छाक द्वीप नरेष्ठ हैं  
वे छाक नामक विटप इनके राज्य में सविशेष हैं ।  
प्राह्लादकारी हिम धनिस उनसे निकल बहता वहाँ  
वह उदय गिरि इनके सुयश की स्तम्भ बन कहता वहाँ ।  
उदयाद्रि पर करना भ्रमण बमकर धुमे ! विन्मय मया  
सोचें मनुज रवि म्यान पर, यह बिबु कहां-से आ-गया ।  
तुमको जगायेगी लड़ी उस ठौर ऊप्य सुन्दरी  
गैरिक छटा से पूर्ण है उन्माद्रि की विन्मृत दरी ।  
करना विहार वहीं सखी होमा सफल जीवन ठमी  
मिलता नरी-को इन्दुमुखि ! ऐसा नु-योग कभी कभी ।  
यह मत बदन निद्र गीतना को प्रगट करना आप है  
रण बानुरी की जित्ति करता, यह कर्तव्यता आप है ।  
रहते वहाँ पर विप्लव हैं अवसा वहाँ है 'अव्यवसा'  
रिपु एक का भी तो नहीं धन तक वहाँ कुछ वध असा ।  
भू - क्षप पाकर भीमजा - का केसिनी आगे असी,  
चसती हुई भीमारमजा हसी - समान सगी भली ।  
दर्शन करो कमसाक्षि ! तुम इस वीर कौच महीप क,  
दधि - मण्डकोदधि वह रहा बहुत धोर उस वर द्वीप के ।

उस ठौर का रहना भला होगा नहीं रुचि कर किसे  
 है मञ्जरा मेरी अये-सखि ! भीमजे ! वर सो इसे !  
 गिरिनन्दिनी - नन्दन धरों से अणित-वह हुआ पड़ा  
 वह कौज दारण अपस तो भी है वही उत्सुक लड़ा ।  
 सखि ! इस कमरब व्याज से मानों बुसाता वह तुम्हें  
 कम-केल के हित स्वान क्या वह भी न भाता है तुम्हें ।  
 कर अर्चना हर की वहाँ हे आनि ! केषम दर्भ से  
 है मुक्त हो जाते सदा को मनुज जननी गर्भ से ।  
 दधि मण्डकोदधि में सखी ! करना विहार कभी कभी  
 होना विद्यानाथी सफल केवल निहार कभी कभी ।  
 उस ठौर से जो इस नित जाते विदेश नय नये  
 वह सुयष्ट इनका इस वन दिव्याप्त होता है अय !  
 कौञ्चेश में पर अरुणि मुक्त-से भीमजा की मान के  
 वह वक्षसी उस भूप को अप्राप्य उसका ज्ञान के ।  
 हे स्वयंजनाक्षी ! देख सो कुश द्वीप क ये नाथ है  
 अखि समर के शीतल अहा आजातु इनके हाथ है ।  
 पुनिमान इनका भास धन-धन तेज-जल बरसा रहा  
 इस ठौर आगत नृपति गए इनसे सभी डर सा रहा ।  
 घृत-सिन्धु बहता है वहाँ कुश द्वीप सट पर सुन्दरी ।  
 आहृष्ट कर्णों दृष्टि को वे मन्दराक्षस की धरी ।  
 जो हैं अनन्त न छोर उनके दृष्टि में आते कभी  
 नर्तन मयूरों का वहाँ कोनिस सु कुल गात कभी ।  
 हे रमणीय ! प्राप्त कर इनको रमण करना वहाँ  
 निदधय सममसो प्राप्त इनसे हो तुम्हें आनन्द महा ।  
 आगे बसो मुन भीमजा स, कछिनी आगे बसी  
 ग्रीष्मार्ध-कुश-सम हाथ ! तब कुशनाथ की आवाज जसी ।  
 हे मुमुक्षु ! आत्मल द्वीप के य नृपति शोभा पा रहे  
 ममधर सभी चारण बने इनके सुयग को गा रहे ।

विधि से ग्रहा, कैसी इन्हें यह दिव्य सुन्दरता मिली  
 बल बृन्द के दगनार्थ भी बुद्धि बर्बरता मिली ।  
 मृत व्यक्तियों के हेतु जीवन दान जो करती सदा  
 सजीवनी सूटी रुखा - वरुण जन्य जो हरती सदा ।  
 उसका जनक वह श्रेण-गिरि, उन्नत वहीं पर है सड़ा  
 हे सुस्वनी ! वर कर इन्हें होगा तुम्हारा हित बड़ा ।  
 ज्यों बच नदी पथ के प्रचल-से सिन्धु में जाती भसी  
 त्यों भीमजा उस नृपति से बचकर, लिसक धागे-भसी ।  
 बोली तनिक बल केशिनी, हे इन्दुमुखि ! देखो इन्हें  
 ये नाभ पल्लव द्वीप के रवि - सदृश ही सेजो इन्हें ।  
 वे पल्लव शाखा भूमती दोसा सवृक्ष ही गगन में  
 उन पर सुरम्भे । भूलना सुख-शत-गुणित हो रमण में ।  
 इनकी प्रजा विष्णु भक्त है जो इन्दु के दर्शन बिना—  
 भोजन न करती कष्ट उसका यह प्रथम जाता गिना ।  
 हे सखि ! तुम्हारा विष्णु विमिन्दित-वदन यह होगा जहाँ  
 समझो रहेगा भूमि पर सब काल अन्वोदय वहाँ ।  
 वे क्लेशहर तुमको समझ, पूजा करेंगे भाव से  
 कितना न जाने मे तुम्हें सम्मान देंगे चाव से ।  
 बहती विपासी सरित, पल्लव - द्वीप में जल से भरी,  
 देखो वहाँ पद्मावसी पञ्च - दुर्गों से सुन्दरी !  
 इनके सुयक्ष-से सरित - जल जब श्वेत वृक्ष - सवृक्ष सगे  
 तब भीर भीर विवेकघारी, हंस - भी जात लगे ।  
 पर भीमजा को देखकर, जो घनमनी सी लग रही,  
 प्रत्यक्ष प्रमदता कि तब जिसके वदन - पर जग - रही ।  
 वह केशिनी प्रागे भसी, वह मञ्जु कर, कर-में गहे,  
 उस काल पल्लवाधिप, विष्णुस्तुत प्रस्त-विष्णु के सम रहे ।  
 कुछ ठिठक कर फिर केशिनी बोली—कमलनयने ! सुनो  
 देखो, तुम्हारे योग्य जम्बूनाथ ये, इनको चुनो !

है आज सर्वश्रेष्ठ अम्बू द्वीप, जग में है सखी !  
 तुमसे प्राप्त हूँ यह वृष्णा सविशेष अब से है सखी !  
 मोभा वहाँ की सत-गुणी, अम्बू बनों से हो रही,  
 जाम्बू मदी उस ठौर जनता के कम्पुप सब षो रही ।  
 उस प्रान्त के हित देखियाँ भी सर्वत्र तरसुक र्हें  
 दो हमें अम्बू फल सहठ निज प्रियतमों से वे कहें ।  
 जो दृष्टि बरवस लीचते हैं धीर ऐसे पुर वहाँ  
 वह विश्ववन्द्य धमन्तिका शोभा बढ़ाती है वहाँ ।  
 सिप्रान्ती का गान बल कस श्रोत्र सुखकारी बढ़ा  
 वह हेमगिरि ही स्वयं बनकर छत्र मोने का सडा ।  
 तादृश्य का फल प्राप्त होगा कर बिहार तुम्हें वहाँ  
 उपहार ये निज सुमन का देंगे स्वयं तुमको जहाँ ।  
 अनुराग हीना बैखकर, पर भीमजा की दृष्टि को  
 वह केगिनी आगे बढ़ी सं साथ स्वर्ग सु मष्टि को ।  
 कहने लगी स्मितहासिनी सखि ! गीड़ मूप को देख लो  
 समझो उचित तो है सराजमुली ! इन्हें निज भेंट दो ।  
 पाकर तुम्हें सचमुच प्रहा ये नव पयोद सवृष लगे  
 जब दामिनी सी दृष्टि तुम्हारी एक इनके जगमगे ।  
 इनसे समर नर रिपु न इनका एक भी जीवित बचा  
 इनको न अपने सदृश कोई भीर भूतस पर जैधा ।  
 सुन्दर गुणी ये सब प्रजा इनको जनक मम मानती  
 निज प्राप्त स्वर्ग समझ, अरुमि का दाक इनको जानती ।  
 इनसे अगर तुम चाहती हो प्रम मय कीड़ा, सखी !  
 कहने न देती धीर यन्नि वह बिघ्न बम कीड़ा सगी ।  
 सकेत ही स तो बहो मैं समझ जाऊँगी सभी  
 मासा तुम्हारी वल - से इनके जुड़ाऊँगी धमी ।  
 मधु दृष्टि से भीमात्मजा-नी, एव दिव्य अपाङ्ग से,  
 हँस केगिनी आगे चली हेमाङ्गना की साथ से ।

कहने लगी फिर हे सुमुखि ! उपविष्ट ये मधुरेश हैं  
नवयुवक हैं जिस भाँति कासे हृष्ट घन से केश हैं ।  
पूर्णन्दु-सा मुख धमकता कितनी विद्याम भुजा भये ।  
हे लग रहे ज्यों शक्र सजकर स्वर्ग सु-पर आ-गये ।  
शोभा वहाँ की स्वयं कासिन्दी बड़ाती आप है  
वह तरणिका रोके स्वयं रहती तरणिका का नाम है ।  
उस ठीर सुन्दरि ! दयाम-वम की है बड़ी-मोहक छटा  
जिसको विलोक मनुष्य न फिर निज दृष्टि को सकता हटा ।  
बरकर इन्हें उस निपिन में कस केलि करना धूमना  
हाँ, माचते केकी कुसों को देख तुम भी भूमना ।  
पावस समय का हृष्य ऐसा और पाद्योगी कहाँ  
हे बभ्रुकण्ठि ! मिला स्व रव, पिक-सग तुम गाना वहाँ ।  
सन्ताप क पर चिन्ह मैत्री बदन पर पाये नहीं  
सखि केहिनी समझी कि ये नृप भी इसे भाये नहीं ।  
वे बड़ीं तब मधुरेश का मुख रंग ऐसा हो गया  
मानों कि साधक का वहीं पर मिद्धि-धन ही खो गया ।  
प्रति कमल पर मानों पवम जल-की सहर को सा रही  
के भीमजा को केहिनी, प्रति भूप पर त्यों जा रही ।  
पीछे - रहे नृप के मनो में स्वाभिमान बड़ा जगा  
अपनी उपेक्षा उस समय अपमान और उन्हें मगा ।  
अब बैठना भी जा बटिन वह प्रभा ही रोके-रही,  
सम-सगिजतों-को देख मन को सान्त्वना थी पा रही ।  
“सखि ! देखसो, बैठे हुए, इन सौम्य - काशीनाथ को  
मैं केहिनी बोली उठा उस और अपने हाथ को ।  
इस सकल सु - पर पुष्पदा, काशीपुरी विख्यात है,  
ये है महा विद्वान्-लोक सुवन मोहक गाँठ है ।  
शोभा बड़ा वाराणसी की स्वयं वरुणा बहु-रही,  
वह स्वयं कस-कस-भ्याज से इनके सुयज्ञ का कह रही ।



बाराणसी भव बंधनों से छूटने की मुक्ति है  
 उस ठौर मरकर सहज ही होगी जनों की मुक्ति है ।  
 नव-यज्ञमायें सुख हो इमको स-मुद चाहें सभी  
 वर तो इन्हें ऐसा न भयसर प्राप्त होगा फिर कभी ।  
 सखि ! स्वयं शरकर ने बसायी वह पुरी इस लोक-में  
 उस ठौर कोई भन न तुमको भिन्न पाये लोक-में ।  
 उस जगह को कृतकृत्य है सखि ! स्वयं जगदम्बा-किये  
 कल-केलि के हित सुख हो वह भू तुम्हारे भी लिये ।  
 मेरा न है यह प्राप्य ऐसा साध मन-में भीमजा—  
 चलकर वहाँ ठहरी जहाँ बैठा अयाध्यायिप राजा ।  
 या अप्सराओं के सवुध सखि-वग सुमुदित साध-में  
 भैमी-कमलकर को लिये थी बेधिनी निज हाथ-में ।  
 देखा सखी ! षट्पुर्ण को कसा ! सुखोल धरीर है  
 दिनकर-समान सु-कान्ति सागर के सहस्र गभीर है ।  
 वह भव्य सरयू तट वहाँ हो सुख हस जहाँ रहे  
 या निज प्रियाओं का वियोग न एक पल को भी सहें ।  
 उम हस-छिन्ना ये तुम्हें ये साध रखें मुन्दरी !  
 वसुधासुधे ! तुमको धर्म मे कर अनेको जातुरी ।  
 उस दिव्य सरयू तीर-पर तुम हस कीड़ा बेचना,  
 सुर सरित-तट पर छपी के सम तब स्वयं को लेना ।  
 सखि ! याद इनके शत्रुओं की देखकर घाती यही,  
 उनकी प्रियायें प्राप्त-कर बैषम्य को जो रो-रही ।  
 साकेत सी सोमा न है साकेत को राजकर कहीं  
 हे हंसिनी ! धानन्द सेना तुम इन्हें भजकर वही ।  
 पर, भिन्न रुचि है सोन-में रघुता न रोचक भी वही  
 बटे वहाँ पाण्ड्यग अज वे सब-रुकीं भावर वही ।  
 मण्डप-मगन में मृग-सभा, उडु-गग-घटा-मी धिर रही  
 वह इन्दु-बदनी भीमजा पूरेंनु बनवर फिर रही ।

पाश्वर्देश का गुण-गान भव बह बेसिनी कहने लगी,  
 हे सुसुखि ! देखो भव्य-मुख, द्युति-दिग्ग-कैसी जगमगी ।  
 इनके समी रिपु मानकर भय, स्थिर न रह सकते कहीं  
 वे भीत छिपते विपिन में ये समर में थकते नहीं ।  
 इनकी सकल-रिपु-सम्पदा इनके यहाँ ठहरी हुई,  
 निर्भीकता इनकी परम उसकी सजग प्रहरी हुई ।  
 वह कौन ! बस रण-रहित न इनके भट जहाँ-पर जा सके,  
 किस ठौर, ये होकर जयी अपनी ध्वजा न उड़ा-सके ।  
 कर मन्द-सी वाणी मधुर हैस बेसिनी कहने लगी  
 घामोद घासी का विवक्ष-हो-नत-दुगी सहने लगी ।  
 तुम चाहती निपवेश को मैं जानती हूँ हे सखी !  
 दर भय को मक्लीं न तुम में मानती हूँ हे सखी !  
 घन-रूप-जल विद्या विमल - में हूँ उन्हीं के तुल्य ये  
 निपवेश इनके भूष्य सखि ! हैं और उनका - भूत्य ये ।  
 पाना उन्हें ही दृष्ट इनको तबपि तुम छोड़ो नहीं  
 मन की प्रिये ! मन-मवृक्ष घन-से भूल मूढ़ मोड़ो नहीं ।  
 शत-शत जनो को पार जब करती अकेले ही तरी  
 एकाकिनी थी जगत-से सु-बिहार जब करता भय ।  
 कल्याण फिर जग-मुन्दरी जम एक ही का क्यों करे,  
 उपविष्ट घेष्ट - करावली-में, एक-ही बर-क्यों बरे ।  
 तब भाव सहसा ही घुणा के भीमका-मुख-पर जगे  
 साध्वी-सखी-को वृत्त भी बव ! पापभय धक्का लगे ।  
 करके कटाक्ष सरोप वैवर्मी, तभी भागे-बड़ी  
 घण्टाभ-मञ्जु-कपोल ज्यों, उदयाद्रि-पर उभा बड़ी ।  
 ये हैं कमिष्ठाधिप सुनो इनके गुणा को सुन्दरी !  
 देखो विशाखासी ! मुदुग भाकरा ये इनके धरी ।  
 उस प्रान्त की घामा महेंद्राक्षस बड़ाता भाप है  
 उत्त-ऊ-गुहों पर जयध्वज बह उड़ाता भाप है ।

जितने द्विरद इनके महीं इतने न पायेंगे कहीं  
 इनके निकट थी भी स्वयं होकर विमुग्धा रह रही !  
 सुन गुण भ्रूरे ही वहाँ से भीमजा आगे सभी  
 अवमानना अपनी कलिङ्ग नरेश को प्रति ही लसी ।  
 बैठे जहाँ काञ्चीपुराधिप जा रुकीं दोनों वहाँ,  
 यह भी न देखा साध की वे सहचरी अपनी कहीं !  
 सकेल दुम का कर सभी ने भीमजा से यों कहा,  
 देखो सुमुखि ! काञ्चीपुरी का सु नृप यह बैठा भ्रमा ।  
 कोदण्ड कुण्डल-सा सदा-मुग्राम में इनका रहे  
 रण-में विनिक्षिप्त इनका न गज भी सामने हाकर सहे ।  
 इन पर कृपामय सब भ्रमर, अनि यज्ञ इस नृप ने किये  
 बहु-दान लेकर धीन-याचक-भी कुबेर बना दिये ।  
 समानितों को मान दे दुर्बण्ड देते वृष्ट को  
 उसका न फिर रसक कहीं यह नृपति जिमसे वृष्ट-हो ।  
 गाती-बसी प्रत्येक नृप-का विरुध यों ही केसिनी  
 ठहरी न फिर सम्मुख किसी के भीमजा बरबेहिनी ।  
 मिथिलेश पीछे-रह-गय छोड़ा इधर मगधेश को  
 पीना पड़ा अपमान मानी कामरूप-नरेश को ।  
 भूपावसी को छोड़ बहु भागे बड़ी जब लामिमा  
 पीछे रहे नृप-मुर्मो-पर फिर-भी गई तब कामिमा ।  
 से साँस सम्भी बिबल वे निस्तेज-मे सब रह-गये  
 सबिरोप भग्ना-सिन्धु-में तब उत्कलाधिप बहु गय ।  
 ये श्रीर भी जो नृपति छोड़े तब वहाँ सज्जित हुए,  
 'हम व्यर्थ ही आये' सभी वे मोच-यों सज्जित हुए ।

( २ )

सज्जित हुए वर-मञ्च पर नियेष्य बैठे-ये जहाँ  
 न साध दमयन्ती मगी को केसिनी पहुँची वहाँ ।

अ्यों, देखकर विकसित कमल, अग्नि फिर न आगे जा-सके  
 स्यों-देखकर भल-मुक्त-कमल पद स्वयं भौमी के सके ।  
 अपनक दृगों-से देखती चित्राङ्गिता-सी-रह-गई  
 अनजान-में माना स्वयं वह भाव अपना कह-गई ।  
 कहने लगी-फिर केशिनी सखि ! देखभो निपयेस-को  
 इनका सु-वेष अतिक्रमण करता सूरों-के बेग-को ।  
 देवीप्यमान विद्याल इनका भास कसा कमकता  
 रजनीरा पूरे भास का मानों गगन में दमकता ।  
 कितना गठित है वेह मुज गज-शुण्ड-मम मौमस घने  
 हाँ पकड़कर कोदण्ड य जब जब समर में हैं तने ।  
 तब तब विनिर्मित सौह से रिपु-वृन् ने माना इन्हें  
 अबलाक इनके कोष को यम दूसरा जाना इन्हें ।  
 विवेक ने गति तीन वे रिपु विश्व में इनके रचे  
 भागे मरे अववा धरण-में पहुँचकर इनकी बचे ।  
 ये प्रेम हैं साक्षात् इनको शान्ति भी अनुपम मिली  
 पाकर गुणी को कब न इनकी हर्ष से आँखें बिसीं ।  
 सखि ! वद-दुर्लभ ही हृन्म इनको मिला भगवान से  
 तम-मन विमूषित हो रहा इनका असीमित ज्ञान-से ।  
 जब, निज विद्याम सुराष्ट इनके जनक ने इनको दिया  
 गुण-स्रव भी तब स्वयं ही उनसे इन्होंने ले लिया ।  
 सखि ! वद इनका देवता, हिमवान-सा विष्णु तना  
 सु-विष्ट तत्त्वों से कि जिसके बीच वह मानस-जना—  
 ओ, कठिन से भी कठिन कोमलतम कभी है दीसता  
 पर-गुणी को भी पूजता निज-दुष्ट-का देना घटा ।  
 देवेन्द्र भी आसन स्वयं आधा इन्हें देत प्रीति ।  
 इनके लिए देवाङ्गना भी चाहती होना मरी ।  
 हैं-देख-कर इनका परस्पर तरणियाँ कहनीं यही  
 गिष न जिसे फूला प्रीति यह जी-उठा है स्मर वही ।

या, मायनी-मदमत-हो, मदनारि ये भ्रम-में पड़े,  
 'जीवित रहा स्मर' बे-हठीले फूँक-गया यों-ही घड़े ।  
 निज-वश जो इस कल-से, अपना छुड़ायेगी धरी !  
 सुर बुलभा बह कीन होगी माम्म दोसा सुदरी !  
 यह कीन ! इनके पद-कमल पूजा करेगी बाव-से  
 यह धन्य होगी ये जिसे सुहिणी कहेंगे भाव-से ।  
 यह कीन ! इस वन धनु को शोभित-करेगा वामिनी  
 सु-भानु का भव भोष्य सधमुष ही बने सु भानिनी ।  
 दिव्याप्त है इनका मुग्ध जाघो जहाँ पाघो वही  
 इनक गुणों-का गगन कर सकता गणित-पुङ्गव नहीं ।  
 घल, घल किये हैं यज्ञ इनके पूजको ने लोक-में  
 योगी-समान सग रहे सम मौख्य में या लोक-में ।  
 पुष्पी-मनुज ही स्वयं-को हैं देख सकते यह कथा  
 हे चन्द्रबानी ! कर दिवायी है इन्होंने धन्यदा ।  
 यह प्राप्त इनका भाव दिव-का भी अतिक्रम-कर गया  
 सब देख लें प्रत्यक्ष पापी-मनुज भी यह दिव नया ।  
 गुल-भान में इनके धरी ! देखेन भी सकते नहीं  
 यह काव इनका मौपल जो स्वयं कर-सकते नहीं ।  
 यम-वक्त्रा इन्द्र धनस मगी ! इनके इन्द्रज हुए पने  
 ये पाव शास्त्र विचारणों-में प्रथम ही बात गिन ।  
 सगि ! अदब-बिद्या में न इनक तुल्य है कोई कही  
 हाँ, दान इनके सदान कर सकते कुबर स्वयं नहीं ।  
 गुण केशिनी गाती, सु-हृषित-भीमजा - सुनती गई  
 उसके कपोलों - पर प्रगट दगी-गई ऊया गई ।  
 संकोच-के सुर - मार म ये पमक नयनों पर मुके  
 पद-बाहते भमना म कुछ भी नम सब सह्या-रने ।  
 जयमास हाथों-में उठी पर उठ बही रन रह गई  
 वह कमक-वस्त्री कुछ बड़ी सह्या सधन भुक्त-रह गई ।

कसब्य - मूढ़ समान उसको देख बोली केशिनी,  
 पूरा करो अब कार्य लज्जा छोड़कर वर-वेशिनी ।  
 अबलम्ब पाने के लिए भी चाहती अबलम्ब हो  
 यह सुन जाती-हो कि तुम स्वयमेव जग-की स्तम्भ हो ।  
 यदि, चाहती अबलम्ब-ही तो जो तुम्हें मैंने दिया  
 यों-कह, सु-कर जयमाल-वाला हाथ अपने-में लिया ।  
 कहने लगी-फिर केशिनी कुछ मन्द-सी चलाती हुई,  
 अनुपदा दमयन्ती, मरामी-को चली-खसती हुई ।  
 'क्या-सोच है सखि ! छस न कुछ होगा तुम्हारे साथ में,  
 निर्भीक हो निज पाणि-को सौपो निषधपति हाथ-में ।  
 भरपूर नृप-मण्डल, सुमुखि ! तुम देखसो बैठा-यहाँ  
 इनके सवृषा कोई सखी । पर लग रहा इनमें कहाँ ।  
 घूमी नरन्द्रों पर तभी युग-हरिणियों-सी दृष्टि-यीं  
 क्षण एक-ही हो रह गई तब वह सुधामय दृष्टि-यीं ।  
 ऐं, ऐं, सखी ! यह क्या-अचूरा वाक्य-ही मूँह से कहा  
 उसका सभी वह हर्ष सहसा रूप भय-का घर-बड़ा ।  
 बैठे वहाँ-पर एक से ही पाँच नल निषधेश ये  
 यी एक-सी प्राकृति सभी की एक-से ही वेश ये ।  
 ये पलक सबके साथ लगते धक्क हिसते साथ ये  
 कोदण्ड-मी तब एक-से ही से रहे सब हाथ ये ।  
 मुख भी सभी के एक-ही से भाव-करते व्यक्त ये  
 यह देख भीता-केशिनी के पद-हुए निषशक्त ये ।  
 हे हे सखी ! ये चार भागे, बिछ-रहे जो मण्डप हैं,  
 उन पर सभी निषधेश बैठे इस तरह नल पञ्च-हैं ।  
 हैं कौन से कल्पित निषधपति, धीर प्राकृत-कौन है,  
 सखि ! इस विषय-में देख भी कुछ कह न सकसे मौन हैं ।  
 देखो वहुन इनमें न अब तिस-मात्र अन्तर पा रहा  
 सहसा तभी 'नल मैं धरे, नल मैं' सभी ने यह-कहा ।

सुमकर डरी भैमी कमल-मुख-अकणितमा पीली हुई,  
 उसकी मुगी-सी भाँस अपने घाप-ही गोली-हुई।  
 जयमास वाला पाणि था कुछ उठ-रहा माना सिये  
 अपसक-हुई दाए भर वरद-देवीएव-को धारण-किये—  
 पाँचों तमां का देखती प्रतिमा बनी सी रह गई  
 मन कह रहा हे देव ! यह क्या आ-गई विपदा-नई।  
 कहने लगी फिर बेशिनी ये आ-गये धाम्यो ! छनी  
 अप्राप्य तुमको समझकर ही आस इन सब ने बसी।  
 आभेन्मगत सी भीमजा का वंस वह कहती रही  
 सखि ! प्रण-परीक्षण-काल आ-पहुँचा तुम्हारा क्या यही।  
 अब हम विपन्ना क्या करें मति कुछ न देती काम है  
 कहते सभी पर 'धीर होना विपन्-में अभिराम है।  
 होत न देती देव-गण ने पूण जब निज कामना  
 फिर दूत-द्वारा सुन-शुके होंगे परम अवमानना।  
 तो कर रहे यह विघ्न वे ही हा गये अब कुछ है  
 दुष्कृत्य ऐसे हाय ! क्या देवत्व के न बिस्म है।  
 मुझको हठायें वव मेरे मार्ग-मे यदि शक्ति हो  
 वे देसलें आकर सभी भीमात्मजा पतिभक्ति का।  
 यह घोषणा आकाश में आ प्रयम ही तुम कर चुकी  
 तजकर दिगीशों को घरी। निषेध को ही बर-बुकी।  
 आश्चय क्या तब आज सुर-गण विघ्न यदि कुछ आ-करें  
 वे देगमे साहस तुम्हारा रूप नस-का आ-भरें।  
 यह देगकर मण्डप-तले भटना महा बिस्मय सभी  
 भय-भूषण रेखा निज-जना के मुगों-पर लौड़ी गई।  
 पर विपदप्रस्ता भीमजा-को दग वे प्रमुदित हुए  
 जो मृपति कुछ गण-भूष उगने दग अम्बीकृत निम्ने।  
 भी नमननी-नी फँस गाग मभा में महमा गई  
 नृप भीम भी आकुल-हुए, यह विपन् देग गई-गई।

सब रुक-गये आदिप, चिन्ता और व्याकुलता बढ़ी,  
दर्शक-मुखों पर भी स्वयं विस्मय-भरी रेखा-बढ़ी ।  
अवलोकने पाँचों मलों को सब उठे निब स्थान से ।  
कुछ मुख बढ़े ये बात कहने-के लिये पर-कान से ।  
बढ़कर गये नृप-भोग दमयन्ती सुना शिन्ता जहाँ  
नल पाँच ये उठे-हुए, उन पाँच मञ्जुषों-पर बहाँ ।  
प्रति-भक्ति-सा अवलोक नृप-का केशिनी कहने लगी  
नृप ध्यान-से सुनते रहे पर, वृष्टि थी मानों ठगी ।  
हे देव ! हम धायी यहाँ सहचरी-को घाने लिये  
पोछे-रहे सुपात अस्वीकृत सभी इसने किये ।  
बरलाय जब निपथेन-का जयमास निज कर-में गहीं  
तब देखकर नल पाँच को हम विस्मिता-मोहा रही ।  
यम बरगु है इनमें तथा बीठे धनस नाकेरु है  
कुछ भी न जान पड़ा कि हममें कौन से निपथेन है ।  
हैं चार वे ही देव निदधय समस्त यह हमने लिया  
यों स्वागमन का पूर्व-ही सन्देश उन सब ने दिया ।  
सुनकर वचन नृप वदन से "हूँ" स्वरित ही निकला तभी  
अवसेप-भी वृत्तान्त तब उस विश ने ममभ्रा सभा ।  
हैं देव यदि ये तो भरे ! क्या-ओष है चिन्ता तबो  
इनकी कर स्तुति प्रेम-से यथा-सहित इनको भजो ।  
सुर-सौम्य तो सम्मान के ही सर्वदा भूले रहें  
करते उन्हें ये सजग, जो इनके-लिए रुखे रहें ।  
हाँ, भूस होना आदि-से ही मानवों का धर्म है  
इनके लिए तुमसे कहीं कुछ हो गया पुण्य-मै है ।  
स प्रेम तुम इससे करो तमये ! दामा-याचन अपनी  
ये तुष्ट होंगे तो विगत होंगे सकल सम्ताप भी ।  
मैं भी कबोना यत्न जिससे देव पीछ प्रमन्न हो  
अपनी स्वयंवर दीपना मानन्द जो सम्पन्न हो ।



ह दीन रक्षक ! छोड़कर तुमको पुकारूँ मैं जिसे ।  
 ये व्यर्थ ही घपमान घपना सुर समझ बैठे जिसे ।  
 मैंने किया वह धर्म-पालन और वा समुचित यही  
 सकल्प तोड़ेगी न निज सहमी-हुई भैमी बही ।  
 हे नाथ ! दो सम्मति इन्हें जो मार्ग मेरे से हटें  
 य-देव होकर धर्म-पथ-में जो न बिध्न-बने-डटें ।  
 मेरे न सज्जे भाव क्या-सुम जानते-हा हे प्रभो ।  
 या भीति तुम भी दब-गए-से मानत-हो ह प्रभो !  
 धाम नहीं अब तक विभो ! क्या-है दयामयता यही  
 कस कहूँ मैं नाम प्रभु-का है दयासागर सही ।  
 सकट-विमोचन । शीघ्र-ही आभो विराजे-हा कहाँ  
 है कौन ! अबवा ठौर वह प्रभु ! तुम नहीं रहते जहाँ ।  
 यदि आ न सकटे तो बुधा-ही जगत-पालक नाम है  
 ह ईश ! सत्वर रोक दो जो हो-रहा दुष्काम है ।  
 धी जिस-समय आ-कर रही भैमी विनय भगवान-से  
 सुर-सख की स्तुति-मग्न ये झू-सुर उबर घति-ध्यान से  
 पर, हृदय फिर भी वा बहो अब भीमबा रोने लगी  
 उसक हृगो की कासिमा सहसा अस्पृष्ट होने लगी ।  
 घात सदा अवतार बम तुम नाथ ! दीनों-के लिए,  
 बिभूत तुम्ही-हो एक आश्रय नाथ ! हीना के लिए ।  
 फिर कीनस ! अपराध ऐसे, धोरछर मैंने किए,  
 करत न करणा आज जो करणानिधे ! मेरे लिए ।  
 राधमुच जिसाकी-क पिता-का कार्य क्या-यह ही कहो  
 अवला-मुता रोया-करे, निदिपन्त तुम बटे-रहो ।  
 पागण्ड यदि यह है सभी, तो लोभ तुम-भी छोड़-दो,  
 असौख्य-सं घपना पुराना, आज नाता तोड़ दो ।  
 होगा सिखा जो भाग्य-में, भोगूँ सहर्ष सभी बही,  
 पर, जान रेगा बिद्व, रक्षक है न अब उसका बही ।

वह मीमंसा-का प्राचन-स्वर अकस्मात् बदल गया  
 कैप-सी कनकवल्ली गई वल सुतन-में आया नया ।  
 तन-सा गया कृद्ध भास अमृताधर मरुप हिमने लगा  
 हो वायु से कम्पित सुमन-अम्बूष ज्यो जिसने लगा ।  
 सित मोतिर्मो-से दाँत सहसा अघर ऊपर आ-गये  
 ज्यों रक्त-मणि-पर स्वेस-मग सुपमा-सहित हों छानाये ।  
 आवेश आया और द्वासें उज्जतर होने-सर्गों  
 अवभाषिता उसकी सभी बहु वीर्य कोमलता मगी ।  
 हृग-में अदृशिमा-झा-गई अगार से जसने लग  
 लक्षण प्रगट ये क्रोध-के कारुण्य के डलने-लगे ।  
 रवि-की प्रसरता-में सभी शशि-सैत्य परिणत-हो गया  
 उस नागिनी-के सम हुई जिसका सु-चन मणि-सो गया ।  
 अञ्जल जिसक-सा था गया जाना नहीं इसने उसे  
 निज वेश-भूषा ध्यान रहता क्रोध-में कब है किसे ।  
 उस-कास केधों-भीष उसका रक्त-मुक्त यो चमकता,  
 रवि प्रात का ज्यों स्याम-चन-के पटल-में हो दमकता ।  
 निज बोन में हंसी-मदृष्ट जो अमृत पहले बोलती,  
 अब भी बही चम-चोप सी, अपभीत होकर बोलती ।  
 वह ईश की थी प्रेरणा सद्धर्म की या शक्ति थी  
 आर्यावसा-का क्रोध था सु-पुनीत या पति भक्ति थी ।  
 हा, हा, न कोई लोक-में क्या-आज है ऐसा-बन्नी,  
 होकर कृपण-गामी यही, ये देव जो भाय छली ।  
 जो दण्ड इसका ये इन्हें ये फिर न जो ऐसा-करें,  
 कामुक हुए तनया किसी-की, फिर न जो ऐसे-हुरें ।  
 सुनत न ये, मैं प्रार्थना हूँ कर चुकी इनकी सभी,  
 कोई किसी थी किन्तु, ये-भी जान आयेगे अभी ।  
 रे पातकी । देवी अहस्या-सी, तुम्हीं ने अष्ट की  
 कितनी न जाने, साध्वियों-की साधुता है मष्ट की ।

हूँ नीन रत्नाक ! छोड़कर तुमको पुकारूँ मैं किसे !  
 ये ध्येय ही अपमान अपना सुर समझ बैठे किसे ।  
 मैंने किया वह धर्म-पासन धीर या समुचित यही  
 सकल्य सोड़ेगी न निज सहयी-हुई भैमी नहीं ।  
 हे नाथ ! दो सम्मति हूँ जो मार्ग मेरे स हटें  
 ये-देव होकर धर्म-यथ-में जो न विष्णु-बने-उटें ।  
 मेरे न मज्जे भाव क्या-तुम जानते-हा हे प्रभो !  
 या मोति तुम भी देव-गण-से जानते-हो हूँ प्रभा !  
 भाये नहीं अब तक विभो ! क्या-हूँ वयामयता यही  
 कसे कहूँ मैं नाम प्रभु-का है वयासागर सही ।  
 संकट-विमोचन ! सीध-ही आघो विराजे-हो वहाँ  
 है कीन ! अबधा ठीर कह प्रभु ! तुम नहीं रहते जहाँ ।  
 यदि आ न सकत तो वृथा-ही जगन-गासक नाम है  
 हे ईश ! सत्वर रोक दो जो हो-रहा दुष्काम है ।  
 धी जिस-समय या-कर रही भभी बिनय भगवान-से  
 सुर-सभ की स्तुति-मम्म ये सू-सुर उभर अति-ध्यान से  
 पर हृदय फिर भी था बहो अब भीमजा राने भभी  
 उसक हुगो की कालिमा सहसा अरण होने भगी ।  
 आत सग अबतार बन तुम नाथ ! दीनों-के लिए,  
 बिभ्रुत तुम्हीं-हो एक आश्रय नाथ ! हीनों के लिए ।  
 फिर बौनस ! अपराध ऐसे पोरतर मैंने किए,  
 करत न करणा आज जा, करणानिभे ! मेरे लिए ।  
 सधमुष त्रिसोकी-न पिता-का नाथ क्या-यह ही कहो  
 अबसा-सुता रोया-बरे, निश्चिन्त तुम बैठे-रहो ।  
 पागण्ड यदि यह है सभी, तो सोम तुम भी छोड़-दो,  
 भसोक्ष-स अपना पुराना, आज माता तोड़ दो ।  
 हागा सिता जो माम्य-में, भोगूँ सहर्ष सभी बही,  
 पर, जान रगा विश्व, रत्नाक है न अब ससका नहीं ।

वह भीमका-का प्रार्थना-स्वर धकस्मात् बजल गया  
 कप-सी कमकवस्तू गई बस मुन-में आया नया ।  
 तन-सा गया कुछ भाल धमृतावर मध्य हिमने लगा  
 ही वायु से कम्पित सुमन-बभ्रुक ज्यो बिलने लगा ।  
 तिस मोतियों-से दाँत सहसा धवर उमर आ-गये  
 ज्यों रक्त-मणि-पर स्नेह-नग सुपमा-महित हा छा-गये ।  
 आवेष्ट आया और स्वास उच्छ्वस होने-ज्यों  
 धबधोषिता उसकी सभी वह छीछ कोमलता भरी ।  
 हृग-में अक्षिमा-झा-गई अमार से जमने मने  
 मकरा प्रगट थे क्रोध-के काव्य के दलने-मने ।  
 रवि-की प्रलरता-में सभी क्षति-शैत्य परिगत-हो गया  
 उस नागिनी-के सम हुई जिमका सु-वन मणि-जो गया ।  
 अन्धम किसक-सा पा गया जाना नहीं इसने उस,  
 निज बेम-सूपा ध्यान रहता क्रोध-में कब है किने ।  
 उस-काल केद्यो-वीथ उसका रक्त-मुख यों बमकता,  
 रवि प्रात का ज्यों स्वाम-जन-के पटल-में हो बमकता ।  
 निज बोल में हसी-सदृश जो धमृत पहले धोमती  
 अब की बही धन-बोष छी अपमीत होकर बोलती ।  
 वह ईश की थी प्रेरणा सद्धर्म की या शक्ति थी,  
 आर्प्यावसा-का क्रोध था, सु-पुनीत या पति मक्ति थी ।  
 हा, हा, न कोई लोक-में क्या-भाव है एमा-वसी  
 होकर कृप-यामी यहाँ, ये देव जो आय छमी ।  
 जो वषट् इसका दे इन्हें, ये फिर न जो ऐसा-करें,  
 कामुक - हुए तनया किसी-की फिर न जो ऐव-हरे ।  
 सुनते न ये, मैं प्रार्थना हूँ कर चुकी इनकी उनी  
 कोई मिथी थी किन्तु, ये-भी जान जानें छनी ।  
 रे पातकी ! देवी अहम्पा-सी, तुम्हीं ने अष्ट न  
 कितनी न जाने, साधियों-की आहुति है अष्ट की ।

कब देखकर मौन्दर्य तुम निज-पर नियन्त्रण रख-सके  
 है न्येद अब तक भी न जो तुम हाथ । छल पक्ष-से बने ।  
 ठग-कर निरीह दधीचि को फिर भी नहीं सज्जित हुए,  
 जो आज भोमी-यासिका छलमार्थ यों सज्जित-हुए ।  
 साक्षी तुम्हारी-दे रहे सत नत्र ये उस रात-की  
 फिर भी न अपनी प्रवृत्ति हा । तुम सज-मके उत्पात की ।  
 ये धूर यदि यम ! तो न क्यों तुम धूर-सम्मुख बट-मके  
 कैसे तुम्हारे महिष-के सब मृङ्ग रण-में बट-सके ।  
 भागे बचाकर प्राण तब अब धूर-धनकर हो-बटे  
 है सामने अबला धन तुम आज तनकर हो बटे ।  
 ह धनस ! क्या-तुम मूसल-हो जब गये हिम मिरि तसे  
 शिव-को मजग करने बकुलर जन स्वयं पर ही जसे ।  
 यह सर्वशुक्ला आज भी उमका जबान्त प्रमाण है  
 रे ! धूम-का होना तुम्हारे दीप-की पहचान है ।  
 हे बहुरा ! तुमको याद होगा जब गये थे तुम छले  
 यह पाग उसटा पड़ गया था तब तुम्हारे ही गले ।  
 स्मिरता तुम्हारी आज की थी उस-समय रण-में कहाँ  
 प्राणी न अब भी आज तुमको पापिया । धैठे यहाँ ।  
 मैं प्राण सजती हूँ अभी पर बचन सज-सकती नहीं  
 भज एक-वृत्ति अति-शीन गुर फिर भूल भज सकती नहीं ।  
 पीछ-मर्गेगी किन्तु पहले दाप मैं-भूँगी तुम्हें  
 काली-ममी स जो तुम्हारे मुख पुते दीपें-हमें ।  
 तुम हो पिता मैं हूँ सुता जाना सना मैंने यही  
 हा हा पिता के भी पिता माना सदा मैंने यही ।  
 तुम आज यों अपनी सुता-स ब्याह करना चाहते  
 घर पर बपट का रूप भुम्भवा आज हरना चाहते ।  
 यदि तुम गपस नम हुए तो बिना यह जम-जायगा  
 धमरस भी धमरो । तुम्हारा द्वाग-से गत जायगा ।

निपधेय को सब धन-के यदि कष्ट-में मासा-पड़े  
 तो, मरम हो जाये धनम वह छार बन नम-में उड़े ।  
 नम-में न रवि शशि रह सकें वह छार जगने-से सभी  
 सधुता-महता विगत-हो छा-जाय ऐसा धन धमी ।  
 जब पिता ही पति-बन गये तब क्या-धरा रह पायगी  
 हा हा पुनीता भूमि कसे ! पाप यह सह-पायगी ।  
 ब्रह्माण्ड जल-कर राख होगा सोख सब उतटे बहें  
 मर जाय पर, यह वसुधता क्या-हम मनुष्य-होकर सहें ।  
 हे राम ! यह दुष्कृत्य मुझसे ही कराना वा तुम्हें  
 धन-भार सुद मित्र शीश-पर मुझसे बराना वा तुम्हें ।  
 मैं क्या-करूँ जगदीश ! यदि इच्छा तुम्हारी है यही  
 पर समझो, कोई तुम्हारा नाम धन लेगा नहीं ।  
 कहती हुई मैमी वरणमासा लिए आगे-बकी,  
 भानों दुमुक्ति सिंहनी, पा भोज्य निज गृह-से कदी ।  
 हिमने सगे फल लेप के कम्पायमान धरा हुई  
 बिधि, विष्णु, और महेश को कुछ भकवनीय त्वरा-हुई ।  
 दिग्गज कैप रवि स्तम्भ ये वशक-हुए भयभीत-से,  
 कल्याण उन सब को जैसा अपना, सती-की जीत-से ।  
 बासी तभी उचने गले में एक नल के सब ग्रहा—  
 देखा तभी ने उस समय वा एक वह कौतुक-ग्रहा ।  
 बर-मास-से शोभित-हुए बैठे नियमपति नल वही,  
 चारों अमर बैठे प्रकृत है वह अनोखा छल कहीं ।  
 सब ने मुखा-से जय सती, जय-जय-सती निकला तभी  
 भवलोके सुर-ज्योति-को होकर विमोहित जन-सभी ।  
 उठ मध-मे देवन्द्र ने कर भीमजा-धिर-पर धरा,  
 बोले मृहाग रहे सते ! अदुष्ण और हरा-भरा ।  
 उज्ज्वल स्व-मृत तुमने बिना, निज शक्ति जियभाकर नयी,  
 सौ बार तुमको धन ! पति भरते ! धुमे ! तेजोमयी ।

बस प्राप्त-कर तुम-सी सती-का टिक-रहा ससार है  
 लक्षि भूम भू, मसत्र-गण का भी यही आधार-है ।  
 है धन्य धर्म्यावस्त तुमसी प्राप्त-कर सबसा-सुता  
 निज सिर म क्यों ठँका-करेगा गर्व-से तेरा पिता ।  
 तुम काय में भद्र ! कभी सुर बिष्म करतें हैं नहीं  
 सोयी-हुई सी शक्ति-जो हम सबग घा-करतें कही ।  
 जिस दिन सुना हमने कि तुम निपथेदा को हो बर चुकी  
 परिणत न था वह कुर्य-में सवस्य तो पर बर चुकी ।  
 इच्छा-जगी तब-देखने की, इस तुम्हारी शक्ति-को,  
 प्रादुर्भूत समझें बिद्व-नारी जो इसी पति भक्ति को ।  
 प्रादुर्भूत हो जब तिमिर तब प्रादुर्भूत यह धालोक हो  
 निज व्रत-सभी पूरा करें, पुन-वैभवं-हो, या शोक-हो ।  
 जा भाग तुम दिव्यता चुकी उस-पर सभी चलती-रहें,  
 इन शक्ति-से वाधा भयानक बिद्व-की जलती-रहें ।  
 वह दिव्य सावित्री प्रदर्शित पथ पुराना हो जसा  
 अब इसलिए भद्र ! तुम्हें-हमने-यहाँ-फिर आ-छता ।  
 तुमने किया वह पथ मया तुम-ही रमणियों-में रमा  
 कन्द-वचन जो तुमने कहे वे कर-चुके हम सब क्षमा ।  
 अब माँगतो तुम और कुछ, देना तुम्हें हम चाहते  
 जय जय सती जय जय सती जय जय सुते जय जय सुते !  
 तेजोमयी वह शक्ति थी कमनीय देवों-की प्रभा,  
 अवलोकती जिसको रही चित्राकिता-सी सब ममा ।  
 जनजान-में ही सब समासद भुग्य-हो अब वह-उठे  
 जय जय धमर, जय जय धमर ! जय-जय-सती जय सुदते !  
 पादस-जदी मर्याद-तज गया वह रही हा बेग-ये  
 थी भरसना भेमी लड़ी स्पों-दे-रही आवेग-से ।  
 अब बाढ़ थी वह घाम्त, सरिता बस-में फिर आ-गई  
 फिर से मनोरम-मृदुलता, उसके वन-पर छा-गई ।

“जय देव जय देवेन्द्र हे, जय जय पिता करुणा-निधे !  
जय सोक पातक-दीन रक्षक ! सौख्य प्रद ! पावन विधे !  
बहती-हुई भेमी झुकी कम-से सुरों-के सामने  
पर, छू न पाई अरुण पल्लवे-ही मगे सुर-धामने ।  
फिर सठ नियमपति भी सुरों-के पदों-में कम से मगे  
बैठे हुए निज ठौर दर्शक अक्षित ये भ्रम-स पगे ।  
मूँचा क्रिया फिर देर तक जय देव जय करुणा निधे !  
जय सोक पातक ! दीन रक्षक ! सौख्य प्रद ! पावन विधे !  
“जब सामने हैं देव तो सब याचना निरसेप है  
मानन्द मन-में भर रहा प्रभु-का मनोहर वेग है ।  
आदेश जब प्रभु दे रहे तो माँगना ही इष्ट है  
हृदय ! है यह प्रार्थना ऐसा परीक्षण किसष्ट है ।  
है पारलर यह बुझ है प्रभु ! सौख्य में फिर हो नहीं  
कोई सती ऐसी विधा-में फिर न पड़ पाय कहीं ।  
सिद्धर मेरी माँग-का प्रभु, मृत्यु-तक साथी रहे  
ये शब्द उमने मकुचित स्वर-में तनिक रुक कर कहे ।  
सुर-सभ की बाणी तभी थी ‘एवमस्तु’ वहाँ हुई  
कुछ काल पहले की उवासी, समा की सहसा सुई ।  
यदि धर्म पर देखी, तुम्हारे आक्रमण कोई करे,  
तो देखने-भर-से तुम्हारे है सती ! वह अस-भरे ।  
जब तक रहेंगे सूर्य यधि तब तक भ्रमर हो यह क्या  
जिससे सदा सतियाँ करेंगी बिगत अपनी-मुर्म्यया ।  
यह सोक है भद्रे ! तुम्हारे गीत यध के गायगा  
पथ भ्रष्ट मारी-गए तुम्हें, कर याद भव-जस पायगा ।  
कम-से भ्रमर-गए ने कहा—फिर भीम-भूप भी धा-गये  
करके प्रणति भगवत-मयी उनसे शुभाधिप पा-गये ।  
फिर देखते ही देखते, सब देव धन्तर्पति के,  
होने मगे मयल सभी करते सती-पुष्ट गान थे ।



तब चौककर देवेन्द्र बोले, मित्र ! तुम क्या कह गये, पवित्रेकिता के सिन्धु-में तुम मूढ़ होकर बह गये । हम ये गये केवल वहाँ उसके परीक्षण-के लिए, हित सोचकर सब सोक का, सम्भार-दर्शन के लिए । वह है सती साध्वी परम हम देख सब कुछ ही चुके होकर विवज भीमात्मजा के सामने हम सब झुके । सुख पूर्ण हो उसको यही है धाज केवल-कामना हुस्साध्य उसके सुपथ से है उस सती को टालना । छोड़ो मत यह व्यर्थ का पचड़ा पत्तो वापस वत्तो समुचित न है यह बीर ! जो तुम सुमन मदन-पर तुमो । उसके सुपथ को हो बढ़ायेगा उसे जो कष्ट हो प्रबलोक कर उस मिहनी को स्वयं ही कुछ नष्ट हा । रखना कनक को ताप-में गुरु-दान करता है यवा मृद निरुपमी को ताप भी यद्य मान से भरता तपा । रे ! सामने उसके न कुछ भी छप चलने पायगा यदि क्रोध उसको धा-गया ब्रह्माण्ड ही जल जायगा ।

“मैं कर चुका प्रण अलग वह कुछ समय निज पति-से रहे पूरी प्रतिज्ञा अब बर्हें यों बचन तब कलि न कहे । देना न कुछ भी कल्लि उसको दुर, जिसमें दोष है, नम गेमते हैं छूट, बस इससे मुझे सन्तोष है । वह ध्येष्ठ गेही है प्रभो ! मैं जानता हूँ यह सभी आदर्श, सौम्य सु-सम्य है मैं मानता हूँ यह सभी । बाग्यव-विरोध परन्तु है, दुरूपाम ऐसा सोच-जें करके पतन जो उन्नतों-को भी असाता-शोक दें । ऐसा बर्होगा यत्न मैं कुछ समय तो लग-जायगा पर धन वियोगी कुछ समय तक वह युगल दुःख पायगा ।

नल-बन्धु-पुष्कर का बनूंगा, मित्र में जाकर वहाँ,  
तब देव के अपमान का फल दूँ, समय पाकर जहाँ ।  
कुछ समय-में सुस्संग मेरा बीज वह बो-जायगा  
करमा न जो मुझको पड़े सब कुछ स्वयं-हो जायगा ।  
जाना न फिर मुझको पड़ेगा भीमया-के सामने  
देवेन्द्र फिर आते हुए-कवि-का लगे कर धामने ।

बहुत प्रकार उसे समझाया किन्तु नहीं वह माना  
दुष्ट-प्रकृति यह कभी न माने जब विदुषों ने जाना ।  
कहा-उसे यों देख सती-को बस-भी निर्बल होगा,  
विगड़ न उसका सके कहीं कुछ, यक्ष अत्युज्ज्वल होगा ।

वचन यों कह देव-गाय सभी  
स्व-पथ-में कलि भी चलते बने  
प्रकृति है यह दुष्ट-समूह-की,  
सुपथ-में वह धूम बने-तने ।

## अष्टम सर्ग

धन्य हो कुण्डिनपुरी तुम धन्य  
 सुमितल पर हो प्रथम तुम गण्य ।  
 भीम नृप का प्राप्त कर तुम स्नेह  
 भर रहीं धन धान्य सं निज गेह ।  
 धीर देखर रत्न लोक ललाम—  
 कर चुकी हो अमर अपना नाम ।  
 आज तुम क्यों सज रही हो पूर्ण  
 दण्ड कर अमरावती का चूर्ण ।  
 द्वार बल्ली जन्य हैं सब ठीर  
 दीखते सब पौर हर्ष विमोर ।  
 स्वागतार्थ समागतों के द्वार—  
 समुत्सुक हैं पहन बन्धनवार ।  
 रैम बिरगे धार तन पर वस्त्र—  
 धूमती जन भीड़ क्यों सर्वत्र ।  
 ओह समझे युगल धारा भिन्न—  
 यह रहीं हो जाय आज अभिन ।  
 द उम्हें सम मह गमन निष्काम,  
 बनोगी तुम स्वयं सगम धाम ।  
 इसलिये ही तो तुम्हें यह हर्ष  
 सोख्य दाता है स्वयं उम्हर्ष ।

उधर वे गज पर भड़े निपयेन—  
 धा गहे अभिराम धर सर बेरा ।

योगती है बल - पर जयमास,  
 दोष्ट रवि-सम काम्ति से है भास ।  
 कर रहा विष्णु-भुक्त सुभामय वृष्टि,  
 धीर निज पर नेत्र-लज्जन-सृष्टि ।  
 मुकुट को धारण किये है भास,  
 स्कन्ध - पर कवच, फहरते से व्यास ।  
 चमकमाते वस्त्र दिव्य सु-स्व  
 सग रहे वनेन्द्र से हैं रूप ।  
 अन्य गज पर धनुष हैं उपविष्ट,  
 दीन पड़ते सान्त सिष्ट वरिष्ठ ।  
 धीर भी भगणित नृपति के सग—  
 सन्धन - स्थित का रहे स-उमङ्ग ।  
 एक से है एक वेद्य विचित्र,  
 बल रहे बहु भाति के वादित्र ।  
 हैं सुसज्जित उन समी के भान,  
 हो रहा धवनोक उनका भान—  
 स्वग से था सुर-महित सुर राज—  
 बल रहे कुण्डिनपुरी - में भाज ।  
 धीर भगणित भागरिक हैं सग,  
 हा रहे धपित परस्पर भङ्ग ।  
 देवने को भुक्त पड़े मर मारि—  
 निपचपति वदनेन्दु की उमिहार ।  
 काम अपने वीच - ही में धाम—  
 चढ़ गढ़ घर की छतों - पर बाम ।  
 डामती जाजल पुर्गों में एक,  
 किन्तु प्राया घोघ घर को देख ।  
 बल पड़ी वह वर्णनोत्सुक दीढ़  
 एक-दुग धञ्जन रहित ही छोड़ ।

सस्त वसना ही नहीं कुछ मारि—  
 देखती थीं सोम कुछ कुछ द्वार ।  
 थीं करोसो में वधू घासीन  
 गम सलिल मानों बनी वे मीन ।  
 बने धातायन कमल के तुल्य—  
 धीरे उनमें कृपा दृग बहुमूल्य—  
 घूमते थे धामि महल स्वच्छन्द—  
 पी रहे नम-कर-मधु-मकरन्द ।  
 कह उठी अचमोक्त नम को एक  
 हे सखी ! यह रूप मुन्दर देख ।  
 हो पुनर्मन्त्र छा गया क्या काम  
 भीमजा के अथ धर नम नाम ।  
 छवि अनोखी नत्रहारी कान्ति  
 हो रहा अचमोक्त कर मम धात ।  
 भीमजा पूजा करे य पाद  
 मिल गया तप फल उसे अविबाध ।  
 क्यों न हम पर प्राण बगी बार  
 बिन्दु व सौम्य का यह मार ।  
 धन्य भभी सुदगी तुम धन्य  
 है बिय कितने न मूने पुण्य ।  
 ओ मिली सौम्य गुण की गणि  
 सपत्न अथ तप अत सुविद्याम्नास ।  
 माम्भ मल का भी न पर कुछ अस्प  
 पत्न न इगके पुण्य का भी स्वम्भ ।  
 प्राप्त जा अग-मुन्दरी प्रिय-नाम  
 बिन्दु-जाया लभ-गंगा की धाम ।  
 तब मे बन्ध तब मुग्ध तप  
 तब मे मन्त्र तब दिव्य धनूष ।

पा गये प्रिय कौमुदी को इन्दु,  
 मिल गया प्रियतम, नदी को सिन्धु ।  
 कर रहे जन सुख हो गुण - गाम  
 और दूग-से छवि-सुधा का पान ।  
 भाव्य अपने नृपति का भी धन्य,  
 हुआ सम्बन्धी कि यह नृप-गव्य ।  
 ठीक भैमी कर चुकी है ठीक,  
 सुर विमुख वह बर चुकी है ठीक ।  
 सुलभ था यह कब सुरों में रूप  
 और इनसा कौन ! सूप अनूप ।  
 नारियों में भीमका ज्या घेष्ठ,  
 मरों में निपघेषा है त्यों घेष्ठ ।  
 छिड़ रहा सर्वत्र यह आस्मान,  
 आ-गया तब तक नृपीक महाम् ।  
 दीप्त-सा था रमणियों से डार,  
 कर रही थीं, सुख मङ्गलधार ।  
 तिर-भरे जल-बट, लड़ी थीं नारि,  
 पुष्प-भाजा वृष्टि-रस मुकुमारि ।  
 उतर गज से बर घले नस ठौर,  
 धिर रहे बहूँ धोर उनके पौर ।  
 मधुर गीतों में सुधा सी घोस,  
 कर रही स्वागत, स्त्रियाँ भी सोस ।  
 बस पड़े घर को सिंहाङ्ग दास  
 उड़ रही मादक मधुर क्षुब्ध बास ।  
 मणि-पटित आसन निष्ठा बहुभूष्य  
 निपद्यपति बैठे, रमापति-सुख्य ।  
 बर-उठे द्विज साम का मधु-गान  
 उमर खादी तरणियों ने तान ।

अस्त वसना ही कही कुछ नारि—  
 देखती थी सोल कुछ कुछ द्वार ।  
 भी भरोखों में वधू धासीन,  
 नल समिम मानों बनी वे मीन ।  
 बसे वातायन कमल के सुख—  
 और उनमें कृष्ण दृग बहुसुख—  
 धूमते थे अलि सहस्र स्वच्छन्द—  
 पी रहे नम-कर-मधु-मकरन्द ।  
 कह उठी अवलोक नल को एक  
 हे सखी ! यह रूप सुन्दर देख ।  
 हो पुनर्मव धा गया क्या काम  
 भीमजा के धर्म घर नल नाम ।  
 छवि अनाली नेत्रहारी कान्ति  
 हा रहा अवलोक कर मन शाम्त ।  
 भीमजा पूजा करे ये पाद  
 मिस गया सप फल उसे अविद्या ।  
 क्यों न हम पर प्राण देगी बार  
 विद्वत् के सौम्य का यह तार ।  
 धर्म भीमी सुन्दरी तुम धर्म  
 हैं बिये कितने न तूने पुण्य ।  
 जो मिसी सौम्य भुग की राति  
 सफल अप तप व्रत सुविद्याम्यास ।  
 भाव्य नल का भी न पर कुछ अल्प  
 फल न इसके पुण्य का भी स्वल्प ।  
 प्राप्त जो जग-गुन्दरी प्रिय-नाम  
 बिद्वत् गोमा लभ-गुणा की धाम ।  
 एक मे बह एक गुण्य तप  
 एक न बह एक नित्य धर्म ।

पा गये प्रिय - कौमुदी को इन्दु,  
 मिल गया प्रियतम, नदी को सिन्धु ।  
 कर रहे जन मुग्ध हो गुण - गान  
 और दुःख-से खवि-सुखा का पान ।  
 भाग्य अपने नृपति का भी घन्य,  
 हुआ सम्बन्धी कि यह नृप-गण्य ।  
 ठीक भैमी कर चुकी है ठीक,  
 सुर-विमुख वह वर चुकी है ठीक ।  
 सुसभ था यह कब सुरों में रूप,  
 और श्रमसा कौन ! भूप धनूप ।  
 मारियों में भीमबा ज्यों खेळ,  
 नरों में निपयेख हैं त्यों खेळ ।  
 छिड़ रहा सर्वत्र यह आक्रमण,  
 आ-आता सब तक नृपीक महान् ।  
 दीप्त-सा था रमणियों से द्वार,  
 कर रहीं थीं सुखद मङ्गलधार ।  
 सिर-धरे जल-घट, लड़ी थीं नारि,  
 पुष्प-भाजा वृष्टि-रत सुकुमारि ।  
 उत्तर गज से बर लहे नस ठीर,  
 घिर रहे बटु और उनके पौर ।  
 मधुर गीतों में सुखा - सी घोस,  
 कर रहीं स्वागत, स्त्रियाँ भी खोस ।  
 बस पड़े वर को सिंहाङ्ग वास  
 उब रही भावक मधुर धुधि बास ।  
 मणि-जटित आसन बिछा बहुमुख्य  
 निपधपति बैठे रमापति-सुख्य ।  
 कर-उठे द्विज साम का मधु-गान,  
 उपर छोड़ी तरणियों ने तान ।



पुष्प विकसित को यथा सज्जकार—  
अर्घ्य पूजा के सयत्न सँभार—  
और पहुँचाकर निकट सूर-मूर्ति,  
समझता अपने सुकृत् की पूर्ति ।  
त्यों सुसज्जित भीमजा का हाथ—  
पकड़कर बहु सेविकायें साथ—  
कर गईं वर के निकट आसीन,  
चन्द्रिका थी स्वयं जिससे हीन ।  
किया फिर वर का वध मे मान  
पाद्य आचमनीय अर्घ्य प्रदान ।  
और वे मधु-पर्क प्राशन-हेतु—  
किया अथ तारंग ममपित सेतु ।  
सुर वराचन पूर्ण कर उस काल  
प्रज्वलित की द्विजों ने मक्ष ज्वाल ।  
वर बधू देते उसे प्रिय हृष्य  
प्रज्वलित था अनल था प्रिय द्रव्य ।  
उठ रहा उमस मुवासित भूम  
बिर गया नभ में जल सा भूम ।  
कर गया पर वह बधू दग लाम—  
और स्वन्ति मुखरी का भास ।  
हो उठे कृतुमाधराग कुछ प्लान  
दमकते धारक हाकर कानि ।  
था प्रगट मुग पर सुन्रध आरुण्य,  
या द्रवित वह ताप मे ताण्य ।  
अम हुषा भाकों मुखर में उवास—  
रहा हो प्रतिबिम्ब अपना दाल ।  
दुगों न पञ्चन बहा उम काल  
(यहाँ रहे हम अतिवृत्त जल माधराग)

रोमते उसको परन्तु कपोल  
 छिटक भाय बदन पर कुछ ओल ।  
 मृग-सहित प्रकटित हुधा निधिनाथ  
 पकड़कर द्विज ने बधू का हाथ—  
 दिया अम्बुस्थान वर क संग  
 स्फुरित हात युगल के धूम अङ्ग ।  
 घूमते थे अनल के सब ओर—  
 वर बधू मिल भाय हर्ष विमोर ।  
 पकड़ते जब वर, बधू का पाणि  
 खेलती सब स्वमुख पर मुस्कान ।  
 और होते हृष्ट तन के रोम  
 चौड़ा सा रक्त में रस सोम ।  
 उधर भभी-पाणि-पल्लव खिल—  
 हृष से हाता न थी उद्विग्न ।  
 फिर हुधा आयुष्य साजा होम  
 इव थे परितुष्ट बिहँसा व्योम ।  
 खिल रहे थे पुष्प से वृक्ष  
 देखकर मृग-धनु से एकत्र ।  
 प्रण किये प्रेमाक्षेप मृग न ओर,  
 हविभूक साक्षी, अमर थे और ।  
 मुदित वर ने प्रिया कक्षों बीच—  
 वो अहा मांगत्य रोली सीब ।  
 अदण का सा था उदय तम धार,  
 प्रेम का या अम्युदय गम्भीर ।  
 पाणि-योद्धन हो गया यों पूण  
 सब उठे मृग और सब भी दूण ।  
 दिया फिर सर्वर्न, उन्हें सह-मान—  
 द्रव्य, मणि माणिक्य आदि प्रदान ।

आ-गये सब तक विहँसते भीम,  
 साथ में से देय द्रव्य घसीम ।  
 मुवित मम हो पूर्णत नि-स्वार्थ,  
 दे दिया वह धर्म सब तमयार्थ ।  
 धीर दे सब धागर्तों को माम,  
 मानकर आमार कर गुण-गाम—  
 धी बिदा भय सब, करें विधाम  
 पूरा यह सब की कृपा से काम ।  
 पाणि-मस्त्व प्रयसी का धाम—  
 कर बल बेठीं जहाँ वह काम ।  
 उठी स्वागत हनु वे सबिनोद  
 बह रहा अन्त-पुरी में मोद ।  
 उधर भक्षण-पान में सब व्यस्त—  
 हो रहे वे भूप अभिसापास्त ।  
 इधर सुन अपने सुयश के स्तोत्र  
 पी-रहे पीयूष-नद भर-भोज ।  
 कर रहीं धीं तरणियाँ कस केसि  
 भर रहीं धीं रमणियाँ रंग रैसि ।  
 हसनी का देग फँसा जान,  
 फँस गया री ! डीठ घाप मराम ।”  
 ‘राजहंसी हंस के धी योम्य  
 पा लिया युग ने युगम का भोम्य ।’  
 या विहँसती पोहसी धी पाँति—  
 सिद्ध धी प्रदोत्तरी इस भाँति ।  
 बस रहीं मन-भोन्कारी बात,  
 कब रही पर, मधु क्षणों में रात ।

दिवस अग्रिम भीम ने कर प्यार ।

कबान्तम से वत्स । दिन दो चार—

घौर ठहरो समझ कर निज गेह

प्राप्त हो दमनादिकों का स्नेह ।

तात ! जाना था यद्यपि अनिवार्य

पूज्य का पर वचन शिरभाषार्य ।'

मान आग्रह रुक गये निषेध

घौर सब आगत गये निज देश ।

योम्य सुन्दर हैं गुणज धमत्त

नृपति नम क धनुज पुष्कर दत्त ।

विदर्भाधिप ने उचित ही मान

योम्य अपनी मातृजा के जान ।

कुमुदनी सा सुखद उसका नाम

बहन के ही थी सदा गुण-धाम ।

कर दिया युग का पवित्र विवाह,

हो गये निश्चिन्त तब नरनाह ।

विदित भैमी केशिनी का प्रेम,

साथ रहने में युगम का क्षेम—

जानकर नृप भीम ने स-उमङ्ग,

कण नामक नम सखा के संग—

किया विदुषी का विवाह पुनीत,

प्राप्त कर समय, सिद्ध से ये गीत ।

ठहर कर कुछ दिन वहाँ निषेध—

जसे, सानुज सैन्य-युत निज-देश ।

गुरु जनों को पूर्ण दे सत्कार,

प्राप्त उनसे स्वस्तियुत कर प्यार ।

इधर आसी सहित हाकर खिन्न,  
 भीमजा होमे सगी गृह - भिन्न ।  
 वदा उसको वे रही थी अम्ब  
 मिला गया सतिका ! सुखद अवलम्ब ।  
 हो रहा पर शोक व्याकुल चित्त  
 था रहा है गोद का जो चित्त ।  
 द्वार पर सज्जित लड़ा था याम  
 भीमजा बैठे उसी-में भ्रान्त ।  
 बुट रहा था मन अनयोपाम  
 दुट रहा था सकल परिव्रजण हाय !  
 पर दमन दम दान्त ने व तोष  
 शान्त भगिनी का किया आश्लेष ।  
 के अहा वह विजय-सदमी साथ  
 आ-गये निज प्रान्त में नरनाथ ।  
 उड रहे जय जय विजय के केतु  
 थी समुत्सुक प्रजा दर्शन-हेतु ।  
 सुन चुक शुभ वृत्त यह सब पूर्व  
 भेंट भूपति को मिली कि धर्षण ।  
 मान उसको प्रतिपदा का चन्द्र—  
 देखते जन निनिमेष अतन्द्र ।  
 राजमहिषी सहित कर मृग-मान  
 किया सब ने प्रगट प्रम महान् ।  
 राजमाता का अहा - वह मोद  
 भर गई थी आज दूनी गोद ।  
 कर रहीं थी भारती, दुरा दूर  
 द्रव्य दीना में बैठा भरपूर ।  
 लिया वधुधों को, दिये धात्रीय—  
 अपस हो सीमाग्य इनका ईश ।

राज्य में उत्सव हुए सर्वत्र  
 हो रहे कल्याणकारो सब ।  
 वृद्ध निशाम मरेन्द्र-मुञ्ज-विश्रान्त—  
 घर भुके फिर राज्य भार नितान्त ।  
 सौंपकर नृप का उन्हीं को भार  
 सब प्रमात्य हुए प्रसन्न अपार ।  
 वे रही थी भूमि अति धन धान्य  
 पुज रहे सर्वत्र ही मय माय ।  
 मुग्ध थे जन देख भूप धरित्र  
 समझते समको सभी निज मित्र ।  
 मेदिनी का मौख्य भैमी-सग—  
 छूटते नृप प्रेम का था रग ।  
 सखिब मारी मित्र का सब काम—  
 कर रहीं थी भीमचा मिष्काम ।  
 ये मुचित-सारे प्रजा परिवार  
 हो रहे सर्वत्र भंगलधार ।  
 भा - रहे थे गगन में आदित्य  
 विभव भव का वे नियम से मित्य—  
 पहुँच जाते सौम-कर निज गेह—  
 ओढ़ती भव से निशा फिर स्नेह ।  
 ठहर वह भी चञ्चला कुछ माम  
 रोक जग के काम, दे विश्राम—  
 खली जाती सूर्य-सम ही गेह,  
 और जग से फिर बही रवि-स्नेह ।  
 हो रहा इस भाँति ही गत काम,  
 विगत थे कुछ क्षीत वर्षा-ज्वाल ।  
 मान दमयन्ती, स्व-भन में मोद,  
 काम-क्षपण कर रही सविनोद ।

है इसे यह स्वर्ण-सतिषा योग  
 माम्य-में उसके कहीं ये भोग ।  
 जानता है भृगु म ज्यों निज गन्ध—  
 घूमता दिन रात हो मध-अध ।  
 त्यों-सुम्हें निज रूप छवि का ज्ञान—  
 है न कुछ भी है सुसुखि । अनजान ।  
 चम रहा था हाम्य-पूर्ण विनाद  
 बड़ रहा था दम्पती का मोद ।  
 दिवस अग्रिम राज्य का सब मार—  
 निज अमात्यों के करें-पर धार ।  
 साथ ले कुछ सैन्य कुछ सामान  
 किया दम्पति ने अमण प्रस्थान ।  
 दिव्य से रथ में हुए उपविष्ट  
 वे विधा सनको फिरे सब क्षिष्ट ।  
 हो न महिषो को कहीं कुछ क्लेश  
 सनै रथ चमका रहे निपक्षेस ।  
 देखते निज प्रजा-के आनन्द  
 वे चले जाते स्वयं सामन्द ।  
 राष्ट्र - का वैभव विनोक अपार,  
 हर्ष-का कुछ था न पारावार ।  
 था गया चलत हुए बस प्राप्त  
 स्वर्ग-की सी दिव्य जिसकी शान्ति ।  
 सोहता था रथ पयो-समान  
 जस-सदृश उपविष्ट नृप मतिमान ।  
 सङ्कित-सी महिषो चमकती सग,  
 घोष ने की मोर-गण मति भग ।  
 नाचते थे निज-प्रिया-के सङ्ग,  
 थीं मरीं नृप स्वागताय उमङ्ग ।

दे रहे छाया समुन्नत वृक्ष  
 घूमते विनयावनत से श्लक्ष्ण ।  
 शिविर-हित सुन्दर सुसद-सा स्थान—  
 सोवते नृप-नेत्र - पद्म-समान ।  
 देख सुन्दर एक सर - का तीर  
 रके वम्पति साथ हो सब शीर ।  
 भवन-सम तन गये शुभ्र वितान  
 पुर सदृश धोमिल कुम्भा वह स्वान ।  
 कर वहाँ सब युक्ति युक्त प्रबन्ध  
 श्रम विगत करने लगे सानन्द ।

जा रहे थे रवि स्व-गृह की ओर  
 छू रहा था तम क्षितिज के छोर ।  
 विक्रमी नृप का ध्वज कर अन्त—  
 सिर उठाते दस्तु ज्यों अत्यन्त ।  
 गगन-में सर्वत्र त्यों ग्रह-माल—  
 दमदमानी भी उठाकर भास ।  
 किन्तु कर निष्प्रभ सभी को भीर—  
 वह सुभाषर हँस - पड़ा तम भीर ।  
 स्वेत-सी जावर मही पर डाल—  
 भस रहा दुर्ग-मग-विमोहक जाल ।  
 शिविर में भी जयमगाते दोष,  
 भले तब रानी सहित धवनीप ।  
 रुक गय जाकर सरोवर-तीर,  
 भमकते जस-करण सबस ज्यों-हीर ।  
 प्राप्त थे अवसर जिन्हें अनुक्रम,  
 गव से गव भी लिले वे पक्ष ।



भाष ! जस-में इन्दु का प्रतिरूप—  
 बन रहा कैसा बिभा का स्तूप !  
 हर रहा मन की प्रभा से सीध  
 कासिमा भी सुखद इसके बीच ।'  
 "प्रिये ! मुख छवि से तुम्हारी आज—  
 हो गया थी-हीन यह निशिराज ।  
 प्राप्ति-हित उस लुप्त-छवि की हाथ  
 एक से ये दो हुए निरुपाय ।  
 तवपि निष्प्रभ ही स्वय को देख—  
 शशि-वदन पर शोक की यह रेख—  
 कासिमा बनकर विराजी आज  
 है अक्षितता ही उदासी-साज ।  
 हंस पड़े शशि से अहा - नरनाथ,  
 भी सता भी बिना पुष्पित साज ।  
 भास ही बनकर प्रकृत वृक्ष—  
 बिछ रहा शोभन सरोवर वृक्ष ।  
 कर बिपिन का प्रान्त रम्य सनाथ  
 सम्पत्ती बँडे उसी पर साथ ।  
 हो रहा बाष्पित्य सर का लुप्त  
 सो रहे जल भीष ये सब गुप्त ।  
 छा - रही उस पर कहीं सैनास,  
 सोहती जिसमें बृमुदगी - मास ।  
 'प्रकृति नटि का मन्त्र है यह मुख्य,  
 रन रहे सब अमथरों के हृत्य ।  
 अग्निबा की यवत भावर तान  
 हो रहा है लुप्त विदध महान ।  
 'समस्त पाई हो न तुम यह गार  
 मय यथावत् बन रहा संगार ।

प्रकृति को क्षण-भर न पड़ती चन,  
 मूदती है कब भसा वह नैन !  
 गन्ध लेकर आ - रहा यह वायु,  
 बीतती क्षण-क्षण विभक्ता आयु ।  
 बदसता प्रतिपल सकल नभ नील  
 नित्य परिवर्तन जगत् का छील ।  
 उधर वह देखो गगन में चन्द्र—  
 कर रहा मित्र काय पूर्ण घतन्द्र ।  
 बदसता प्रति पल सभित का डग,  
 बदसता प्रति-स्वास मुख का रग ।  
 दे-रही सबको प्रकृति उपदेश  
 व्यर्थ मत सोओ ! समय का लेश ।  
 देह पाकर मध्य हो बस कर्म,  
 कर्म ही तनुधारियों का धर्म ।  
 कर्म उत्तम है, फसासा हीन,  
 कर्म फल समझे । बिधाताधीन ।  
 कहा देवी ने बताओ धार्य !  
 कौन है करणीय उत्तम कार्य ।  
 प्रियतमे ! धन्य सुनो यह वेद—  
 अमर आत्मा का बसा है गेह ।  
 वेद का कर्ता वही है ईश,  
 जो असक्य, अनन्त सोकाधीश ।  
 देह यह व्यय हो उषी के अर्थ,  
 अन्यथा तनु - प्राप्ति समझे व्यर्थ ।  
 ईश सेवा, कृत्य मान महान्,  
 "किन्तु है वह क्या-कहाँ यह ज्ञान ।"  
 "हाँ-सुनो वह क्या-कहाँ यह बात,  
 स्वयं है वह अजर अमराजात ।

किन्तु यह भव है उसी का रूप,  
 व्याप्त कण-कण में अवुक्ष्य अनूप ।  
 सर्वव्यापक यों उसी का नाम  
 वह स्वयं कर्त्ता बना मिथ्याम ।  
 अब उसी का रूप ओष घटोष  
 कहाँ ! उसकी प्राप्ति-में तब क्लेश ।  
 ईश-सेवा का भक्त प्रिय नाम !  
 'लोक-मेवा' है सुमाजित नाम ।  
 भीष है मारे वया के पात्र  
 हो उन्हीं के हेतु भय यह गात्र ।  
 बुद्धि से सोचो मत्त कल्याण—  
 यह सुखी जो रहे बिद्व महान् ।  
 हो कही पर यदि दुःखा की सृष्टि  
 तो करे बिह्वला सुधामय वृष्टि ।  
 दीन दुःखियों को बैठावे धीर,  
 कायरों को भी बनावे धीर ।  
 हृदय में मु-स्नेह हा पतिनार्य—  
 सवयना अपनी करे अग्निसाध ।  
 मुक्त उठावें दीन रक्षा मार  
 दुःख ! उनका दामा हो आघार ।  
 धीर देखें नेत्र करके प्यार—  
 कीट - में भी ईश की उन्निहार ।  
 पढ़े बाना में कहीं स्वर भात  
 तो वही पद पढ़िय जाय परार्थ ।  
 जो न भक्त सक्ते उन्हीं का भाग—  
 बमर में अविमर्श मित्र-पर धार ।  
 जन्म - धात्री नाम का हो ध्यान  
 धीर मय आधिन, मुनी सम्मान ।

वन्द्यु हो उनका कि ओ भ्रष्टात,  
 पुत्र उनका ओ असुत हों मात ।  
 पा-सकें आश्रय कि आश्रय-हीन,  
 भी सकें सानन्द जग में दीन ।  
 आत्मवत् ही हो सभी का ध्यान  
 हो न ऐसा स्वाय ओ पर हानि ।  
 हे सुमुखि ! यह ईश सेवा - रूप  
 क्योंकि है यह विश्व ईश स्वरूप ।  
 हट गया भारों सभी भ्रम जाल  
 तुष्ट रानी ने कहा तत्काल—  
 भेद सब आया समझ में नाथ ।  
 लोक सेवा से कि हैं विमु प्राप्त ।  
 कम रहे थे विविध सुखशास्त्राप  
 हैंस रहे नय-में कलाधर आप ।  
 अर्ध रजनी का समागम जान,  
 और राजी - सौख्य का कर ध्यान ।  
 सो गये आ बिचिर मध्य निशक,  
 चन्द्रिका से मुक्त आप मयंक ।  
 कर उठे प्रात विहग प्रिय गान  
 उठे दम्पति भी निशा गत जान ।  
 बह रहा आ शीत वायु सुमन्द—  
 साथ से आह्लाकारी गन्ध ।  
 कर चुके थे पूर्ण निरूप विषेय,  
 ईश-गुण गाये समुद्य फिर नेय ।  
 रवि गगन में आ गये उस ओर  
 हो उठे अरविस्त हर्ष - विहार ।  
 हो - रहा जगमग अनेक धरण्य  
 स्व-कुसुमों का देख माना धन्य ।

## रमयन्ती

जस पड़े थे भी प्रसन्न पदाति  
देसमे को रम्य वन का प्रात ।

“नाथ ! मुक्ता-सी रमयन्ती ओस  
वन्द का विसरा हुआ-सा काप ।”

हे प्रिये ! यह नारि-मन नीर्वस्य  
द्रवित हो विसरा हृदय का सस्य ।

समस्त निशि विषु से स्वकीय-वियोग  
धीर करके स्मरण धीरे भोग

रो उठी वरमा गयी जस नेत्र  
तब प्रिया बोली किये जस नेत्र ।

क्या न राया नाथ ! निन्दुर इन्दु  
क्या न उसके निकट दो जस विन्दु ।

प्रगट इससे तो हुआ यह धाव  
सहवया निशि निठुर है निशिराव ।

पुष्प का गुण ही प्रिये ! काठोर्य  
क्योंकि उसमें वास करता धीर्य ।

प्रकृति में जो है सग्न अनुराग  
यह प्रिये ! सब नारियों का भाग ।

इधर सतपुष्पी खिली यह जोम  
पर न यह आरम्भ तब मृग-मोह ।

पिर रहे इन पर मुनि अभिवृन्द—  
पी रहे पीयूष सा मकरन्द ।

भूलकर अपना ममी य भान—  
कर-रह मुनिहर मधुरतम गान ।

बुद्ध गिरे बुद्ध प्रधगिरे हैं कम  
नाथ ! पति का जुम गया वह शून्य ।

विद्य हो पीड़ित हुआ यह हाथ ।”  
“प्रेम का है मूल्य यह निरुपाय ।

कह उठीं तुम हाय ! दुःख विलोक  
 सहृदया को क्यों-न हो पर शोक ।  
 बिछ भी देखो, भ्रमर उस ठीर—  
 डट रहा है ढीठ सिख कठोर ।  
 सुमन सेवम किन्तु घसि का देख—  
 क्यों सिंघी मुक्त पर कनकमय-रेख ।  
 हैस पड़े उन्मुक्त दोनों साथ  
 बढ़ चले नृप पकड़ भँमी हाय ।  
 गव स धाम्पेय की हो मुक्त  
 वायु बहता जा रहा उन्मुक्त ।  
 ह प्रिय ! आगे चलो उस ठीर  
 फकती सी गन्ध धारों धोर—  
 हैस - रही वही मबोझा तुल्य  
 सुनों का सत्कर्म ही है मूल्य ।  
 हरिण देखो, कर रहे कम कसि  
 दबड़ यह स्वच्छन्द विस्तृत बेमि—  
 निपट कर तब से घिरी है धाप  
 छ सकेगा क्यों इसे अब ताप ।  
 'नाथ ! तोड़ू पुष्प में दो चार,  
 "प्रिय यों स्वार्थी बनेगा प्यार ।  
 सह सका सौम्यर्य किसका स्पर्श  
 दृष्टि का बस वह बढ़ाता हर्य ।  
 बल-धाता बन रही हैं भूम  
 वायु बाहक भूमते फल - फल ।  
 बस चढ़ते तदपि हैं अम-विन्दु,  
 घट-मुषा बरसा-रहा बन्नेन्दु ।  
 इस स्पष्टिब मुन्दर पिला के पाम—  
 बैठ जायो बिछ रही मृदु पास ।

## वमयन्ती

धू रहे बरकर गगन को वृक्ष  
 नींचते हैं पाप मन को वृक्ष ।  
 करेगी छाया सखी का काम  
 घन्य होगी वे तुम्हें विधाम ।  
 कह सके ही थे कि सहसा हाथ—  
 धनुष पर पहुँचा धरे-के साथ ।  
 प्रियतमे ! देखो ऊपर मुगराज—  
 घा रहा-मज धूर का सा साज ।  
 दीन को यह मार साठा पृष्ट  
 निर्बलों को सबदा दे कष्ट ।  
 उचित ही मैं दूँ इस घब वण्ड  
 काल इसका घा-गया घब वण्ड ।  
 मिह्र वमयन्ती गई सुन काल  
 ठीक मे कर दीघ बिखरे वाम ।  
 और यों कहने लगी मदिनीत—  
 नाथ ! क्या होगी न यह घनपति ।  
 इस समय यह है घबध्य भदोय—  
 तुष्ट है घबलोक निज बन कोय ।  
 मुड़ गया वह ऊपर सो यह जीत  
 कर गया स्वागन, निभायी रीति ।  
 'पर मुनो, यह धनुष की टंकार—  
 मुन जिम, उसने भरी हुंकार ।  
 धनुष रख मुन सोचना वह भीर,  
 घा-गया कोई पुरघर भीर ।  
 इस लिए भू-भूम मर हुंकार—  
 वह चुनौती कर रहा स्वीकार ।  
 है बड़प्पन में प्रिये ! यह दोग,  
 धन्य उन्नति में न उमरो तोय !

## अष्टम सर्ग

समझ उस हुंकार को घन घोष  
 मोर कितना पा रहे-गरिस्तोष ।  
 नाचते ग्रीवा किये हैं भग  
 मुग्धभावा के प्रियार्थें सग ।  
 पैलों में कितने भरे हैं रग,  
 देख होती मनुज मति तो दग ।  
 लग रहे नीलम जड़े-से पल  
 कुशलता यह प्रकृति की प्रत्यक्ष ।  
 हे प्रकृति की तूझिके ! तू धन्य,  
 धन्य, तेरा काय-क्षेत्र धरण्य ।  
 बलो ! प्रब तो कर चुकी विधाम,  
 भील देखो दिव्य-शोभा-धाम ।  
 भीर देखो जा रहा वह शूल  
 इधर यह विकसित बकुल का वृक्ष—  
 कर रहा तुमको समर्पित फल  
 श्रेष्ठ का क्षण-सग भी सुखमूल ।  
 गन्ध इनसे उड़ रही सर्वत्र  
 कर-रहे नृप-सौग मानों सत्र ।  
 मङ्ग रहा यह मुग्ध आप पराग  
 इष्ट इसको प्रिया-मद अनुराग ।  
 सामने छात्मनि-विपिन उस ओर,  
 झू-रही वह गिरि-शिखा नम छोर ।  
 भर प्रहा यह पलियों-से गोद,  
 प्रगट करता बूझ बट यह मोद ।  
 समी तद-वर-कृत्य अपना जान—  
 कर रहे निम्बार्थ छाया-दान ।  
 तन रहे आकाश-में वन भीर,  
 भीटते पर-हित, स्व-तन-घन भीर !



धू रहे बढ़कर गगन को वृक्ष  
 सींचते है आप मन को वृक्ष ।  
 करेगी दयाया सभी का काम  
 धन्य होगी दे तुम्हें वियाम ।  
 कह सके ही थे कि सहसा हाथ—  
 धनुष पर पहुँचा घरे-के साथ ।  
 प्रियतम ! देखो उधर, मृगराम—  
 आ रहा-मख शूर का सा राज ।  
 दीन को यह मार खाता पुष्ट  
 निर्दमों को सबदा दे कष्ट ।  
 उचित ही मे दूँ इसे घब दण्ड  
 बाल इसका आ-गया बर बर ।  
 मिहर दमयन्ती गई मुन 'बाल'  
 ठीक से कर लीध बिखरे बाल ।  
 घोर यों बहने लगी सविनीत—  
 नाथ ! क्या होगी न यह मनरीति ।  
 इस समय यह है अवध्य भदोष—  
 तुष्ट है अवलोक निज वन - कोष ।  
 मुड़ गया वह उधर, सो यह जीत  
 कर गया स्वागम निभायी रीति ।  
 'पर मुनो, यह धनुष की टंकार—  
 मुन बिम, उसने मरी हुंकार ।  
 धनुष रब मुन साधना वह बीर,  
 आ-गया कोई पुरणपर धीर ।  
 इस निज भू नृम भर हुंकार—  
 वह नुमोनी कर रहा स्वीकार ।  
 है बह्णन में प्रिये ! यह दोष  
 घय उन्नति न न उगयो तोष ।

समस्त उस हुंकार को घन घोष  
 मोर कितना पा रहे-परितोष ।  
 नाचते घीवा किये हैं भग  
 मुग्धभावा वे प्रियार्ये सग ।  
 पैलों में कितने भरे हैं रग  
 देख होती मनुज मति तो दग ।  
 सग रहे नीलम जङ्ग-से पक्ष  
 कुशमता यह प्रकृति की प्रत्यक्ष ।  
 हे प्रकृति की तूझके ! तू घन्य,  
 घन्य तेरा कार्य-क्षेत्र अरघ्य ।  
 बसो ! अब तो कर चुकीं विधाम  
 भीम देखो दिव्य-शोभा-धाम ।  
 और देखो जा रहा वह ऋक्ष  
 इधर यह विकसित वकुल का वृक्ष—  
 कर रहा तुमको समर्पित फल  
 श्रेष्ठ का क्षण-सग भी सुलभूस ।  
 गघ इनसे उड़-रही सबत्र  
 कर रहे नृप-भोग मानों सत्र ।  
 मङ्ग रहा यह मुग्ध आप पराग  
 इष्ट इसको प्रिया-पत्र अनुराग ।  
 सामने शास्मलि-विपिन उस ओर,  
 छू-रही वह गिरि-गिरा नम छोर ।  
 भर अहा वह पक्षियों-से गोद  
 प्रगट करता बूझ बट यह मोद ।  
 सभी तरु-वर-वृक्ष अपना जान—  
 कर रहे निस्स्वार्थ दाय-दान ।  
 तन रहे आकाश-में घन भीर,  
 बाँटते पर-हिण, स्व-तन-घन भीर ।

यह विहग-रव हो रहा दिग्भ्याप्त  
 भव हुआ कन्सी-विपिन भव प्राप्त ।  
 आज पर सञ्चित हुआ यह भाष—  
 सिर झुकाये यों सका कुपचाप ।  
 समझता था कुछ न यह उद्भ्रान्त—  
 सदृश अपने स्निग्ध कोमल कान्त ।  
 समस्त मित्र-से स्निग्ध-कान्त-विशेष  
 हे प्रिये बँदमि ! तब सर-वेण ।  
 हो गया नत विगत है सब दर्प  
 जा रहा वह ! रंगता-सा सर्प ।  
 विपिन-में सब घोर से स्वच्छन्द—  
 निभ रही बकुल लता सानन्द ।  
 चमकते हैं पुष्प, नीसे पत्र,  
 नील-नभ में उदित-से नक्षत्र ।  
 वह-रहा मद इधर पथ-की रोक  
 भर रहा भरना इसे बे-टोक ।  
 पा रहा जो सो सुटाता मोह  
 कर सका जब भय इसको मोह ।  
 उन जनों से तो यही बड़भाग  
 जो कमाकर धन न करते त्याग ।  
 रंगता इस धार कैसा ! बीट  
 तीर-गा नभ-में गया वह डीठ ।  
 मिस रह ये फल कितने आप  
 छू रहा इसको न भव का ताप ।  
 भाग्य कम का इधर प्राप्त कुञ्ज  
 बना-सुपमा का सुन्दर यह पुञ्ज ।  
 गूँजते घनि मधुर पित्र का गान  
 घोर पी' पी' शब्द आठव-गान ।

भर रहा मन-में अपार उमङ्ग  
 छोड़ता-भा बाण गुप्त मनङ्ग ।  
 हो कवच-सी किन्तु तुम जो साथ  
 व्यर्थ हैं सब स्वयं इसकी धात ।  
 इधर ये दोभायमान अशोक—  
 दूर करते हैं जगत-का शोक ।  
 विपिन ! तेरा धन्य है प्रारब्ध,  
 दिव्य यह सब काय तुमको सख्य ।  
 और यह प्राकृत सरोवर भव्य  
 विपिन-की खोमा बड़ाता दिव्य ।  
 कमल-वन की यह प्रभा निर्दोष—  
 द रही कितना दुगा-का तोष ।  
 बन भ्रमण से मुग्ध हैं भरपूर  
 चलो सौटें, आ-गये हम दूर ।  
 कर विपिन-में भीति, भीति, विनोद,  
 देख प्राकृत वृक्ष, पा अति मोद ।  
 छहर कानन में दिवस दो बार,  
 फिर-उठाया सौट नैपथ्य-भार ।  
 समय पाकर भीमजा ने आप,  
 पुत्र जग्मा चन्द्र सा निष्पाप ।  
 हुए अर्युत्सव नृपति के द्वार,  
 निपथ-मुख का था न पारावार ।  
 नाम शुण्ण अनुरूप ही अजनीश्वर,  
 प्यार से कहते उसे प्रिय 'छन्द' ।  
 समय पाकर भीमजा ने अख्य—  
 मुस्ता पैदा की स्वयं-सी अख्य ।  
 बिनो नृप ने मस्त अनेक महान  
 दीन हीमों का किया धन-दान ।

यह विह्वल हो रहा दिग्भ्रष्ट  
 घबड़ा कदसी-विपिन यह-भाष्ट ।  
 घाव पर लज्जित हुआ यह भाप—  
 सिर झुकाय यों लड़ा कुपचाप ।  
 समझता था कुछ न यह उद्भ्रान्त—  
 सदृश अपने स्निग्ध कोमल कान्त ।  
 समझ निज-से स्निग्ध-कान्त-विशेष,  
 हे प्रिये बैधमि ! तब उरु-देश ।  
 हो गया नत बिगल है सब दर्प  
 वा रहा वह ! रगता-सा सर्प ।  
 विपिन-में सब ओर से स्वच्छन्द—  
 लिल रही बहकर मता सामन्त ।  
 बमकते हैं पुष्प नीसे पत्र  
 नील-नम में उचित-से नक्षत्र ।  
 बह रहा नद इधर पथ-को रोक  
 भर रहा करना इसे बे-टोक ।  
 पा रहा जो सो लुटाता मोह  
 कर सका कब अन्य इसको मोह ।  
 उन जनों से तो यही बहाम  
 जो कमाकर जन न करते त्याग ।  
 रंगता इस ओर कैसा ! कीट  
 तीर-सा नम-में गया वह झीठ ।  
 लिल रहे ये फल कितने भाप  
 सू रहा इनको न भव का ताप ।  
 भाव जन का इधर प्राकृत कुञ्ज  
 बना-सुपमा का सुलभ यह पुञ्ज ।  
 गुंजते भूमि मधुर पिक का यान  
 पीर पी पी' मय्य जातक-ताम ।

भर रहा मन-में अपार उमङ्ग  
 धोड़ना-सा वाण गुप्त भ्रमङ्ग ।  
 हो कवच-सी किन्तु तुम जो साथ  
 मर्य हैं सब स्वय इसकी छात ।  
 इधर ये शोभायमान अशोक—  
 दूर करते हैं जगत-का शोक ।  
 विपिन ! तेरा धन्य है प्रारम्भ,  
 निम्न यह सब कोष तुमको सम्भ ।  
 और यह प्राकृत सरोवर भव्य  
 विपिन-की शोभा बढ़ाता दिव्य ।  
 कमल-वन की यह प्रभा निर्दोष—  
 दे रही कितना दुर्गो-को तोष ।  
 वन भ्रमण से मुख हैं भरपूर  
 बलो सौटें आ-गये हम दूर ।  
 कर विपिन-में भाँति भाँति विनोद,  
 देख प्राकृत वृक्ष पा अति मोद ।  
 ठहर कानन में दिवस दो चार,  
 फिर-उठाया लौट नैपथ-भार ।  
 समय पाकर भीमजा ने आप,  
 पुत्र जमा जड़ सा निष्पाप ।  
 हुए अश्रुसख नृपति क द्वार,  
 निपथ-मुक्त का था न पारावार ।  
 नाम गुण अनुरूप ही अवनीन्द्र,  
 प्यार से कहते उसे प्रिय 'हन्द्र' ।  
 समय पाकर भीमजा ने अन्ध—  
 सुता पैदा की स्वयं-सी धन्य ।  
 किये नृप ने मक्ष अनेक महान  
 दीन हीनों को किया धन-दान ।

सुखी ये धन भी न आधि न व्याधि

निपन्न वा धन-धान्य-पूर्ण भगाध ।

करने सगे दिनों-दिन भूपति धनस्य सुखविस्तार  
 देते दण्ड सवा कुटों-को, दीनों-को चहार ।  
 रखते सतत प्रजा सुख दुःख का पुत्र तुल्य वे ध्यान  
 भक्त प्रजा-धन उन्हें पूजते पिता-तुल्य ही मान ।

## नवम सगे

सबसुख जग-में है सग ही रग साता,  
 सगुण-मनुज को भी, नीच-पापी बनाता ।  
 पब-बिरल हुए को मार्ग धण्डा दिखावे  
 जन वह सु-हृत्ती है जो-कि सत्सग पाने ।

निरख शीघ्र यहाँ बल लेखनी ।  
 बन रहा वह जो सित सख्त है ।  
 भक्त - वश विनाशन ध्यान से—  
 कर रहा कु-सखा खल-क्षय है ।


सुख कर सकटा कब बास वहाँ,  
 कसि का हो स्वयं निवास अहाँ ।  
 सुख पूण हुए, दुख-की बारी,  
 कर्मोपभोग है साधारी ।

थके हुए विमनाय अभी मित्र धर गये  
 कमल बनो-की समी प्रभा वे हर गये ।  
 हा-कोकी हत-हुई शोक पाने सगी,  
 निपा विद्व-में तिमिर पटल छाने सगी ।  
 राजभवन उस ओर प्रकाशित हो रहा  
 समी-सोम को स्वयं दमक-कर जो रहा ।



नल के पुष्कर धनुज यहाँ आसीन हैं  
 हृषिचिन्ह सब क्षुप्त सोच में सीन हैं ।  
 कसि-सम गानव कुमसि सखा वह पास है,  
 करता निज-अनुरूप कृत्स्नितायास है ।  
 धिया हुआ था अहित वचन से प्रेम के  
 निप से हों परिपूर्ण कसल ज्यों हेम के ।  
 सखे ! स्वल्प सौभाग्य न मेरा है अहा  
 जो तुम सा युवराज मित्र मेरा रहा ।  
 कई वर्ष हो गये यहाँ रहते हुए,  
 तुम्हें देख इस भाँति कष्ट सहते हुए ।  
 होता था कुछ मुझे, न पर कुछ कह सका  
 क्षमा करो जो भाव न मैं यह सह सका ।  
 जिस माँ-से तुम हुए, उसी से वे बनी  
 रहे किन्तु तुम पास, सूप से अग्रणी ।  
 होकर तुमको नसाधीन रहना पड़े  
 नत-मस्तक निर्वेध विवश सहना पड़े ।  
 उनकी आज्ञा वेद-मंत्र तुम मानते  
 अपना भी हित अहित न कुछ पहचानते ।  
 सुखभोगी देवेन्द्र-तुल्य निपवेष हैं ।  
 और तुम्हें ये दैव्य मरे सब क्लेश हैं,  
 एकाधिक सन्तान न सूपति की मसीं ।  
 एक सत्ता की मित्त-रूप ही वे कसीं,  
 सुनी क्षुद्रता पूर्ण, मित्र की बात जब ।  
 सहसा जसमे लगा मसानुज गात सब ।  
 हो न मित्र अपमान, ध्यान करके यही,  
 बदल बदल के भाव, बात ऐसे कही ।  
 तुम सा अश्वत्थामि, मुझे अह ! प्राप्त है  
 मेरे दुःख से जसा तुम्हारा गात है ।

बनी धाज की प्रीति किन्तु धनरीति है।  
 लमा करो ! यह बन्धु-मेनिका नीति है।  
 भद्र-वध यह सहन ममा कब कर सके  
 मत कहना दुर्वचन भूम भी फिर सन्ने।  
 भद्रज होता पूज्य देव-मम लोक-मे  
 मूल्य न उसका रहा कभी कम लोक-मे।  
 जीवन यों ही गान्ति-पूर्ण रस सिक्त हो  
 सद्भावों-का कोप न मेरा रिक्त हो।  
 उनकी भासा सवा मुझे स्वीकार्य है।  
 मैं हूँ उनका अनुज ज्येष्ठ वे धाय हैं।  
 क्यों-न इसे सौमन्य स्वर्ण-भवसर कहूँ  
 पद-सेवा-रत ज्येष्ठ-बन्धु की जा रहूँ।  
 राज्य भोग का मार्ग सख ! दुस्तर बडा  
 मुम्सा उस पर हो न सके जल-भर लडा।  
 जन मन रखन कहें न मुझमें क्षति है  
 भद्रज-पद-हित तनिक हृदय-में भक्ति है।  
 लोक-भार को बहन करो यह राज्य है  
 प्रजा-भरोहर सेव्य किन्तु अविभाज्य है।  
 पाप-पूर्ण यह मित्र ! तुम्हारी मन्त्रणा  
 सुनकर ही बढ़ रही हृदय की यन्त्रणा।  
 तुम ही सोचो सखे ! तनिक यह ध्यान से  
 जो मित्र भद्रज बन्धु मुझे प्रिय प्राण-भ।  
 उनकी पद-रति को ही सति मुझ मानते  
 मेरा कुहित छिपा इसी में जानते।  
 एक सेव्य-को देख हुए जब तुम कुली  
 पूर्ण-भजा हो सेव्य रहोगे तब सुखी।  
 कर सकता यह कौम ! मला बिरवात है,  
 नृप होकर भी अनुज, ज्येष्ठ का दास है।

कष्टक-सू-पर सुमन तुल्य जो तिम नुके  
 उन-गुरु-जन से भाव हमें ये मिल नुके ।  
 धार्य-सम्पत्ता यही सुसरइति है यही  
 इससे ही हो रही सु-वासित यह मही ।  
 मात-पिता गुरु-अप्यंठ सभी धन्य है,  
 इनकी आज्ञा शिरोधार्य गुण-मेय है ।  
 सखे ! अनुज मैं राज्य न मेरा भोग्य है  
 सभी गुणों से युक्त धार्य के योग्य है ।  
 सभी प्रजा है उन्हें पिता-सम माननी  
 निज पितरों को जन्म-हेतु ही जाननी ।  
 श्रीर पुत्र-सम उसे समझते धार्य हैं,  
 सतत प्रजा-हित ध्येय उन्हें अनिवार्य है ।  
 मैं भी उनका एक प्रजापति बन रहा  
 तुम्हीं कहो फिर धार्य न क्या मेरा महा ।  
 क्षुद्रों ने ही दिया परम-पद राज्य को  
 पण्डित कर दिया अस्मित अविभाज्य को ।  
 बन्धु ! निपट का वृत्त विदित तुमको सभी  
 इस खासन में तनिक भ्रम देखो अभी ।  
 इस प्रकार सव्भाग जनों-में भर रहे  
 'मैं ही नृप ॥' राज्य यद्यपि नम कर रहे ।  
 और इधर यह विदित धार्य नम-की कथा  
 'यथा प्रजा जन, एक मनुज मैं भी तथा' ।  
 अथवा को सवा समझते प्राण-सा  
 मुरझाते वे स्वयं, मुझे-या म्लान-सा ।  
 मात - पिता गुरु मित्र, एक मेरे बही,  
 मेरा कुछ अस्तित्व मिलन उनसे नहीं ।

यह सब थोपा ज्ञान न इसमें सत्य है,  
 अन्ध बधिर यह मोह, कथम निसत्य है।  
 मार्गों ऐसे भाव प्रगट करते हुए,  
 पुष्कर का सब घम ज्ञान हरते हुए।  
 वह गालब कलि-रूप टहाका मारकर—  
 हँसे और यों-कहा ऊमरी प्यार कर।  
 यह मोनापन मित्र ! दया के योग्य है  
 कहते जो तुम, राज्य ज्येष्ठ का भोग्य है।  
 है यह सब पाशण्ड न इसमें सत्य है  
 माता के सब एक समान अपत्य हैं।  
 रहे ज्येष्ठ क्यों-भूप अनुब क्यों-दास है  
 भूप रक्षित यह समी छद्म का पाश है।  
 नृप से पाकर द्रव्य जिन्होंने घर-भरे,  
 चन लोगों ने नियम रहे ऐसे भरे।  
 वही नियम बन गये लोक-में अब प्रथा  
 सोच समझकर कहो न क्या वे सब कथा।  
 जितनी हों सन्तान एक माँ-की कहो !  
 सम-भोक्ता वे सभी न हों फिर क्यों-कहो !  
 भले दीन ही मित्र ! राज परिवार से  
 रहते जब सब बन्धु तुल्य अधिकार से।  
 और एक तुम, दास बने भी तुष्ट हो,  
 तुमसे सक्ष्मी कहो न फिर क्यों दृष्ट हो।  
 मिस जाता है राज्य न भिक्षा-में वही,  
 शक्तिमान ही सदा भोगते हैं गद्दी।  
 तुम्हीं कहो हों हीन-वस्तु यदि राज्य है  
 है न भोग्य की वस्तु, तृणा-मा त्याग्य है।  
 होती फिर क्या क्षान्ति उमी-य अथ ही,  
 बहुता उमक भिगू रगत क्यों-व्यर्थ ही।

भावुकता यह निरी इसे तुम छोड़ दो  
 ये नर-कृत दुनियम इन्हें भ्रम तोड़ दो ।  
 कायरता यह छोड़ उठो भ्रम हो नके  
 यत्नों से ही काम सदा बनते बड़े ।  
 बस तुम ही मर कहो कार्य फिर सिद्ध हो  
 अनायास ही सन्ने । लक्ष्य यह विद्य हा ।  
 एक युक्ति मे तुम्हें बता-बूंगा अभी,  
 पा आश्रितो राज्य निपद्य का सहज ही ।  
 तनिक क्रुद्ध-हो भीर मित्र को डाटकर  
 बोले-मुष्कर, बात बीच-में काटकर ।  
 पाप क्षान्त ! यों बचन न फिर कहना कभी  
 विप-सी कट्ट यह सगी मुझे सिखा समी ।  
 निर्माता जो आर्ग्य-सम्यता के रहे  
 जिनके बचन प्रकाश विप-को दे रहे ।  
 उन पर भी आशेष अभी तुम कर चुके  
 करके तर्क विमर्क मित्र ! यों-बेतुके ।  
 ममरु रहे सुख-मूल घरे । तुम राज्य को  
 इसीलिए सिर बड़ा रहे उस त्याग्य को ।  
 देव देव-ही दनुज दनुज-ही ज्यो रहें  
 ज्येष्ठ ज्येष्ठ-ही अनुज अनुज ही त्यों रहें ।  
 कार्य-कुशलता धैर्य, प्रसस्त-गुणावली  
 अनुभव या गान्धीय, सौम्यता की स्वसी ।  
 अथर्व में ज्यों रहें, अनुज में त्यों नहीं,  
 मिस जावे अपवाद मले इसका कहीं ।  
 तुच्छ राज्य-का तुम्हीं कहो मैं क्या-कई  
 हीन-वस्तु के लिए परस्पर लड़-मई ।  
 क्या-जानो तुम प्रया उच्च-कुल की घरे !  
 इसीलिए वह रहे बचन यों-विप मरे ।

हुए ममानुज मौन, प्रगट कर भाव यों,  
 गासव भी फिर सगे चलाने दाव यों ।  
 हो आवे प्रण पूर्ण, हट यह था उसे  
 नैमी-व्रत हो मङ्ग बिपद में वह पड़े ।  
 ५ कहते हो सब ठीक यद्यपि सुवराज तुम  
 करते हो पर, धपना आप अकाज तुम ।  
 जन-मन रञ्जन शक्ति आप में है नहीं,  
 सत्य कहेगा कौन ! सन्ने ! इसको नहीं ।  
 यह जन-कृत्त बुनियम कि अग्रज नृप सगे  
 क्या इससे अधिकार न समुजों के दिने ।  
 घाटे-में ही रहे अनुज दग गीगि-ग,  
 कह न मके कुछ नियम भग बी भीनि-ग ।  
 देवों तक ने राज्य - गङ्गा का विष,  
 घोणित मर बहु बाग प्रकाशित है दिव्य ।  
 किम घोर अघाय भोग स्व-निष्ठ भी,  
 रहे बड़े कुरपाय रह उन्निष्ठ भी ।  
 कसाकार कर मके । पूर्ति इसकी नहीं  
 रच न सकी है कसा श्रुति इसकी नहीं ।  
 राज्य-श्रुति बन सकी दुधारी धार-पर,  
 बड़ी हुई यह रक्त-सिन्धु को पार कर ।  
 अठ ससे ! यह राज्य वीर का योग्य है,  
 वीर विनिमित्त श्रुति उसी के योग्य है ।  
 विप्र-श्रुति को समझ रहे निज कर्म तुम  
 भूल रहे हो मित्र ! सत्र का धर्म तुम ।  
 होती यदि यों हानि अकेले आप की  
 तो भी धो यह बात न कुछ सम्ताप की ।  
 एक तुम्हारी शून्य पितृ सन्तान नो  
 अब जा है फिर वह न रहेगा मान ॥

यद्यपि तुम्हारी स्त्री कुछ भी कहती नहीं  
 पर क्या-बहु कुछ मनस्ताप सहती नहीं ।  
 पति तुम्हारी बनी न क्यों, नल की बनी  
 क्यों दमयन्ती भाग्यवती उससे बनी ।  
 निषध प्रजा की आज महारानी बही  
 उस जैसी तो सुखी न इन्द्राणी रही ।  
 सचमुच तुमसे आज प्रेम बह कर रही  
 नल दम्पति-सा प्रेम किन्तु क्या-है बही ।  
 सत्कुसजा का मौन कभी टूटा नहीं  
 पर, उनसे धन-मोह कभी छूटा नहीं ।  
 जिस दिन बन सजाट मुकुट सिर-पर धरो  
 पत्नी-पर हग-पाठ प्रेम पूरित करो ।  
 सार्धक समझे तभी न क्या-बहु आप को  
 और करेगी दूर हृदय-के ताप को ।  
 देगी तुम पर बार स्वयं को वह तभी  
 पाओगे वह प्रेम न जो पाया धमी ।  
 प्रथ स्वहित को सोच बात मेरी सुनो  
 जैसे तुम स्वच्छन्द कि कुछ भी पय चुनो ।  
 कुमाकुमा यदि वहीं साज को त्याग-दे  
 उसी साज को बार-बसू धनुराग दे ।  
 मृग-कुल में हो जम और सन्तोष हो  
 कहीं विप्र में असन्तोष का दोष हो ।  
 कर्त्ता-को ये कार्य, नष्ट करते स्वयम्,  
 पाकर बह भ्रमन्त सभी मरते स्वयम् ।  
 भावुकता में भिन्न न तुम ऐसे बहो  
 सोचो समझो और मुहक गिरि सम रहो ।  
 निस्पृह-हित ही राज्य-वस्तु वैराग्य की  
 क्षणिय हित यह वही सम्पदा त्याग-की ।

दानव, मानव, देव सभी इस पर मरे  
 मगणित-जन भवसम्य इसी का पा-सरे ।  
 सिम-भर-सु-हित बंधु, बन्धु को काटत,  
 बंधु-रक्त को खड्ग बन्धु के चाटते ।  
 पट जाता मैदान धवों-से रण छिड़ें  
 राज्य-हेतु ही पुत्र पिता से भी मिड़े ।  
 राज्य-हेतु ही नवी रक्त की बह चसे  
 राज्य-हेतु ही मित्र, मित्र को भी छड़े ।  
 समझे राजकुमार विचारो, वित्त में  
 सब का सारा विभव निहित है वित्त में ।  
 वसुन्धरा का मोम्य-स्वादु तुम जानते  
 तो फिर ऐसी हठ न बूझा यह ठानते ।  
 पृथ्वी-पति बन करो सुखों का भोग तुम  
 थोड़े ज्ञानी बन न तजो यह योग तुम ।  
 ऐसी तुम्हें सु-युक्ति बताऊंगा अभी  
 सगे न जिससे दोष तुम्हें कोई कभी ।  
 इज्जत पर यह निषध तुम्हारे चल पड़े  
 निषधराज सब कहें तुम्हें छोटे बड़े ।  
 धूमे पद यह प्रजा कमल-सम मानकर  
 वसुंधरा हो धन्य तुम्हें पति जानकर ।  
 सभाजी का पद ध-पूर्व जब पायगी  
 तभी कुमुदनी शशी-तुल्य हो आयगी ।  
 यदि दो दिन के लिए नहीं इस कृत्य-में—  
 भा जायें दुर्भाग, मित्र या भृत्य-में ।  
 भाजावेगी शक्ति, किन्तु जब हाथ में  
 सहसा ही हो जाय प्रजा तब साथ में ।  
 दुष्टों का कर दमन, सुजन का मान-कर,  
 अधिकारी को भीर उज्ज्व-पद दाम कर ।



यद्यपि तुम्हारे स्त्री कुछ भी कहती नहीं  
 पर क्या-वह कुछ मनस्ताप सहती नहीं ।  
 पति तुम्हारी वनी न क्यों नस की घनी  
 क्यों दम्पती भ्राम्यवती उससे घनी ।  
 निपट प्रजा की आज महारानी वही  
 उस जसी तो सुखी न इन्द्राणी रही ।  
 सबकुछ तुमसे आज प्रेम वह कर रही  
 नस दम्पति-सा प्रेम किन्तु क्या-है वही ।  
 सत्कुसजा का मौन कभी टूटा नहीं  
 पर, उससे धन-मोह कभी छूटा नहीं ।  
 जिस विन वन सम्राट मुकुट सिर-पर धरो  
 पत्नी-पर हग-पात प्रेम पूरित करो ।  
 सायक समझे तभी न क्या-वह आप को  
 और करेगी दूर हृदय-के ताप को ।  
 वेगी तुम पर बार स्वयं को वह तभी  
 पाओगे वह प्रेम न जो पाया अभी ।  
 अत स्वहित को सोच बात मेरी सुनो  
 जैसे तुम स्वच्छन्द कि कुछ भी पव पुनो ।  
 कुमाङ्गना यदि कहीं साज को त्याग-दे  
 उसी साज को बार-बधू धनुराग दे ।  
 नृप-कुल में हो जन्म और सन्तोष हो  
 नहीं मित्र में असन्तोष का दोष हो ।  
 कर्त्ता-को ये कार्य नष्ट करते स्वयम्,  
 पाकर नष्ट अनन्त सभी मरते स्वयम् ।  
 भावुकता में मित्र, न तुम ऐसे बहो  
 सोचो समझो और मुहक गिरि सम रहो ।  
 निस्पृह-हित ही राज्य-वस्तु बैराग्य की  
 क्षणिय हित यह नहीं सम्पदा त्याग-की ।

दानव मानव देव सभी इस पर मरे  
 भगणित-वन अवलम्ब इसी का पा-तरे ।  
 तिस-गर-सू-हित बन्धु, बन्धु को काटते  
 बन्धु-रक्त को सङ्ग बन्धु के खाटते ।  
 पट जाता मदान धवों-से रण छिड़ें  
 राज्य-हेतु ही पुत्र पिता से भी मिड़ें ।  
 राज्य-हेतु ही नदी रक्त की वह चले  
 राज्य-हेतु ही मित्र मित्र को भी छले ।  
 समझो राजकुमार विचारो, चित्त में  
 भव का सारा विभव निहित है बिस में ।  
 वसुधरा का भोग्य-स्वादु तुम जानते  
 तो फिर ऐसी हठ न घुसा यह ठानते ।  
 पृथ्वी-पति बन करो सुखों का भोग तुम  
 बोये ज्ञानी बन न सजो यह योग तुम ।  
 ऐसी तुम्हें सु-शुक्ति बताऊँगा धनी,  
 सगे न जिससे दोष तुम्हें कोई कभी ।  
 इज्जत पर यह निपय तुम्हारे चम पड़े  
 निपधराज सब कहें तुम्हें छोड़ बड़े ।  
 कूमे पद यह प्रजा कमल-सम मानकर,  
 वसुधरा हो धन्य तुम्हें पति जानकर ।  
 सम्राज्ञी का पद अ-पूव जब पायगी  
 सभी कुमुदनी धापी-तुल्य हो जायगी ।  
 यदि दो दिन के लिए नहीं इस कृत्य-में—  
 भा जायें दुर्गति, मित्र या भृत्य-में ।  
 प्राजावेगी धक्ति किन्तु जब हाथ में  
 सहसा ही हो जाय प्रजा तब साथ में ।  
 दुष्टों का कर दमन, सुजन का मान-कर,  
 अधिकारी को धीर उच्च-पद दान कर ।

## रामबली

रूप-बल ऐसे कार्य जहाँ तुमने किये  
 सभी समर्थक दीध नहाँ तुमने किये ।  
 कूट नीति छम छिद्र धीर कुछ शक्ति भी  
 बिश्वास-विश्वास कहीं कुछ भक्ति भी ।  
 फसती यह साम्राज्य-बेलि सब फसकर  
 छोड़ो मत अब स्वर्ण-योग तुम भूलकर ।  
 राज्य-सूक्ष्म यदि कुछ न सजे ! होता कहीं  
 तो तदर्थ सुर-वर्ग भैंस लोहा नहीं ।  
 छे समर दिन रात सुरसुर रत-हुए,  
 एतदर्थ प्रभु क्या न महाभारत हुए ।  
 है यद्यपि यह कृत्य नहीं जन-पूत का  
 पर सूपति को व्यसन लगा है शूत का ।  
 मैं हूँ प्रति निष्ठात लेन मैं भक्ष के  
 क्षण भर मैं जन-भाम हूँ प्रति-वध के ।  
 कैसा भी हो कृष्ण प्रविद्धन्दी नहीं  
 मेरे सम्मुख किन्तु पीठ सकता नहीं ।  
 कपट-पूर्ण यों-भक्ष विनिमित्त मैं कहूँ  
 सूपति का साम्राज्य एक क्षण-में हूँ ।  
 माँगोने जो दाव मित्र ! पाओ वही  
 जान सकेगा भेद न कोई भी सही ।  
 सूप-बुद्धि पर धोर तिमिर छा-आयगा  
 तनिक न छोड़ित रहे राज्य आ-आयगा ।  
 मित्र ! शान्ति से पूर्ण क्कामि हो आयगी  
 जो-कि ! तुम्हारा वास्य भाव जो आयगी ।  
 बुद्धि मरा कभी न सूपति ने किया,  
 फिर भी यह सब भेद तुम्हें मैंने दिया ।  
 सोधो यह क्यों किया, मित्र प्रेमार्थ ही,  
 केवल अपने पुण्य-सखा समार्थ-ही ।

अस्वीकृत है, या समोद स्वीकार है  
 यह सब तो युवराज ! तुम्हें अधिकार है ।  
 एक ओर है स्वयं उधर रौरव विकट  
 इधर वासता और उधर प्रसुता-मुकूट ।  
 जैसे तुम्हें जो अष्ट मार्ग चुनसो वही,  
 जिससे हो कस्याण भाव गुन सो वही ।  
 करता है मैं विनति यही भगवान की  
 वह तुमको दे बुद्धि हिताहित ज्ञान की ।  
 समा-मध्य हों भूप समासद हों समी—  
 कम तुम उनको पहुँच चुनौती दो तमी ।  
 समझ्यो वे तुम्हें, न तब तुम मानना  
 क्षण-भर में बस काय-सिद्ध फिर जानना ।  
 घूत-जिसारी-पूर्ण-दल कोई कहीं—  
 करता अस्वीकार चुनौती को नहीं ।  
 जो जीते वह राज्य करे पण हो यही  
 विजित पक्ष बनवास त्रास भोगे सही ।  
 गामव भुप हो गये व्यक्त कर निज कसा  
 गुञ्जारित हो कल समयन कर चसा ।  
 सुन पुष्कर हतबोध-हुए विप-बुद्ध-से  
 गामव से उपविष्ट बने वे दुष्ट-से ।  
 पुष्कर के हर धील सुमति सौजन्य भी  
 गामव तो धयनार्थ गय निज गृह तमी ।  
 चन्नत-भाव-विनाश हेतु दुर्मत्र यों—  
 दुरभिसन्धिकमय रचा देस पड़यन्त्र यों—  
 छिपे लाज से अर्घ्य-इन्दु पाकर व्यथा,  
 तिमिर पटल-परिपूर्ण हुई रजनी तथा ।  
 सेटे ये युवराज मीद भाई नहीं  
 रहे रात भर विकसत धन पाई नहीं ।

कभी विजित सङ्काव कभी या भीतता  
 पल पल भी युग-सुख चहें या भीतता ।  
 गूँज रहे थे बचन, भिन्न के जान में  
 फिर फिर जाती रही बात वे ध्यान में ।  
 उनके मन-में भाव यही थे भर रहे  
 गूँज कल नम-दिवा यही रव भर रहे ।  
 राज्य-भूख यदि सखे ! न कुछ होता वही  
 तो तदर्थ मुर-वर्ग वेयं सोता नहीं ।  
 कहता यह ही बापु, विद्या कहती यही—  
 सक्तिमान ही सदा भोगते हैं मही ।  
 राज्य-समा जुड़ रही सभासद हैं वहाँ  
 नृप बनकर वे स्वयं निरापव हैं वहाँ ।  
 रत्न-वदित-धर सुकृष्ट चन्द्र संतुल रहे,  
 हृदय-दण्ड के तने, नीर के कुल रहे ।  
 नम्र-सान्त्व-नत भोग उपस्थित हैं वही  
 मानों सब सुरभोग उपस्थित हैं वही ।  
 पदवी उनको प्राप्त हुई निपवेष की  
 जोहू रहे सब विगत बाट आवेष की ।  
 उपर दर्पिता प्रिया राजरानी हुई  
 देती है गल बाँह सुभा-सानी हुई ।  
 रोम रोम-में भाव्य-गर्व है भर रहा  
 स्व-पति-भाव्य धनुष्य हृदय है कर रहा ।  
 वे ही कम्पित वृक्ष दृष्टि-में झूमते—  
 रहे रात भर, जिन्हें न पल भर झूमते ।  
 मालव रोपित बीज, वृक्ष बन छा-गया,  
 प्रातः तक फल फूल सभी ज्यों पा-गया ।  
 छाया से अभिभूत फसानुज हो गये,  
 समय, साधु-विचार, शील, सब छो गये ।

प्रात तक हो गया सुदृढ़ निश्चय यही  
 गामव ने जो कहा—कहूँगा मैं बही ।  
 अपना निश्चय कहा-मुसाकर जब उन्हें,  
 कलि विहँसा सद्मान मुसाकर सब उन्हें ।  
 सज्जित हो ले छप धस मित्र हाथ वे  
 राजसभा में गय मित्र के साथ वे ।  
 पुष्कर का व्यवहार वेस उस दिन वहाँ  
 जडवत् सब रह गये जहाँ के ही तहाँ ।  
 उठत होकर वचन नृपति से यों कहे  
 सुन जिनको नृप स्वयं स्तम्भ से ही रहे ।  
 निपघराज के वचन आज तक मैं समी—  
 रहा मानता तात ! की न चूँ तक कभी !  
 रहा सदा मैं दास पिता माना तुम्हें  
 हाँ अपना सर्वस्व एक जाना तुम्हें ।  
 छोटा हूँ मैं इसीलिए यह सब हुआ  
 पर, इस सबका ज्ञान मुझे है अब हुआ ।  
 जिस माँ-से तुम हुए, भ्रम्व मेरी वही  
 मैं हूँ दास-समान भोगते तुम मही ।  
 सुमि भोग का पूरा जानते स्वाद तुम  
 दोगे मुझे न राज्य भत भविष्य तुम ।  
 और मुझ यदि कहूँ तुम्हारे साथ में  
 तो जन मरें भ-दोष हमारे साथ में ।  
 धर्म चढ़ेगा पाप न वह पक्ष इष्ट है  
 भत एक ही माग दोष भविस्य है ।  
 आओ हम तुम आज घूत लोमें स्वयम्,  
 फिर जिस पर जो पड़े उसे भेषें स्वयम् ।  
 आज चुनौती घटस तुम्हें मेरी यही  
 जो भी जीते निपघराज्य भोगे बही ।

## इमपन्ती

अक्ष खेत में रहे सुवक्ष अपार तुम,  
 अक्ष चुनौती करो अभी स्वीकार तुम ।  
 निर्णायक हों अक्ष कि राजा कौन हो  
 पुष्कर यों कह बचन सड़े ये मीन हो ।  
 ऐसा बुद्धबहार अनुज-का बेलकर  
 भीर पूरा उदङ्ग उसे उस्मेक कर ।  
 कुछ विस्मिन्न कुछ क्रुद्ध बचन-रूप ने कहे—  
 वत्स ! मदता कहीं-गई, क्या कह रहे ।  
 क्या-कुछ तुमसे आज किसी ने कह दिया  
 या घोखे से बन्धु ! कहीं कुछ है पिया ।  
 हो बिक्षिप्त-समान ज्ञान लोकर सभी  
 किया राज अपमान भक्त होकर अभी ।  
 सग-दाप ने तुम्हें कहीं क्या-है छला  
 राज्य तुम्हारे लिए, मुझे क्या-है मत्ता ।  
 अपने से मैं निम्न न तुमको जानता  
 प्राण-तुल्य प्रिय अनुज तुम्हें मैं मानता ।  
 जब तक कर-में धनुष बन्धु ! जानो सही  
 बे सकता हूँ जीत तुम्हें सारी मही ।  
 तुम पर यह साम्राज्य सभी मैं बार - दूँ  
 चाहो तो यह प्राण अभी उपहार दूँ ।  
 किन्तु सभी ने बुरा कहा है धूत को  
 भक्त न छोड़ो अनुज ! प्रसंग अपूत को ।  
 केवल फलता धूत-वृक्ष फल नाश का  
 इसमें कहीं विकास, पत्थ यह ह्लास - का ।  
 माना मैंने है कि एक वह भी कला  
 किन्तु यहीं तक कि हो मनोरञ्जन मत्ता ।  
 निष्ठ बन्तु यह रही, सदय ठगना जहाँ,  
 ठगने से तो थपठ ठगे जाना यहाँ ।

मृत्यु नाश अपमान विजित का मूल्य है  
 जैता भी हूँ-स्वयं विजित के तुल्य है।  
 अथम धन हाँ प्राप्त व्यसन धेरें उसे  
 और दूर से रोग-गोक हेरें उसे।  
 बाधु ! अभी तुम घूत-घुनौती दे चुके  
 सिंहासन-अपमान-दोष सिर से चुके।  
 वापस ले सो घत घुनौती तुम सभी  
 सिंहासन सँ पुन लमा माँगो अभी।  
 प्रथम-दोष है घत लमा मिल जायगी  
 और नहीं तो दण्ड-बरा हिम जायगी।  
 भूपति को मिल जाय घुनौती यदि कहीं  
 कर ले उसको सहन विवश वह नृप नहीं।  
 अश्रद्धा-हो वह राज्य-चिह्न-सब छोड़ दे  
 जटा धार कर प्रेम अनस-से जोड़ दे।  
 विश्व-सिलित से सभी समासद सुन रहे  
 मन ही मन परिणाम कुलव ये सुन रहे।  
 पुष्कर की यह बुरी सगी अनरीति सी  
 राज्य अहित से भरी हृदय-में भीति-सी।  
 भूपति के सुन प्रीति-वचन उपदेश भी  
 हिले न पुष्कर कहे हुए ने मद्य भी।  
 बीस रही थी आज उसे निपणक जय  
 दुहराई फिर वही घुनौती हो अभय।  
 नृप ने सोचा इस ध्यान क्या-हो गया  
 पाप-मक सँ लिप्त ज्ञान क्या-सो गया।  
 कहे अनुज से विविध वचन फिर प्रीति के  
 और दिये मय चन्द्र-बन की रीति के।  
 साम-दाम या दण्ड भेद-की सी कारण  
 पुष्कर की कर सके न पर दुर्मति-हरण।



भय सेस में रहे सुदण अपार तुम  
 भय चुनौती करो, अभी स्वीकार तुम ।  
 निर्णायक हो भय कि राजा कीन हो  
 पुष्कर यों कह बचन सके ये मीम हो ।  
 ऐसा पुष्पवहार अनुज-का देखकर  
 और पूर्ण उदण्ड उसे उल्लेख कर ।  
 कुछ विस्मित कुछ क्रुद्ध बचन-नृप ने कहे—  
 वत्स ! भयता कहीं-गई क्या कह रहे ।  
 क्या-कुछ तुमसे आज किसी ने कह दिया  
 या बोले से बन्धु ! कहीं कुछ है पिया ।  
 हो विक्षिप्त-समान ज्ञान सोकर सभी  
 किया राज-अपमान मत होकर अभी ।  
 सुग-दोष ने तुम्हें कहीं क्या-है छला  
 राज्य तुम्हारे लिए, मुझे क्या-है मला ।  
 अपने से मैं भिन्न न तुमको जानता  
 प्राण-तुल्य प्रिय अनुज तुम्हे मैं मानता ।  
 जब तक कर-में बन्धु बन्धु । जानो सही  
 दे सकता हूँ जीत तुम्हें सारी मही ।  
 तुम पर यह साम्राज्य सभी मैं बार दूँ  
 चाहो तो यह प्राण अभी उपहार दूँ ।  
 किन्तु सभी ने बुरा कहा है धूल को  
 मत न छोड़ो अनुज ! प्रसंग अपूत को ।  
 केवल फसता धूल-युद्ध फस नाश का  
 इसमें कहीं विकास पन्य यह ह्रास का ।  
 माना मैंने है कि एक यह भी कसा  
 किन्तु यहीं तक - कि हो मनोरञ्जन मसा ।  
 निष्ठ वस्तु यह रही सक्य उगमा जहाँ  
 उगने से तो धष्ट उगे जाना यहाँ ।

मृत्यु, नाश, अपमान विजित का मूल्य है,  
 जेसा भी हौ-स्वयं विजित के तुल्य है ।  
 अथम धन हो प्राप्त, व्यसन घेरें उसे  
 और दूर से रोग-शोक हेरें उसे ।  
 दधु ! धमी तुम बूत चुनौती दे चुके  
 सिंहासन-अपमान-दोष सिर से चुके ।  
 वापस ले लो अत चुनौती तुम सभी  
 सिंहासन से पुनः लमा माँगो धमी ।  
 प्रथम-दोष है अतः लमा मिल जायगी  
 और नहीं तो बण्ड-बरा हिस जायगी ।  
 भूपति को मिल जाय चुनौती यदि कहीं,  
 कर ले उसको सहन बिबध वह नृप नहीं ।  
 प्रण्डा-हो वह राज्य-बिह्न-सब छोड़ दे  
 बटा भार कर प्रेम अनल-से जोड़ दे ।  
 बित्र-सिखित से सभी समासद सुन रहे,  
 मन ही मन परिणाम दुस्तद बे गुन रहे ।  
 पुष्कर की यह बुरी सगी अनरीति थी,  
 राज्य अहित से भरो हृदय-में भीति-सी ।  
 भूपति के सुन प्रीति-वचन, उपदेश भी,  
 हिले न पुष्कर कहे हृत् से लेल मो ।  
 दीख रही थी आज उसे निरसक जय,  
 दुहराई फिर वही चुनौती हो अमय ।  
 नृप ने सोचा इसे ध्यान क्या-हो गया  
 पाप-यक न लिप्त जान क्या-आ गया ।  
 कहे धनुज से विविध बपन फिर प्रीति क  
 और दिये मय बन्ध-वध की रीति के ।  
 सोम-गाम या दण्ड भेद-की भी दग्गा,  
 पुष्कर की कर सक न पर दुन्ति-हृत् ।

## रामपत्नी

समझ समझ सचिव समासद सब चके  
 विषे जुनीसी सजे न पर पुष्कर भुके ।  
 नृप-पर भी घब कसि प्रभाव होने लगा  
 हुषा विवर्षित कोष कोष कोने लगा ।  
 बोले-एसे वचन गरब घन-धोप से—  
 भोगेगा धन कुफल भूस । निज शोष से ।  
 पर, सम-धन ही पुरख सेस यह सेसते  
 हानि लाभ कब असम मनुज हैं भेसते ।  
 मैं हूँ राजा भीर तुन्छ है तू घरे  
 मेरे जैसे बता दाव पर क्या-घरे ।  
 राज-पाठ धन-भान्य लगाई ये सभी  
 क्या-है तेरे पास लगा, देखूँ धमी ।  
 है न सही वह बात कि जो मैंने कही  
 गालब की चस-वृष्टि जताती थी यही ।  
 मौन सड़ ये घसप बड़े निलेप-से  
 भर किन्तु उल्हाह वृष्टि-निक्षेप से ।  
 बोले-पुष्कर सभी कोष में ये भरे,  
 प्रकृत बात पर भूप क्षीघ्र धावे घरे ।  
 तुम राजा मैं तुन्छ, सत्य ही तो कहा  
 पर, वह सब पासण्ड तुम्हारा क्या-रहा ।  
 मैं यदि सम-धन नहीं समस्थिति भी न क्या  
 हम दोनों की याद करा । है एक मैं ।  
 एक कदा है भीर रक्त भी एक है  
 निषध प्रतिष्ठा बढ़े एक ही टेक है ।  
 दोनों का अधिकार निषध पर सम रहा  
 तब तुमसे मैं कहो कि कैसे । कम रहा ।  
 सण्ड सण्ड कर यदि विमर्ष इसको करें,  
 मुझे भी है न इष्ट धनित इसकी हरे ।

राज्य न हो निदयस्त, पूर्ण हो दृष्ट भी,  
 निर्णय भी हो जाय, न पथ हो विसृष्ट भी ।  
 यही एक है भाग, सगे सब पण यहीं,  
 बैठे देखें सभी सन्निध, गुरु-धन यहीं ।  
 एक भोर सब निपचराज्य-दासीनता,  
 और उभर बनवास, दासता-धीनता ।  
 पण-बेता ही, सब प्रसन्न निपयेष्ट हो,  
 और विजित को विपिन-वास का वसेष्ट हो ।  
 काटे चीरहु वप दास होकर कहीं  
 जाय यहीं से दूर, सभी खोकर यहीं ।  
 एक वस्त्र दो छत्र साथ से जा-सके,  
 निपच-राज्य का धन न फिर बह सा-सके ।  
 भवधि पूर्ण कर पुन' छूट लेले यहीं  
 जो जीते बह निपच राज्य सेसे यहीं ।  
 और विजित पूर्वोक्त नियम पालन करे,  
 दास बने या विपिन-वास कर दुस्र भरे ।  
 आजीवन क्रम यही चलगा धाज से,  
 कह पुष्कर नृप सबे धर्म मृगराज से ।  
 पुष्कर के कटु वचन सगे विप-सीर से,  
 सभी कोपने बेह न नृप बे धीर-से ।  
 शोधित-सर्प समान उठे फुकार कर  
 गरजा धायस सिंह यथा हुंकार भर ।  
 दीका मुँह पर रखत, हुए दृग सास से,  
 दीस रहे मसराज कास बिकरास-से ।  
 सम्नाटा-सा मरी समा-में छा-गया  
 सया सभी-को अन्त-कि मानों धा-गया ।  
 "रे पामर । तू तनिक नहीं सज्जित हुमा  
 उटा हुमा है भवम भूत" । सज्जित हुमा ।

## ब्रह्मपत्नी

देखू तेरा घूत तिमारी तू बना  
 कुछ भी रहा न ध्यान, सब सम्मुख तना ।  
 देख चुनौती सभी रग क्या-सायगी  
 तेरी कल्पित राग्य मिलि बह बायगी ।  
 सचित्त तुझे था यदपि मृत्पु-उपदेश ही  
 रहता तेरा किन्तु अभीष्टित छेप ही ।  
 सुनो समासद सचिव उपस्थित जन सभी  
 करता हूँ मैं आज यहाँ यह प्रण सभी ।  
 दुष्ट ! ध्यान से इधर स्वयम् तू सुन कथन  
 सुनें मिलित दिग्गम सूर्य चरणी गगन ।  
 किया हुआ प्रण यदि न पूर्ण मैं कर सकूँ  
 तो निज पापी देह न क्षण-भर धर-सकूँ ।  
 मिले न मुझको सु-गति पाप सिर पर बहूँ  
 अपना ही यद्य स्वयं अयद्य बनकर हूँ  
 हो बस बानी एक उसी पर निज-सभी—  
 राग्य-विभव घन-भान्य लगाता हूँ सभी ।  
 यदि परास्त मैं हुआ अभी सब छोड़ दूँ  
 शासन से सम्बन्ध सभी निज छोड़ दूँ ।  
 कहे बतुदश वर्ष विपिन में वास मैं  
 या होकर ही खूँ किसी का वास मैं ।  
 निषध भूमि का धन्य मुझे अग्रह हो  
 एक वस्त्र को छोड़ न कुछ संप्राप्त हो ।  
 साधु जनोचित सभी नियम पालन कहे  
 केवल निज रक्षार्थ सस्त्र बालन कहे ।  
 वैसा ही हो नृपति निषध-साम्राज्य का  
 पूर्णविधि तक भोग करे बह राग्य का ।  
 शतना कह चुप हुए काँवते पर सहे  
 दुश्मका से भीत हुए छोटे बड़े ।

कसि-मुक्त पर मुस्कान मधुर सी छा-गई,  
 मरी सभा-में इधर उदासी छा-गई ।  
 किकर्तव्यविमूढ़ सभी वे रह गये  
 मग्धनिम-सा चला विवश सब बह गये ।  
 मिसा न कुछ अवकाश काण्ड यह रोक दें  
 उन दो में से किसी एक को टोक दें ।  
 बन्धपात-सा हुआ अचानक ही वहाँ  
 बिना घटा की वृष्टि भयानक थी जहाँ ।  
 सैमले भी कुछ लाग पड़े फिर बीच-में  
 पर, तब तक फिर चुकी ईंट की कीच में ।  
 सीर हाथ से निकल चुका था हाथ ! अब  
 चित्र बने रह गये मनुष्य निरुपाय सब ।  
 भावी-नद में विवश स्वय-का धोर यों—  
 सत्यव्रत कर चुके प्रतिज्ञा धोर यों ।  
 भावी से कब कहा किसी का बल चले  
 भावी ने वे सुजन, सौम्य, निरद्वन्द्व, छले ।  
 प्रेरित थे सचिवादि राज्य की भक्ति से,  
 सब ने किये सुयत्न, मरे निज शक्ति से ।  
 गये व्यर्थ पर, धूल रंग प्रस्तुत हुआ  
 निपथ राज्य का नाश-दय प्रस्तुत हुआ ।  
 बर बर भूमा वृत्त उदासी छा-गई  
 अन्त-पुर में शोक निशा घिर छा-गई ।  
 मैत्री ने हो विकस कई प्रतिहारियाँ—  
 भर्त्री नृप को शीघ्र कुसाने नारियाँ ।  
 आतुरता बढ़ पुरष और मेढे कई  
 सार्वे नृप को कुसा युक्ति कुछ कर गई ।  
 और नागरिक चले बहुत से दौड़कर  
 अपना, अपना, काम बीच में छोड़कर ।

इनसे मुझको पूर्णतया परितोष है,  
 यह सब मेरा पाप अनुज निर्दोष है ।  
 इनको या आवेश न पर मैं सह सका  
 प्रकृत बड़ा मे किन्तु लड़ा कब रह सका ।  
 इनको भी ले गिरा सोच मुझको यही  
 असित-बदन निज मभा दिखाऊ क्या-कहीं ।  
 माँगा था यह राज्य इन्हें देता सभी  
 सन्यासी हो विपिन मार्ग लेता सभी ।  
 निज बसोचित कार्य वही आदर्श था  
 तुम सब के ही साथ मुझे सब हर्ष था ।  
 घाटे में मैं था न दूर जाता कुयश्च  
 छुटता यह साम्राज्य हाथ जाता सुयश्च ।  
 और अनुज-हित भी स्व-कृत्स्न की पूर्ति भी  
 स्वय प्राप्त थी मनस्तोष की श्रुति भी ।  
 किन्तु उसका अष्ट सुखद परिणाम था  
 पर क्यों होता सुखद जब कि विधि वाम था ।  
 निन्दा थी जो माम्य लिखी जाती सही  
 बिचि की बहु निपि अमिट न मिट पाती कहीं ।  
 बीरसन का पुत्र कुमारी था बड़ा,  
 अब तो बन रहा यही हाथ । हाथों-पड़ा ।  
 मुझ-पर था जो भाव अनुज पर भार वह  
 करते मुझसे अधिक प्रभा-से प्यार यह ।  
 आमा गया न राज्य वहाँ का है वहीं  
 किन्तु अमर लोकोक्ति हुई अब तो यही ।  
 जिता दिया था राज्य कि धर कर दाव पर  
 पूकेगा जग हाथ ! हमारे भाव पर ।  
 पर अब क्या-हो सके हुमा सो हो गया  
 मिली मुझे अपकीर्ति पुण्य सब भी गया ।

महापाप यह एक हाथ । मैं कर चुका  
 प्रजा-धरोहर राज्य दाव पर धर चुका ।  
 या यह अनुचित लाभ तुम्हारे प्यार का  
 दुरुपयोग कर चुका शुद्ध अधिकार का ।  
 किन्तु धनुज-में मुझे पूर्ण विश्वास है  
 यह मुझसे भी अधिक प्रजा-का दास है ।  
 पूर्ण सुरक्षित राज्य धनु के कर-तले  
 धरणी दे धन धान्य प्रजा फले फले ।  
 मुझे यही सन्तोष और तुम भी करो  
 देकर मुझको लमा सोच अपना हरो ।  
 मे ही धन से निपधराज कहलायेंगे,  
 न्याय इन्हीं से सभी प्रजाजन पायेंगे ।  
 रक्षना मिलकर निपथ प्रतिष्ठा ध्यान तुम  
 धन धूमि का बंधु । बढ़ाना मान तुम ।  
 इसका सकल गर्व मानकर तुम हरो  
 इसके रीते कोष प्राण देकर नरो ।  
 हँस हँस इस पर बंधु ! क्षीस देना बड़ा  
 गिरे एक जन जहाँ अन्य जन हो बड़ा ।  
 यह चन्द्राक्षित ध्वजा सदा लहरा करे,  
 नम-में रह अपसीत सजग फहरा करे ।  
 मैं तो धन जा रहा स्वप्न धनुसार ही  
 होगा धन धनलम्ब तुम्हारा प्यार ही ।  
 जाऊँगा धन कहाँ न यह मैं जानता  
 पर सब समझो सोच न धन मैं मानता ।  
 है यह मेरी विनय न मुझको रोकना,  
 जो कुछ भी मैं कहूँ न इपया टोकना ।  
 राजा हो या प्रजा नियम सब के लिये  
 भोगें सभी धन्य कम जैसे किये ।



जो कुछ मैंने किया मुझे करना पड़े,  
 किन्तु जानसँ यहाँ सभी छोटे बड़े ।  
 जो भी सिर पड़ जाय स-मृद सब भेसना,  
 गिम्ह खेल पर घूत मूल मत भेसना ।  
 राजा को भी क्षमा न अब इसने किया  
 देख रहे तुम कुफल स्वयं इसका दिया ।  
 जन-साधारण इसे सहन फिर क्या-करे,  
 इसका दुष्परिणाम वहन फिर क्या-करे ।  
 सोचे समझे प्रजा, पाठ इससे पड़े  
 कोई भी भव मूल न इन पथ पर बड़े ।  
 मुझसे ही आसोक विश्व पा जायमा,  
 भृत्य कुसों का नाश न होने पायगा ।  
 तो भेष यह पाप पुण्यवत् हो सभी,  
 हुँगा मैं प्रति धन्य कसुप गत हो सभी ।  
 मूल तुमको मे न रही चाहे जहाँ,  
 मूल न जाना बन्धु ! मुझे तुम भी यहाँ ।  
 दरस-बरस फिर कहीं अवधि को पूर्ण कर,  
 दो मुझको आशीष बन्धु ! भव विघ्न-हर ।  
 बीत रहा है काल न अब है कल मुझे,  
 भरसों-सा लग रहा आज पल पल मुझे ।  
 मातृ-भूमि का स्मरण क्षान्ति देगा मुझे,  
 पर, तुम सब का प्यार सान्ति देगा मुझे ।  
 अग्रज हैं मैं धन अनुज का भी किया—  
 भोगूँगा स्वयमेव यही कहता हिया ।  
 राज्य करें ये इन्हें सभी सुख प्राप्त हो,  
 मुझे धन समाप्त निषध का अब बहो !  
 सीमा है प्रति दूर भगेगा वह समय,  
 है हाँ, मेरी एक धीर सधु-सी विनय ।

अन्त-पुर मे है निषिद्ध जाना मुझे,  
 मैमो-दशन सुलग न यों-पाना मुझे ।  
 प्रतिहारी ! तुम कहो वहाँ आकर सभी  
 क्षमा करें वे मुझे, भूल दुष्कृत सभी ।  
 रहें हृष-से सदा यहीं सन्तानपुत्र  
 धरें धर्म का ध्यान सदा सम्मानपुत्र ।  
 यह सो कह मट मुकुट मनुज सिर पर धरा  
 बाणों से मृष-कण्ठ अवागव अत्र भरा ।  
 रोते थे सब वहाँ मनुज जो सुन रहे  
 विक्रम अघोमुख सखिब आदि सिर धूम रहे ।  
 अस्त्रामूषण मृष उतार-कर धर रहे  
 रोकर साग्रह मनुज निवारण कर रहे ।  
 'जातें देंगे तुम्हें न हम है नृप' कहीं  
 राग्य छोड़ दो विन्तु रहो हम-में यहीं ।  
 विसल विसल कह रहे, अके थे जन अके  
 करते थे प्रतिरोध पकड़ कर जन अके ।  
 हिमा सबे पर सनिक न प्रण से धीर को  
 मिला कर भी सब रोक न पाय धीर को ।  
 सरयवत की एक उचित सब थी यही,  
 'अचन कर्त्तगा पूरा' युक्ति सब थी यही ।  
 रहा एक ही वस्त्र उतारे धीर सब  
 राग्य-चिह्न कर अलग धरे उस ओर सब ।  
 पर कामाहल हुआ सभी यह क्या-धरे  
 सभी धरते मनुज उधर विस्मय-धरे ।  
 ऊपा-नी सब वहाँ भीमका धा रहें  
 निषिद्ध तमो को, इन्दु-किरण या पा रहें ।  
 हुआ अन्त्रमुख विनत प्रमा भों-दूटती  
 सभोमध्य तारिका सहज ज्यों दूटती ।

उसे देखकर सभा-शोक प्रपहत हुआ  
 फैला दिव्य प्रकाश तिमिर ज्यों गत हुआ ।  
 प्रभल-मूर्ति जन उसे दसते ही रहे  
 रूप-सूषा प्रमिषेय नेत्र ये पी-रहे ।  
 वस्त्रावृत ये अङ्ग कान्ति भी फूटती  
 पुष्पों-में से गन्ध समक ज्यों छूटती ।  
 मिलता था पथ धन्य मानकर भाप-को  
 मूस रहे ये समी उपस्थित ताप-को ।  
 सहकर अपना भार न वह कुछ भी भुकी—  
 हेमप्रता भी पहुँच निकट नृप के रुकी ।

जो कुछ बीता यहाँ सभा-में वा सभी  
 समाचार सुन चुकी प्रथम ही वह समी ।  
 अन्तपुर में मचा पूर्ण आक्रोश वा  
 ये सब रोजन-व्यस्त किसे । तब होश वा ।  
 वा ध्रुव निष्पत्य उसे अटल प्रण है समी,  
 बीरों के व्रत भग हुए हैं क्या-कभी ।  
 यही सोचकर घोर धैर्य को धारकर  
 अब वह उद्यत हुई लोक-नय पार कर ।  
 वा नैमीभादेष्ट दिव्य-सा रथ जुटा  
 इन्द्रसेन निभ पुत्र इन्द्रसेना सुता—  
 रथ-में बैठा मेज न्ये मानस विदा  
 भातुरता-की शोक-पूर्ण यह भी विदा ।  
 कुण्डिनपुर ही बना उन्हें सब ध्येय था  
 गई केशिनी साथ सुत बाण्येय वा ।  
 जो कुछ भी यह हुआ न वा सब व्यर्थ ही  
 निभ का प्रस्तुत निया दुर्गों व व्यर्थ ही ।

उनको बसते देख भीमबा रो पड़ी  
 मुच्छाघों-सी भगी कपोलों-पर भड़ी ।  
 रोते रोते, लिपट गोद में वे भरे,  
 हृदय-क्षण्ड-से क्षण्डहृदय पर ये घरे ।  
 और कहा-मूँह पोंछ, बत्स ! जाओ अभी  
 घात जीव ! भव-विभव सौख्य पाओ सभी ।  
 घहर रहा है यहाँ दुखों-का सिन्धु-सा  
 जाने, जब मुझ देख सकूँगी इन्दु-सा ।  
 रोक रहा कतव्य मुझे निज स्नेह भी  
 जहाँ प्राण यह वहीं रहेगी देह भी ।  
 मैं पति-मद-अनुगता न बुझ से मय मुझे,  
 प्राण-मर्वाँ मैं प्राप्त सदा है जय मुझे ।  
 तुमको रक्षकर साथ न रहती ताय मैं,  
 होती तब हा-स्वार्थ ! सनाथ अनाथ मैं ।  
 बनी हुई वे स्वयं समूह उदासियाँ—  
 हटा रहीं थी उन्हें पकड़कर दासियाँ ।  
 आवश्यक आदेश सामयिक ल कई,  
 बच्चों को ले आत बहिनी थी गई ।  
 लिये अपरिमित-भार दीखते बाण-से  
 बही प्रदव बढ़ रहे आज निष्प्राण से ।  
 धूमी जब भीमबा पोंछकर नेत्र-जल  
 दीख पड़ा यह सभी उन्हें मुरझ-कमल ।  
 साधुबदन साकाराँ कुमुदनी थीं सबीं,  
 सोदक पक्क जल सुन्य किम आँखें बड़ीं ।  
 रोकर बोसीं—हाय ! हुआ यह बहन ! क्या,  
 अपने हाथों हुआ स्व-मूल का बहन क्या ।  
 आकस्मिक यह हुआ अभाग्य क्यों-घरी !  
 बूब-रही मेमभार हमारी क्यों-तरी ।

जाने दूंगी तुम्हें न मे गृह त्याग कर,  
 जीयगी हम युगल एक के भाग पर।  
 वे भाई क्रुद्ध करें किन्तु, हम बहन हैं  
 एक भाग के भोग हमें सम सहन हैं।  
 ठान चुको जो आप जानती हैं सभी  
 बहन ! तुम्हारा घम मानती हैं सभी।  
 छहरो यह दुल-थटा स्वयं फल जायगी  
 दुष्टता जो घटी अभी हट जायगी।  
 आया जितना शीघ्र दोष कुल में यही  
 उतना ही यह शीघ्र हटे जानों मही।  
 बहन ! मुझे परितोष तुम्हारी ओर से  
 पर मे भव फिर चुकी विपद घन-ओर से।  
 यह न किसी का दोष भाग्य का ही कहो  
 जाओ वीरज धरो प्रिये ! सुख से रहो।  
 है न मुझे भवकाया अधिक भव क्या-कहूँ  
 दुल को उनके साथ समझ सुख-सा रहूँ।  
 कह इतना बह भीर सभी को दग कर  
 राज-समा में गई नियम को भग कर।  
 रोक रहीं थीं उन्हें रुदित दासी भली  
 किन्तु न पाई रोक स्वयं क्षिप्त भी बली।  
 जिस घर-में भी विपद-पाद पड़ते महा  
 उनका प्रथम प्रहार मारियों-पर रहा।  
 शोकोदक स पूर्ण घटा-सी वह बली  
 लिए जैसे सकल्प बाधु बनकर बली।  
 नृप-गिरि स ज्यों समा-मध्य टकरा-यड़ी,  
 रका वेग तब नहीं मगी अचिरस झड़ी।  
 भावों ही से कहा नाव ! क्या-कर चुके  
 कुल-की भवस मु-नीति स्वयं ही हर चुके।

एक वस्त्र को धार नपति आसीन थे  
 राज्य हीन थे यद्यपि तथापि अवीन थे ।  
 राज्य-बिन्हु से हीन कान्ति फिर भी वही  
 गरज रहा बुल-सिंघु छात्रि स्थिर भी वही ।  
 सद्भाषी को देख वदन निज नत किया  
 मानों निज अपराध स्वयं स्वीकृत किया ।  
 'ठठो नाथ ! यह सोच न तुमको सोहता  
 विपिन-वास भव माग हमारा जोहता ।  
 जो क्रुद्ध भी हो गया जान मैं सब चुकी  
 होना था अनिवाय मान मैं सब चुकी ।  
 पश्चात्ताप परतु रहेगा यह मुझे  
 आजीवन सन्ताप दहेगा यह मुझे ।  
 क्यों न समय से पूव यहाँ मैं आ-सकी  
 निकल गई वह बड़ी न उसको पा-मकी ।  
 गुरु-जन धीर अमात्य सभासद सब यहाँ,  
 सुजनोचित-गुण-वारि-पूर्ण-मद अब यहाँ ।  
 सब के रहते हुआ यहाँ दुष्कर्म है  
 पूछ रही मैं यह क्या-इनका धर्म है ।  
 देवर को यन्नि हुआ राज्य से स्नेह था  
 आर्यपुत्र - मैं हुआ इन्हें सन्देह था ।  
 माँगा आकर मुकुट इन्हें भी यत्रणा  
 क्यों-न सभा में समी उचित वी यत्रणा ।  
 छोटों का अपराध सबदा सम्य है  
 धीर बड़ों-का माग महा-दुग्म्य है ।  
 क्यों-न इन्हें यह राज्य दिया तब प्रीति में  
 बन्ना न पाई सभा तुम्हें धनरोति-स ।  
 देवर ! तुम तो कहाँ हुआ क्या ध्यान यह  
 गया अधानक कहाँ तुम्हारा ज्ञान वह ।

हुआ तुम्हारा अहित न कुछ मुझसे नहीं  
 भाभी-सं भी कहा-भाभीप्रियत क्यों-नहीं ।  
 हात ! एक क्या-निपथ यहाँ तुम पर तभी—  
 बारा जाता राज्य महान् विदम भी ।  
 पर तुम सब निर्वोप पवन-गिरि सम-सुयश  
 आई मैं ही यहाँ सूत होकर नृ-यश ।  
 मैंने ही वा देव-वर्ग कोषित किया  
 आज उसी ने पूर्व बैर कोषित किया ।  
 सुम-मति पर जो आज तिमिर यह छा-गया  
 सत्कृत में अपकीर्ति-दोष यह आ-गया ।  
 किन्तु जानमें देव और सुनमें सभी  
 निश्चित-यथ से विरत न मैं हूँगी कभी ।  
 देवों-का वरदान तुल्य अभिषाप भी  
 होता स्वयं अनन्त दुरन्त पिताप भी ।  
 अतः अभी दुःख-अपस सामने खेप है  
 उसी अपस का राज्य-गमन हो लेख है ।  
 उद्यत हूँ मैं उसे काटने के लिए,  
 पथ-में कैसे दूँ छूटने के लिए ।  
 पत्नी नाथ ! अब राम वहाँ भी ले चले  
 वर का यह राज्य इहँ फूले फूले ।  
 शिशु तो गम विदर्भ केदिनी भी गई,  
 तरु-तप्त की पत्त रथो राजधानी गई ।

‘जाता हूँ मैं स्वयं देखि । तुम बस रहो  
 मैं तो वह ही गया न अब तुम तो बहो ।  
 नेपथ्यलक्ष्मी ! करो राज-सुख गोग तुम,  
 बंधर्भा हो नहीं विपिन के योग्य तुम ।  
 अपना व्रत मैं स्वयं सुमुक्ति ! पूरा करूँ  
 जो कुछ मैंने किया उस मैं ही भरे ।’

‘प्राण जाय रह देह न यह होगा कभी,  
जो कुछ है अनिवाय वही होगा अभी ।  
पुष्कर पर फिर दृष्टि मगी-सी झल कर  
बोभी-शोकावेग समस्त सँभाल कर ।  
राज्य करो सभ्राट् ! हमें अब वो विदा  
पर ऐं ! यह तो अभी तुम्हारी सम्पदा—  
पहने हैं आभरण वस्त्र बहु-भूष्य भी  
है अभीष्ट वस एक वस्त्र प्रिय-नुत्य ही ।  
इतना कह आभरण मिला करने सगीं  
या-ज दधक-हृष्य खिन्न करने सगीं ।  
पुष्कर नत-मुख भीन बख-भासीन थे,  
मानो जिह्वा भी न, हृदय-सं हीन थे ।  
कलि का पूर्ण प्रभाव किये अवरोध था  
क्या-कुछ यह हो रहा न इसका बोध था ।  
और सभी प्रति खिन्न खिन्न से हो रहे,  
भर भर पड़ते अथु, कसप कर रो रहे ।  
कोस रहे थे सिसक सभी, गत-वास को  
ठोंक रहे थे विसस बिसस हृत्-मांस को ।  
यदपि जानते सभी वन्द्य पति भक्ति को,  
रोक रहे कर-बद्ध तदपि उस शक्ति-को ।

मठ जाओ हे देवि ! न नृप भी आर्यगे,  
राज्य गया हो जहाँ न जिसको पार्यगे ।  
देंगे तुम पर बार निषध शत शत हमी,  
पूजें नित उठ तुम्हें यहाँ हो मत्त हमी ।  
यदि दबी तुम गई यहाँ फिर क्या रहा  
ध्याम ज्ञान सम्मान हमारा सब वहा ।  
वन-में यदि तुम गय साथ हम आर्यगे,  
बिना तुम्हारे मेघ वन क्या पार्यगे ।



हम पर जो धन धान्य बसावल मान भी—  
 पद पचापित आज तुम्हारे प्राण भी ।  
 'रोको मुझे न भद्र ! न अब रहना मुझे,  
 सम्राज्ञी एक भार्ये यही कहना मुझे ।'  
 'तुम बाधो मैं रूँ ! न पष प्युत हो सकूँ  
 यह मेरा साम्राज्य न इसको सो-सकूँ ।  
 निर्मूषण थी वस्त्र-मात्र तन पर रहा  
 किन्तु, पूर्ण साम्राज्य घटस मन पर रहा ।  
 सब ने निज कर्त्तव्य उचित पूरे किये  
 पर वे समग्र दुःख सभी को चत दिये ।  
 तीर्थों का जल-माष साथ वो वस्त्र वे  
 और देह पर बही मात्र वो वस्त्र वे ।  
 नृप साधक बन चमे सिद्धि वह हाथ भी  
 राज्य गया पर राज्य सुलक्ष्मी साथ भी ।  
 विवश प्रजा रो रही पथों में भी डटी  
 'हाय राम ! क्यों आज न यह चरती फटी ।  
 पुष्कर ही वे राजसभा में बस वहाँ  
 भूतिमान वा स्वयम् कि असमञ्जस वहाँ ।  
 रोत धोते छोड़ सभी-को वे गये  
 हँसी खुसी भी-साथ निपथ-की ले गये ।

निपथ रहा निर्जीव-ही निवस चुक वे प्राण  
 पर, कसि-मुक्त पर वह उजर छिन्न गई मुस्काम ।

## दशम सर्ग

जाते थे वे धमे विपिन-कण्ठों-को सहते  
 किन्तु न अपना दुःख दूसरे से थे कहते ।  
 गगन-स्पर्शी निकल चुके सुनिये त समी वे  
 छूट चुके धन-धाय-पूण अब खेत समी व ।  
 उनका तो वन ध्यान पाप प्रक्षालन में था  
 सत्य-व्रत का मान पूण व्रतपालन में था ।  
 थी वह राज्य-समृद्धि न पर उनका मन हुरती  
 तपोधनो-से अटक सक है अब । धन भरती ।  
 पड़ता ऊपर धूप जलाता जल कर भूतल  
 मात्रा से परिश्रान्त क्षुधा भी करती व्याकुल ।  
 घुमते पद-म भूल भूल-सी उठती मन-म  
 बदल रही था रंग प्रकृति अपना क्षण-क्षण में ।  
 यहाँ धूप तपस्वी वहाँ छाया था जाती  
 झर ठंड सग रही उष्णता उधर सताती ।  
 थककर जात वठ भीर फिर उठकर चलते,  
 चलता पड़ता विषय यद्यपि थे पाद मचलते ।  
 तीर्थों का जल-भाज साय का ही पी पीकर  
 जाते थे वे बड़े माय्य-बध ही जो जीवन् ।  
 यदर्थी की वधा रखनी स्थिर न सबगी,  
 धर स मलों-रूप अभागी तन्पि पकगी ।  
 मुरझापी-मी सदा हाय ! पासा था छाया  
 फिरे हवा-में उड़ी दिम्ब वह धर की माया ।  
 निज छाया सा हुई पड़े परा में छाया  
 नृप ने आहा बहुत कि वह कुछ फस ही पास ।

पर यह पति से पूर्व न कुछ भी सा सकती थी  
 उस निरीह को देख स्वयं करुणा सकती थी ।  
 भङ्ग पादाङ्गुल राग भूलि में मिल जाते थे,  
 समझ स्वयं को धन्य रखकर स्निह जाते थे ।  
 पद-से कंटक काढ़ सरल सी रो पड़ती थीं  
 ताप-तप्त हिम-शिखा सरल सी हो पड़ती थीं ।  
 चमते चलते उन्हें कई दिन भीत चुके थे  
 वेह सक्ति के कोप निरन्तर रीत चुके थे ।  
 पथ कष्टों से विदमित भत-वर्षा हृमा या  
 बन्म-भूमि का मल उन्हें भ-माह हृमा या ।  
 रहा न उनको भेद दिवस में और निशा-में  
 बड़े हुए जा रहे सु-लक्षित एक दिशा-में ।  
 वेदमी को भ्रात-देस नृप हत-से होते  
 देने का अवसम्भ धूम कुछ नत से होते ।

धरो धैर्य है प्रिये ! मदय भ्रा-जाने को है  
 वहाँ भरप्यज भक्ष्य कन्द-फल खाने को है ।  
 गति के साथ पड़ा स्वर भी मीमी-का बीमा  
 स्वामी कितनी दूर निपथ-की है भय सीमा ।  
 है क्या-कुछ या-मदय जिसे हम सा-सकते हैं  
 हो न निपथ का किन्तु निपथ-में पा सकते हैं ।

प्रिये ! भाज ही हमें और बस बसना होगा,  
 बठरागम से भाज भाज ही बसना होगा ।  
 करके हम भाखेट यद्यपि कुछ सा-सकते हैं  
 और उसे सा मुक्ति लुभा-से पा सकते हैं ।  
 होगा पर अन्याय बेध तापस का धरके  
 लुभा-पूति यों करें जीव-हत्या हम करके ।  
 है अवध्य निर्दोष, उन्हें हम क्यों-मारेंगे  
 कर पर-वेह-मिपात न हम यह तन धारेंगे ।

निर्दोषों-को मार उदर जो अपना भरते  
 निश्च-कार्य, अम-चोर भाततायी ही करते ।'  
 'पाप क्षान्त हो नाथ ! न था यह मेरा कहना  
 मुझे स्व-दुःख से अधिक दुःखद पर-का दुःख सहना ।  
 पाद-प्राप्ति से पूर्व बहुत उपवास किये थे  
 देव-मूर्ति के निकट जागकर वास किये थे ।  
 और आज जब स्वयं प्राप्त हैं ये पद मुझको  
 सब दोगे उपवास न थे कुछ अब गद मुझको ।  
 किंतु हाय ! यह चुभा भूल' रो-पकीं अचानक  
 सून्धित होकर गिरी दृश्य था बड़ा भयानक ।  
 दिया मृपति ने भूम तुरन्त सहारा उसको  
 आँसों-में भर भय, स-शोक निहारा उसको ।  
 बैठ गये भर उसे गोद में कर मुख नत-सा,  
 गगन-मङ्गल में लगा चन्द्रमा अस्त-स्त-सा ।  
 जल के छीटे दिये हवा की झजनाञ्जल-स  
 हुमा विगत-सा ताप, नेत्र थे खुले कमल-स ।  
 सजग प्रिया-को देख प्राप्त कर तह-की छाया  
 से नृप ने बहु बोध, उठाकर उन्हें लिटाया ।  
 'प्रिये ! कर चुकीं पार निपच-सीमा-शुर्गमता  
 तुम्हें धन यह धन्य तुम्हारी अतुलित-क्षमता ।  
 देखो, सम्पुत्र सु-मुनि ! वृक्ष धू रहे गगन को  
 करके रवि से होड़ दिये हैं छाया बन-को ।  
 झूझ रहे हैं बिहग सोमते हैं जलधर भी,  
 होता है आमास वहाँ है मुन्दर सर भी ।  
 जलकर बस अब हमें वहाँ-तक ही जाना है  
 ठहर वहीं विद्याम प्रिये ! कुछ दिन पाना है ।  
 आधो बैठा तुम्हें पीठ-पर अपनी ने-भूँ  
 करो तनिज हग वन्द लेस मन्त्रों का लेख'

अण भर में ही वहाँ स्वयं को तब तुम जाना  
 रही न तुम में शक्ति कटिन है वैसे जाना ।  
 "नाथ ! पीठ पर नहीं मुझे बस साथ चाहिए  
 प्रिय-संबल के हेतु स्व-सिर पर हाथ चाहिए ।  
 ठहरो धोबी घोर शक्ति सञ्चित होने दो  
 निज पद-श्रम से मुझे न यों बञ्चित होने दो ।  
 धार्ष्ट्य है सेवार्थ न मार झूंगी स्वामी ।  
 मधु बनकर ही रहूँ न क्षार बनूगी स्वामी ।  
 धीरे से यों कहा मूँद हग सेट गई फिर  
 बैठे थे नृप मौन धीर मन-भी बा अस्थिर ।  
 सन्न रहा था उन्हें सग रानी का जाना  
 पुड़ियों का बा बेल न पूर्ण अवधि का जाना ।  
 वर्ष चतुर्वंश ओह ! कष्ट प्राणात्क माना,  
 है न प्रिया के योग्य पार उनसे पा जाना ।  
 छाया सी है शेष अभी कितने दिन बीते  
 हुए हाथ दुर्देव ! तुम्हारे ये मनपीते ।  
 सोच सोचकर सूप हुए थे पानी पानी  
 सब तक होकर स्वस्थ ठनिक उठ बैठी रानी ।  
 धीरे धीरे जमी, स्व-पति से सबल पाती  
 देखी सम्मुख भीम स्वच्छ-जल से सह्यती ।  
 सिले कमल से जहाँ मुदित जलप्रोव सभी थे,  
 बेल धनुषर वहाँ धीक उद्ग्रीव सभी थे ।  
 पर, नृप-शान्ति निहार उन्होंने चिन्ता छोड़ी,  
 विस्तृत थी मम-सुस्थ भीम वह संज्वी चौड़ी ।  
 "धन्य सुमुख ! तो इधर निपथ की सीमा भीती,  
 बहुत दूर प्रियसमे ! यहाँ से अब वह बीती ।  
 अब हो तुम निर्बन्ध करो जल पान यहाँ-पर,  
 किन्ता है रमणीक सुख यह स्थान ममोहर ।

पप धम को कर दूर, राक्षि भी सञ्चित करसा  
 सपोवत ! कुछ काल यहाँ स्वच्छन्द विचरसो ।  
 यों कहकर नृप बन्ध मूम-फल कुछ मे भाये  
 कर हुस्का सा स्नान उन्होंने वे फल आये ।  
 देत स्वच्छ सी सिखा जमाया उस पर घासन  
 गया निषध यन्त्रि जाय मिसा यह वन का घासन ।  
 रानी तो सो गइ किन्तु नृप सो न सके थे  
 चिन्तायें थीं व्याप्त जिन्हें वे सो न सक थे ।  
 रह रह मधुर अतीत दृष्टि क आगे आता  
 उठे हृदय में भूस न उनको सोना भाता ।  
 जैसे जैसे विवश बड़ी कुछ काल दिताया  
 पैरों के बण भरे देह ने बल-सा पाया ।  
 एक निवस नृप उत्तरीय को छोड़ किनारे,  
 उतरे जल-में स्नान-हेतु कुछ गोते मारे ।  
 समस्त वस्त्र को मध्य, चील से उड़ी गगन-में,  
 राज्य-नादा मा ही दुर्ग नृप ने माना मन-में ।  
 धरे दुष्ट विधि वाम ! न तू यह भी सह पाया,  
 जान सका है कौन ! असजित तरी माया ।  
 अब वे आगे-बड़े विपिन में समय बिताते  
 सात वन फन मूल मौक्त होते सो जाते ।  
 दो घोड़ी ही दोनों का तन डीर रहीं थीं  
 छिद्रों में न देह मुक्त-सा भौंक रहीं थीं ।  
 दोकोन्धि के पार भये धीरज को भरते  
 बीत गया बहु काल उन्हें यों-वही विचरत ।

धी वन की यह एक रात्रि कुछ हुई धँपेरी  
 मिसा भटवता उन्हें अपानक एक अहरी ।

मूख प्यास से दुस्ती बरे भी उसे उदासी  
 कहा, पूछने पर उसने हूँ निपच निवासी ।  
 सुना निपच का नाम नृपति-सन-मन सिस आया,  
 बड़े भाम्य-से आज स्व-जन्म का दर्शन पाया ।  
 कर उसका सत्कार बय-सद-मुष्य-जनों-से  
 किया पूर्ण परितुष्ट जसालिक मधुर फलों-से ।  
 टिका रात-में वहीं धेरी पाकर अर्चा,  
 बी बहु बाते चली छिड़ी फिर नैपच-बर्चा ।

कहो मद्र ! क्या-हान देव का आज तुम्हारे,  
 होंगे वही प्रसन्न निवासी अब तो सारे ।  
 बड़ा अभाग निपचराज था दुष्य-गामी,  
 समी जुए-में जिता हुआ जो कामन-गामी ।  
 सुना साथ से गया अथम वह रानी को भी  
 निकला उसका अनुज अमर बड़ा ही सोमी ।  
 अन्ध ही यह हुआ कुफल नृप ने जो पाया  
 रानी भी निर्दोष उन्हें क्यों-व्यथ सताया ।  
 बाहर जैसे बोट तड़प उठता है प्राणी  
 क्यों-उठ बैठा तप्त रेंधी भागत की बाणी ।  
 कष्ट-परिणत किया संभस मानों वह भीला,  
 है न विश्व-में कहीं नृपति, नमराज घरीला ।  
 यद्यपि है यह सत्य जुमा नृप ने था जेमा,  
 किन्तु न उनका दोष बन्धु ! मूख था उस जेसा ।  
 इसके पीछे छिपी हुई वह एक कथा है,  
 जिसके कारण आज निपच को प्राप्त व्यथा है ।  
 कुण्डिनपुर में हुआ स्वयंवर रानी का जब,  
 हुए देव भी बिसस उसी के पाने को जब ।  
 साम-शाम या एण्ड मेद करके सब हारे,  
 पा - न सके वे किन्तु भीमजा-को बेचारे ।

निपधराज की प्राप्ति मधुर देवी-का सपना  
 समझ यह अपमान मानिनी ने तब अपना ।  
 बैदर्भी तब क्रुपित प्रगट थी देवी कासी  
 दुरा सूरों-को कहा सुना है थी थी गाली ।  
 निपधराज को छोड़ अन्य को वरतीं ही क्या—  
 राजसुता थीं सती-शक्ति वे डरतीं ही क्यों ।  
 क्रुपित देव वे भन उन्होंने नृप-भक्ति केरी  
 सेल गये जो जुधा रका कह तनिक भहेरी ।  
 भरकर सम्भा द्वास लगा फिर धूत सुनाने  
 हाँ फिर, साहस किया बन्धु । दमयन्ती माँ-ने ।  
 पहुँच उन्होंने वहाँ समासद सब फटकारे,  
 देव नृपति की ओर आभरण सभी उतारे ।  
 अपने हाथों मुकुट अनुज के सिर पर रखकर,  
 दोनों ही बल पडे रोकते सभी बिसल कर ।  
 चलते चलते हुई महीपति की जो बाणी  
 जन जन में वह गूँज रही बनकर कम्पाणी ।  
 दोष न इसमें पुष्कर का भी है कुछ भाई !  
 यद्यपि समझे प्रथम सभी ने व धम्याई ।  
 साधु पुरुष व सोम न उनको है छू पाया  
 नायाबी है देव पिरी यह उनकी भाया ।  
 अप्रज का सम्मान पिता-मम वे करते वे  
 ईश्वर-सम ही मान सदा उमसे डरत थे ।  
 सुना है कि था एक मित्र जिसने तब आकर,  
 रज डाला सब काण्ड उन्हें बम हेतु बनाकर ।  
 कहते तो हैं लोग धूत-में छल गये वे  
 कुछ भी हा पर वस्त्र-जोष हा धमे गये व ।  
 रके न नृप जन रहे राकते सभी रन्ति व  
 सत्यव्रत हैं भूप गय व्रत-याजन हित व



हाँ-यह सब सुन बेस दुखी थी छोटी रानी  
 घर-में हो वे पड़ी रहीं दो दिन कस्याणी ।  
 पिया न जल तक तनिक न वे कुछ बोली चारों  
 बिना बहन के उन्हें काटता था घर साखी ।  
 दो दिन पीछे उठी चली वे भरी घटा-सी  
 राज्य-सभा में गई दमकती दिव्य-छटा सी ।  
 झूठर पति-के चरण ध्यु भरकर यों-बोली  
 भरी न होगी माय । अभी यह रीती झोली ।  
 यह तो अपनी क्षेप सम्पदा शीघ्र सेमानो  
 बन्दि जनों से यज्ञोगान सोत्साह करानो ।  
 कहती जाती भ्रमण भ्रमरण रखती जाती  
 सिसक सिसक रो रहीं बेसकर फटती छाती ।  
 दमयन्ती ने जहाँ उतारे निज धातूपण  
 पटके उसने वहीं समझकर निज सब रूपण ।  
 और स्व-पति ने कहा आज तो कोप भर है  
 कहो किन्तु सम्राट् । मुकुट क्यों भ्रमण भर है ।  
 मन के तुल्यकल्प तुम्हारे सज्जित हैं सब  
 किन्तु पितर तो आज-मिन्तु-में मज्जित है अब ।  
 पतिव्रता ने साथ तुम्हारे मर-सकती है,  
 जग-भर का दुख-दय धीम पर घर सकती है ।  
 इस दुष्पथ-में नहीं पैर, पर अपना दूंगी  
 यह दुष्कृत है मैं न मागिनी इसमें दूंगी ।  
 अन्धमार्जित राज्य जसाकर राक्ष करेगा  
 गये प्राण तो क्षेप रही अब सास हरेगा ।  
 ज्वलित अग्नि-से मोद मामकर मैं खेजूंगी,  
 सोंगों-का अपवाद स-हर्ष सभी खेजूंगी ।  
 विषम-मरक-के-साप सभी मैं सह सकती है  
 किन्तु, मैं अब क्षण एक यहाँ पर रह सकती हूँ ।

राज्य-कु-मिथ्या जिये कि समझ था भ्रष्टाई  
 टगे गये हम स्वयं पुनी मुक्त-पर बन स्याही ।  
 भाई स धम आह ! कौन फिर मर पावेगा  
 नाहि नाहि अब विकट निपथ-में मर जावेगा ।  
 राज-मर की घाग प्रजा-का भी फूँसी  
 बोमें-यही उसक न अब कोयल कूकगी ।  
 नृप-का तो हो गया कपट-स निष्कासन है  
 गये विपिन में सिंह शिकार यह मिहामन है ।  
 नैपथ-मकमी हाम ! विपिन-में साध गहं हैं  
 वेदभी के लिए कपट की बात गई हैं ।  
 हम तो था अनजान न मोषा सपनों-में भी  
 हाना है छल-छद्म राज्य-हित-अपनों-में भी ।  
 मरता ही यह हुआ न पहचान-सकी मैं  
 पिछ-दुक सो बच गया न उसको साम-मकी मैं ।  
 जब तक प्रायश्चित्त न हमका हो-जावेगा  
 चन्द्र बल का कम्प न जब तक धो-जावेगा ।  
 नय-मरग स पाप न यह जब तक क्षय होगा  
 जब तक यह साम्राज्य न फिर नैपथ-मम होगा ।  
 म-आवेगी यही न चलकर नैपथ-रानी  
 अपना अपभूत भाग न अब तब पावे मानी ।  
 तब तक क ही सिए, घटम मुक्तकी अब जाना  
 अपना ही प्राण स्वयं मैंने अब माना ।  
 मैं दूना तब कबे पाप दो-का है घोना  
 बना रहे यह तुम्हें तुम्हारा चाँदी-मोना ।  
 बुद्धि-नृप ता भस्म न कर ने यह बिनगाटी  
 छोड़ रहा है यही मधुश घत तुम्हारी ।  
 इतना बड़ हो मन्त्र-दोष निर ग्य-बुद्धि-मामा  
 बुद्धि-नृप को चली-गाइ व नैपथ-माया ।

घर-घर-मे ये गीत उन्ही के भूम-रहे हैं  
गा-गा जिनको निपध-निवासी भूम रहे हैं ।  
सौंस रोक सुन-रहे सजग हा राजा रानी,  
सूख चुका था निकम निरुध्न घाँवा का पानी ।  
राजा का संकोच भीमजा मुक्त की सामी—  
दक्ष न पाया प्रतिधि धिरी थी रजनी काली ।

सरम कथा यह मद्र ! सुनाई तुमने सुन्दर,  
कहो किन्तु निष्पाप मुखन क्योंकर हैं पुष्कर ।

हाँ-प्रब बह भी सुनो सुनाता है ये माई  
मैं जो कुछ मुन चुका न है पुष्कर बयाई ।

राज-वश की बात प्रथम जन मेरे जैसा—  
जान-सका है कहाँ यदपि प्रत्यय है ऐसा ।

पर सच समझो गीत बने जब ये घर-घर में  
गाते है घा-वाल बूढ़ सब ऊँचे स्वर-में ।

सय-तासों पर साध भूम गायक गाते है  
सुन जिन को सद्भाव जनों-में मर जाते है ।

हाँ-तो राजा चले गये जब बग-को ऐसे  
पुष्कर ये गभीर भीर सामर हो जैसे ।

होने लगा बिठाप उम्ह नृप-के जाते ही  
समस्त गये निज पाप स-जगता कुछ पाते ही

किमी से न कुछ सुना न वे ही ये कुछ बोले—  
पिये-रहे वे तरल गरम-सा निज-कर बोले ।

सिंहासन-पर धरा मुष्ट वे बठे नीचे  
दो-दिन तक यो-रहे सोचते निज हग-भीषे ।

जब उनको सुष हुई तभी बोझ-चिस्लावर  
करो उपस्थित प्रभो, प्रथम गामव को साकर ।

साभो साधो शीघ्र जहाँ पावे वह पासक  
प्राण-दण्ड दो उस वही हम कुन का घातक ।

और मुझे हूँ मुझे, सभी मिल मुझ-पर यूको,  
 ज्वलित अग्नि-में शीघ्र झोंक दो अब मत यूको ।  
 अपने घर-में मैंने ही यह आग लगाई  
 विषम तोर-का मध्य बनाया अपना भाई ।  
 महामार्य ! अब गुप्तचरों-को सत्वर भेजो  
 निषध-सम्पदा विस्तार गई तुम इसे सहेजा ।  
 जैसे भी हो शीघ्र धाम्य को खोजे-सावें  
 उनका यह साम्राज्य उन्हीं के चरण चढ़ावें ।  
 हुई परोक्षा विफल रहा मैं बन अम्याई  
 धन्य तदपि जो सफल रह मेरे ही भाई ।  
 अब कु-मग विष-सम नाशक विष विषम नहीं है  
 नृम-जैसा हत माय्य विद्व-में अधम नहीं है ।  
 दलेगा अब कौन ! हुआ यह असित-वदन है  
 मेरे हित अब निषध, वमा यमराज सदन है ।  
 इतना ही कह सके बहा गयनों-से पानी  
 आ-पड़ुची थी सभी वहाँ पर छोटी रानी ।  
 वह मैं कह ही चुका वहाँ-पर फिर जो बीता  
 चली गई झकझोर उन्हें वे यथा पुनीता ।  
 उनका सभी विषाण विनत हो सहा उन्होंने  
 ये व अधिपत मीन न कुछ भी कहा-उन्होंने ।  
 चली गई जब प्रिया उन्होंने तब हग-खोल  
 भर सम्बा-सा साँस व्यथित धीरे-से बोले—  
 धन्य देवि ! तुम धन्य ! धन्य कुण्डिमपुर-पानी  
 अपने ही मज योग्य किया यह तुमने रानी ।  
 यों-कहकर रा पड़े वह चली हग-जल-भारा,  
 गामन की वह प्राप्ति सगी उनको मित्र-कारा ।  
 जग नम उन्हें जगों में धीरज देकर,  
 भेज दिय सब द्वार मझे-म योग्य कुण्डवर ।

## वस्यपत्नी

बीत गया बहुत काम सोजकर सभी पके-हैं,  
 पर निज नृप-का मेद न कुछ भी जान सके हैं ।  
 गालब का भी वृत्त न है भव तक कुछ पाया  
 क्षिपा मरा या कहीं कृपल दुष्कृत का पाया ।  
 कापायिक-ही वस्त्र आज निज तन-पर धारे—  
 धमा-नहे है काम नमानुज मन को धारे ।  
 राजतन्त्र गतिशील रहे यह शिषिल न होवे  
 अपनी विधुत दिव्य विमलता निषध न सोवे ।  
 यही सोच युवराज यत्न में मगे-हुए है  
 सभी सागरिक साथ उन्हीं के जगे-हुए हैं ।  
 सिंहासन नृप-हीन मुकुट तस पर रहता है,  
 मामो निज दुष्यथा मौन-ही वह कहता है ।  
 बेरे रहती उन्हें सर्वना मरी-उदासी  
 बसा रहे युवराज राज-को हो सन्यासी ।  
 धारेंगे ही निषधराज पथ देख रह सब  
 एक सोच पर बिकन सभी-को करता है भव ।  
 नृप प्रण के अनुसार आज विश्वास यही है  
 छिपे-हुए सन्नाह, बने ध्रुव वास कही है ।  
 निज-व्रत-पालन-हेतु सभी कुछ सह-नेगे वे  
 बीर-पुरुष समयानुसार ही रह-संगे वे ।  
 किन्तु विश्व-सुन्दरी अनध वे वीणापाणी—  
 पसी गई है स-हठ साथ उनके माँ रानी ।  
 कमल-कीमत्ता, विमल ध-स्त्रल धजरा-धमरा-सी  
 कसे-होंगी हाथ । राज-महिषी वे दासी ।  
 यदि वे-दासी हुई प्रलय ही हो जायेगी  
 निषध प्रजा निज-वन्दन न अपना निललायेगी ।  
 कट-जायेगी नाक धून-में मान मिलेगा  
 होकर वम्पित भीत भवदा बहुगण्ड हिसेगा ।

जिसकी दासी-जनें कुल-साय उमका होगा,  
 धर्म-पूर्ण भी राज्य पाप-मय उसका होगा ।  
 निपच-प्रजा को यही साथ क्या बसी गइ-वे,  
 कल्प-सत्ता की कसी दुनों-से दली गइ-वे ।  
 पण्डा होता साय न नृप टनकी से जाते,  
 रह जाती ब यही निपच-जन दान पाते ।  
 जान - रह सब वत न पछुरा नृप छाड़ेंगे  
 जिस पय पर बढ़ गय न उससे मुँह मोड़ेंगे ।  
 भेद चले तो सहट राजमहिषी को उत्तरण—  
 सौटा भावें यही मोचकर खोज रहे जन ।  
 जो भी उनको खोज सकगा जन-पुण्यवत  
 बहु-धन देकर उसे करेगा राज्य पुरस्कृत ।  
 हम जैमों-का भाग्य कहाँ वे हमको पावें  
 बीत गई अब धर्म-निशा पण्डा सो-जाव ।  
 कर छोडा बियाम सवेरे ही जानेंगा  
 बिछुडे सगी सभी खोज उनको पावेंगा ।  
 मिसे भाम्य-से मुझे धन्य तुम मुनि हो कोई  
 बाण प्रत्य बनस्य सुधर्म-भुनी हो कोई ।  
 सुधन-तपोवन-मूत तुम्हाग हम-हारी है  
 मानो सुर-कर-वसी किसी कुबुम-भगारी है ।  
 या-कह यह मो गया कहाँ नीरबता धाई  
 नृप-दम्पति ये सजग उहें कब निद्रा धाई ।  
 भागृत होकर भी न परम्पर धास रहे वे  
 सुस-दुख मोंके चमे उन्हीं-में डार रह वे ।  
 उठ प्रभात-में कर प्रणाम वह गया अहेरी  
 नृप भी हुए प्रबुध न करके बुद्ध भी देरी ।  
 अब न निरापद समझ कहीं-रहना निज मन-में  
 रानी को स संग बढ़े नृप प्रागे बन-में ।

मोषा होकर दास सु-तप यह करना ही है  
 आत्म-शोष के साथ पाप यह करना ही है ।  
 किंतु न है निष्पाप, साथ रानी का गृहमा  
 जाता नृप को याद ग्रहेरी का यह कहना ।  
 'कमल कोमला विमल अक्षय्य ध्वजरा-ममरा-सी  
 कैसे होंगी हाय ! राजमहिषी वे दासी ।  
 नृप-को यह हा सोध व्यथित भव नित करता था  
 बत सोमा-का-गुण्य भी न उसको हरता था ।  
 होकर पर गभीर, क्षिपाये रखते मन-मे  
 जाता जब तब दमक वेग विद्युत-सा धन-में ।  
 यह विनाश धन भाग दिशात वे रानी को,  
 होता यदि कुछ जय जताते वे रानी को ।  
 'वेस्तो यह हृद प्रिय ! मोष देता है मन-को,  
 छूते गिरि-उत्प्लव-शृङ्ग वे उधर गगन को ।  
 इधर महापथ यही ध्वन्ती गिरि पर जाता  
 शूल-शान, गिरि शूलवन्त इस पर ही जाता ।  
 इधर महाधन विन्ध्य, सजग वसिष्ठा-का ग्रही,  
 बोटी इसके पाव पयोष्णी सरिता गहरी ।  
 अथवा पदामृत निम्बे-सिन्धु-को बेने जाती,  
 पाने को प्रिय-अक्षु, मधुर-स्नान कम-कस गाती ।  
 रहते अपि मुनि वहाँ प्राप्त-कर इसके तट को—  
 होकर मोह-विमुक्त मुक्त कर जग मन्मथ को ।  
 है तप-सागर-मीन भीम स्वर्णकन्द वहाँ-वे,  
 मिसते हैं बहु मूल-मूल-फल-कन्द वहाँ-वे ।  
 उड़ी ठौर से एक मार्ग कोसल-को जाता,  
 अथ विस्मयित-मार्ग वसिष्ठा-पथ को जाता ।  
 इन दोनों से अलग विद्वानों-का यह पथ है  
 हम दोनों की मिसन-भुक्ति का जो मधु भव है ।

सुन विदर्भ का नाम चकित सी भी बदर्भी  
 ठिठक-गई मय सगा चकित सी भी वेदभी ।  
 धड़ धड़ करके सगा, फूल-सा हृदय धड़कने  
 वह वामेनर-दुरित नेत्र भी सगा फड़कने ।  
 बैठ गई वे हृदय धामकर अपना सहसा  
 उनको कुछ अज्ञात आज मय-अगा असह-सा ।  
 प्रिय-से बहु निज वधा उन्होंने भीरज पाया  
 बैस ही ज्यों ससिल बिन्दु ने भीरज पाया ।  
 हो न सका सन्तोष, निहत्-सी फिर वे बोली—  
 नृप-भुक्त-पर भी सगीं, मृगी-सी घाँसें मोली ।  
 अवधि-पूर्व हम निषध न सौटें ध्रुव ! निषध है,  
 पर यदि घसें बिदर्भ धम-को वही न मय है ।  
 दिखलाते क्यों-मार्ग मुझे-ही कुण्डिन-पुर-का,  
 सान्त्व रहे प्रतिबिम्ब दुःखद-यह कुण्डित तर-का ।  
 भोग मिय बहु कष्ट तवपि अपसकून अभागे  
 करते मुझको स-जग कि है दुःख तो धम पागे ।  
 पावेंगे सत्कार वही व्रत-भग न होगा  
 यह सब बन का क्लेश हमारे सग न होगा ।  
 बुरे समय के लिए, दुष्प्रा करते हैं अपने,  
 मधुर वचन तब बहा-प्रिया-से हँसकर भुप ने ।  
 धा न प्रिये ! यह धम तुम्ह पथ दिग्यभागे का  
 है न सुसेन्द्रा मुझे, न मय है दुःख पाने का ।  
 व्रत पूरा कर रहा प्रिय ! मैं हीन नहीं हूँ  
 वचन-बद्ध हूँ किन्तु शक्ति-से हीन नहीं हूँ ।  
 कर सकता हूँ सभी प्राप्त, मैं निज भुक्त-वस से  
 पर, हो छसना बुरी बही अपने ही छस से ।  
 बाँटेंगा न बिर्भ्य धुमे ! मैं यो-व्रत से कर  
 हूँ यदि सुम जा-सको वही कुछ भीरज वकर ।



तो प्रसन्न मैं रहूँ तुम्हारा भी हित होगा  
तुमको दुखी न देख न दुख मुझको नित हागा ।

प्राणस्वर को छोड़ ममा क्या धन पाऊँगी  
नाथ ! तुम्हारे साथ नरक-में भी जाऊँगी ।  
यों-कहकर रो-पड़ी कसी-सी वे सुरभय्यीं  
नृप से पा बहु-बोध शान्ति कुछ मन ने पाई ।

घाई बह भी रात बिपिन-में तड़के नीचे  
चिन्ता-में ये तीन महीपति घाँसे-नीचे ।  
पा न सक ये प्राण भाम्य-वश वे कुछ मोहन  
क्षुधित-प्रिया को देख विदीर्ण हुआ था उन मन ।  
कमल-कोमला बिमल अक्षय अमरा-अमरा-सी—  
कैसी है ये आज उन्हें भी यही उवासी ।  
देख रही थीं टकुर-टकुर उनका मुख-रानी  
कर मोरवता भग हुई बीणा-सी बारी ।

‘जाने बस अलिखित । कि इसमें कौन ! मेव है  
नाथ ! किन्तु हो रहा स्वयं पर मुझे जेद है ।  
भाम्यहीन मैं हुई भाग अपमा पाने से  
बढ़ आपके दुख अधिक मरे घाने से ।  
घाई भी इसलिए कि विषयों बाढ़ूंगी  
होंग कष्टक जहाँ पुष्प उनसे छाढ़ूंगी ।  
छोड़ दिया सब राज-पाठ मधु-से शिष्ट अपन  
विपदावधि-में बहा-विषे सारे मधु-सपने ।  
मुके-छिपे भी बिपद बदन हमने निज केरे,  
मिमा बही दुर्भाग्य हमारा हमको-बेरे ।  
स्वस्थ रहा तुम नाथ ! सभी कुछ है फिर बन-में,  
इस बिपु-मुल को देख, मोद पाऊँगी मन-में ।

हल्का करने बसी किन्तु अब मार बनी है  
 सौम्यवायिनी हाथ । विपेसा-प्यार बनी है ।  
 अपना तो कुछ नहीं पढ़ा तो मेमूंगो  
 सब कहती है नाथ । समुद्र बुझ-से खेसूंगी ।  
 पर, नत धानन अपनी सुख कुछ सभी विसारे—  
 सुप्त-सिन्धु-सा मौन बुझद यों-तुमको धारे ।  
 सहन न होता उसे देख भय-सा लगता है  
 भाबी भय का रूप अकल्पित-सा जगता है ।  
 रहे दुःख वे कौन ! न हमने हैं जो मेले  
 विपदा के विद्रूप सभी तो हमसे खेले ।  
 कहता है मन अभी और कुछ सहना होगा  
 जिस विष चाहे वेव उसी विष रहना होगा ।  
 यद्यपि सब सुख दिना आज मैं है अघमङ्गी  
 इन चरणों-की किन्तु अबाध रहूँ मैं सङ्गी ।  
 है प्रभु-पद में टेर, अभागी की यह मत्त-सी  
 इच्छा है बस यही और तो हुई बिगत-सी ।  
 देव ! न जाने दशा आज मेरी है कैसी,  
 अब तक मन में बड़ी न थी व्याकुलता ऐसी ।  
 इतना ही कह सकी उसीस उमर कर आया  
 हिङ्की-सी बंध गई अघर ने कम्पन पाया ।  
 मानो पाकर ताप बहा हिम बनकर पानी  
 भरा कण्ठ हो गई रुद्ध उसस ही बाणो ।  
 महिषी की बह बसी फूट कर हग-जस-भारा  
 उद्वेजित नृप हुए, जोर से उसे निहारा ।  
 अनायास नृप-हस्ता भीमबा-सिर पर आया  
 ताप-निवारण हेतु, मत्ता-पर धन-सा छाया ।

## ब्रमकण्ठी

भद्र ! यह क्या-बिगत-भाम तुम किधर बही हो  
 देव विजयमी तज राखि क्या-भाज नहीं हो ।  
 सोचो सोचो भरी सभा-में तुमने कसे—  
 किये धमर निस्तोज भाज रोती हा ऐसे ।  
 दुस-में द्रुव ! समिध एक भीरज है जग-में  
 करता वह ही पार पचाह विपद-नद-मग-में ।  
 सुख न रहे दुख पड़े न ये भी खेप रहेंगे  
 किन्तु तुम्हारी सुयश क्या जन सदा कहेंगे ।  
 गया यदपि सर्वम्भ धीर हम हुए धिगाने  
 सच कहता हूँ देवि ! न पर मेने दुख जाने ।  
 पद पद पर सिर पड़ी विपद पर नहीं पका मैं  
 हाँ-दुख क्या-यह प्रिय ! भाज ही जान सका मैं ।  
 जिसने मेरे लिए देव भी किये तिरस्कृत  
 प्राणों का तज मोह, लिया जिसने मेरा व्रत ।  
 पुण्यमूर्ति तुम बही भाज पसहाया रोती  
 साज-निवारण-हेतु, फटी सी तन पर धोती ।  
 धिक धिक मुझको प्रिये ! धधम यह भीजन पाकर  
 कद ! रस सका सैमास दिव्य तुमसा धम पाकर ।  
 रस ॥ सका मैं ठीक सहचरी मति गति को भी,  
 पास सका निज-हाथ न धपनी सन्तति को भी ।  
 धपने से हो भाज स्वयं मेने मुँह फेर,  
 मुझे न देखें मनुज, व्याप्त यह रहे धपेरा ।  
 गला भूप का रँवा बिकस हो स्वर भर्राया  
 महिपो-दुग-का समिल भूप मेरों में छाया ।  
 कण्ठ स्वच्छ कर भीर सन्निही सञ्चित करके,  
 भीम सुता ने कहा-नृपति से तनिक उमर के ।  
 धाई बीं मैं साथ कहेगी दुस निवारण,  
 बड़ा किन्तु यह धीर प्रभाषा-मेरे कारण ।

मुझे न कुछ दुख माय । भले ही हूँ अधनञ्जी  
मेरा दीप्त सिंदूर माँग-में जीवनसगी ।  
माया मुझको ध्यान थी कि मैं नैयथ रानी  
ब्रवित इसी से हुषा हाय । घाँसों का पानी ।  
अवसा है हम यरा सबस घाँसों-में बस है  
कल कल करता कही विकल बहता छल-धस है ।  
क्याकुल तुमको देख हाल क्या होगा मेरा  
तब-बिधु-मुक्त मुस्कान मुझे है दिव्य उबेरा ।  
प्रकृति-भीरु हम दीन-हीन अवसा होती है  
स्व-जन-सोज को देख सहज बिबसा रोती है ।  
पुरुषों पर हम मार रही हैं और रहेंगी  
जीवन का आधार छोड़ हम किधर बहेंगी ।  
रयागा वृण-सा राज्य माग अपना आता-हित  
किया दुखों को वरण, निवाहा निज-वत समुचित ।  
वत पानन के लिए कष्ट यों कौन ! सहेगा  
यदि तुम धिक् धिक् हुए अन्य फिर कौन ! रहेगा ।  
घाटे हैं दुख सवा कसुप मन का भोने को  
दीप्ति-दान ज्यों अग्नि-दिक्षा करती सोने को ।  
हर्षित हूँ मैं और रहूँगी शोक हरो अब,  
हो तुम बिधुत सुमट प्यास बस यही धरो अब ।  
एसा कहकर मौन हुई मारों, वह बीणा  
(हो अनन्य तुम अन्य देख ! है यह ही बीना !)  
हुए स्वस्थ से भूप प्रिया का वदन बिसोका  
अपना दुख का बेग स-वस हो सहसा रोका ।  
बोले—यह मारीत्य अवसता स्रोत नहीं है,  
कान्ति-मान मारीत्य-तुल्य, हिम-धौत नहीं है ।  
दीन हीम तुम वहाँ, प्रतीक तुम्हीं-हो बस का,  
तुम्हीं निवारण-मात्र देख ! सदाय का दम-का ।

विधि की सर्वोत्कृष्ट सष्टि पुरुषार्थ यहाँ है  
 उसी शक्ति-पर पूर्ण-विजय नारीस्थ रहा है ।  
 प्रवसा हो तुम किन्तु विषय में बल हाँ तुम ही  
 विश्व मरु-स्थल है यह इसमें जल हो तुम ही ।  
 है न मुझे कुछ शोक राज्य से दीन हुमा मैं  
 या मेरा वह नहीं कि जिससे हीन हुमा मैं ।  
 मात्र धरोहर जनता की वह मैंने पाई,  
 आज उसी का संरक्षक है मेरा माई ।  
 जो मुझसे भी श्रेष्ठ गुणी सुन्दर मानी है  
 पहले से भी अधिक समृद्ध राजधानी है ।  
 नियति बल यह अनवधान गति-शील रहेगा  
 मुझे पुष्पारी किन्तु सब यह शोक कहेगा ।  
 ऐसा मैं ही शूत निकृष्ट कम या मेरा  
 उसका प्रतिफल मोय विधुष्ट धर्म या मेरा ।  
 उसमें भी तुम हाय ! भागिनी बनकर पाई  
 भद्र ! है यह स्मरण-मात्र मुझको दुःखदायी ।  
 वक्त्रों-के ही सग विदर्भ तुम्हें जाना या  
 अति दुःख यह मार्ग न तुमको प्रपन्नाना या ।  
 अस्तु ! हुमा सो हुमा प्रिये । अब तुम सो आशो  
 कर मित्रा को प्राप्त शान्ति तुम निर्भय पाओ ।  
 धूम रहे सर्वत्र हिंस-पशु घासेटक जल  
 सुनो उभर कर रहा सिंह वह यज्जन सज्जन ।  
 भौंभ भौंभ कर रहा विपिन रो रहीं शृंगारी  
 सैं-सैं-करती बीत गई आधी मित्रि कामी ।  
 पर, स्वामी ! सुख भोग किया जब साथ तुम्हारे,  
 सौपा निज सर्वस्व स्वयं ही हाथ तुम्हारे ।  
 आज दुस्रों-को देख भीति क्या-उमसे पाती  
 जन-में भटके आप भीर मैं मौज उड़ाती ।<sup>12</sup>

यों-कह सटां वही भास पर तर के नीचे  
 सोच रही चुपचाप विगत कुदृ मित्र पुग मीचे ।  
 यों-ही सुनती स्वय स्वय से कहती-कहती—  
 मोई भी वह भाव-मिन्धु-में बहती बहती ।  
 सेंट प्रहृ-में सिया नीद ने समी भुमाकर  
 उड़ी स्वय ही भूल न कुछ भी आश्रय पाकर ।  
 सोतीं थीं मो चद्र वदन पर किन्तु जगे थे  
 उस पर मजग चकार नृपति क नेत्र सगे थे ।  
 देख रहे चुप-चाप ठगे भावी का कीड़ा  
 फूला रही भी वस उबर भीतर उठ पीड़ा ।  
 हाथ धनुष पर एक एक मन मस्तक पर था  
 तिमिर-पुच्छ मे दाप्त-रत्नों-से दब्र धरण धर ।  
 धडा-भी थी नमित शयिन चरणों-में रानी  
 रत्ना करता धर्म म-जग होकर नृप माना ।  
 शीलों-में भी दया और विदुब्ध हृदय था  
 कथापात कर रहा उमो पर विगत धनय था ।  
 गहन-मिधु मन बना विचार ऊर्मि सहराती  
 पातीं किन्तु न क्रूस परस्पर लड़ बहगाती ।  
 प्रचस-भूति नृप प्राण किन्तु फिर रहे भटकते  
 आश्रय था वस एक जहाँ-पर पहुँच भटकते ।  
 मुझको तो ध्रुव । विया बचन है पूरा करना,  
 किया कम आ पड़े कसाफस निश्चय भरना ।  
 कण्ठा-में पड़ अधम दुरात्मा जो मँज जाय  
 ठाकर सा सा उठे खोज सत्य को पाय ।  
 निरपराध निष्पाप कष्ट भोग क्यों रानी  
 कहना माना नहीं व्यय हमने हठ ठानी ।  
 बमन होमसा विमल प्रदल भजरा-धमरा - मी,  
 हुई हाय ! यह पात्र स्वयं ही भूल-जरा-मा ।

## इमयन्ती

मोह ! कष्टकित-सूनि लपेट फटी-सी मोती  
 चन्द्र बंध की साज राज-महिषी यह सोती ।  
 सुर-दुर्लभ ऐश्वर्य प्राप्त कर बड़ी हुई है  
 अब मृग भक्षित-शेष कुशा पर पड़ी हुई है ।  
 यही अनिम्य स्वल्प देखकर नेत्र सुमाये  
 राज हम ने बिजय युग्म हो जिसके गाय ।  
 दिव-सम कुण्डिननगर जहाँ-यह ज्योति जगी थी  
 सुर-नर सब-में जिसे प्राप्ति की होइ लगी थी ।  
 वही निराश्रित बहिष्कृता-सी दुःख पगी अब  
 इसकी अयम-समाधि बस के तले लगी अब ।  
 बेरे है अब ममक प्रसूयपत्या की जो  
 पड़ी उपाड़ी वही प्र-पुण्य-भवत्या की जो ।  
 मान रही यह मुझे कि मैं इसका सबल हूँ  
 इस अवसा को देख किन्तु मैं स्वयं प्रवस हूँ ।  
 इसकी यह बुद्धि स्वयं मैंने ही की है  
 सरक-यातना हाय ! इसे मैंने ही दी है ।  
 किये पाप जो स्वयं उन्हें मैं हो तो मोता  
 पर पापी तो भरी नाभ मैक्रभार दुबोता ।  
 देख भिक्षुणी इसको छाती फटती ली है  
 पद-नीचे से बरा प्रचानक हटना ली है ।  
 हाँ, अब भी यह मुझे खोइ यदि मके जाये  
 बनायास ही वहाँ प्रमीषित सुख का पाये  
 सुखी रहे यह मुझे, इसी से क्षान्ति मिलेगी  
 पितृ-पद स्नेहित उपर भुरगुली सदा मिलेगी  
 इसको समझा बुझा पठ बस मोटाई  
 किया कर्म जो स्वयं स्वतः ही फल पाऊँ  
 पर, पति-पद-अनुगता मसिल-में गम मकली  
 सखी क्षान्ति यह स्वयं बनल मैं जस सबकी

होगी क्या व्रत-निरत भला समझने भर-से  
 यदि यों जाती सौट न जाती ही तो घर-से ।  
 प्रच्छा हो यदि इसे छोड़ जाऊँ मैं सोती  
 पहुँचेगी तब यह निश्चय ही मेरे रोती ।  
 होगा पर विद्वान्पाठ ओ यों छोड़ूँ मैं  
 लिया सुरक्षा-भार और अब मुँह मोड़ूँ मैं ।  
 मण्डप नीचे अनस-देव को माखी करके  
 'हस्त ते गुम्णामि' कहा क्षुति-मंत्र उमर के ।  
 होगा मिथ्याचार कहेँ छल छप धवश-पर  
 पुत जावेगी और कालिमा भवस सुयस-पर ।  
 रहा कहीं-वह भवस पड़ा पर अब तो फीका  
 सैन बुका ओ छूत कुमति-वश प्रथम घनीका ।  
 राजा था तब बुरा बुरे के लिए किया था  
 राजपाठ सब समा दाव पर जिता दिया था ।  
 प्राय रङ्ग बन, बुरा भले के लिए कहेँ मैं  
 हुई हानि को एक दाव से और भरेँ मैं ।  
 कहेँ कार्य अब वही छिपा जिसमें इसका हित  
 प्रकि यह ससार, हुआ समुचित या अनुचित ।  
 निश्चय सोती-हुई प्रिया को छोड़ बसूँ मैं,  
 रग-गन्ध के लिए मुमन को और बसूँ मैं ।  
 पर, मैं इसको छोड़ चला यदि बन में ऐसे  
 फिरते हैं मुँह फाट हिस-मधु कैसे कैसे ।  
 पाकर इस निरीह न क्या-से खा जायेंगे,  
 गृहा-द्वार पर सिंह स्वयं भोजन पायेंगे ।  
 हो जीवन का धन्त न कुछ भी मुक्ति चली,  
 पर तब भी हित निहित बिपद से मुक्ति मिलेगी ।  
 है यह रूप धनिन्ध करे जो स्वयं उजासा,  
 बन में यदि पड़ जाय, प्राणतापी न पासा ।



## वधवन्ती

होगा तब फिर वृक्ष, पुरातन कुम्भिनपुर का  
 जागृत हो वह सती लेख, सोया जो उर का ।  
 तब यह सधु-सी लङ्ग हाथ में इसके होगी  
 किये कर्म का कुपस्त स्वयं भोगे वह भोगी ।  
 कौन ! बिम्ब-में शक्ति इसे जो बस-में बरसे  
 कर इसको निरुपाय कील इसका जो हरण ।  
 सोच रहे थे सूप एक भौंका-सा घाया  
 हुआ देह गतिमान हृदय ने निरुचय पाया ।  
 सहज भाव न उठे न घाहट हो कुछ जिससे  
 करता हूँ हे राम ! भाव मैं बोला इससे ।  
 सम्मुख पड़ी अचेत मीमन्ता भोमी भाली  
 से स्व-जाति का पल धुरकती थी मिथि काली ।  
 बहुता या अब तीव्र वायु शीतलता घारे,  
 अर्ध-विवसना पड़ी मीमन्ता कुच्छम मारे ।  
 हिम प्राच्छादित सिकुड़-गई थी हेमलता-सी  
 भानो हरि-पद हुए समर्पित भक्ति नता-सी ।  
 जाग न जावे शीघ्र ध्यान राधा को धाया  
 अपना धामा बस्त्र फाड़कर उस उड़ाया ।  
 और सोम निज लङ्ग पादम-में रख दी उसके  
 क्रुद्ध सर्पिली तुल्य रक्त चाट जो चुमके ।  
 सेकर दीध उसाँस विवश भूपति न त्यागा  
 धीरे धीरे कहा-मोह मैं बड़ा भभागा ।  
 करना मुझको क्षमा देवि ! कुछ दोष न मेरा  
 इस दुष्टता से स्पष्ट प्रिये । परितोष न मेरा ।  
 यद्यपि अपयश क्या जगत मेरी गायेगा  
 पर छुटकारा तुम्हें विपद-से मिल जायेगा ।  
 देत रहे थे सड़े लड़े टकटकी मगाय  
 पर कुछ जागृति बिन्दु न सन्नाही-में पाये ।

निकले फिर यों बचन उठा सहसा मुँह ऊपर,  
 हे तब ! इसके एक मात्र भव हो तुम भू-पर ।  
 निरामन्त्र यह भता तुम्हीं को सोंप रहा है  
 है निदय यह कु-पण जहाँ पद रोप-रहा है ।  
 सूर्योदय तक इसे धान्ति से बधु । सुसाना  
 जागे तब यह वृष्य दया कर इसे भुसाना ।  
 धीरज देना बड़े प्रेम-सं शिक्षा करके,  
 भूख सगे फल-दान करो तब भिक्षा करके ।  
 साक्षी है बन-जैब देवियाँ घिटाप भसायें  
 फँसा यह मम नील विद्युद ओ दायें बायें ।  
 कोई भी यदि यहाँ धीर छिपकर मुनता हो  
 मुक्त जसा-ही जाग भ्रमागा सिर धुनता हो ।  
 नक्षत्रो ! मत हँसो मुनो तुम भी ये बातें  
 मैं स्व-सहचरी-संग भाज करता ओ घातें ।  
 रोक रहा है अन्नरात्म आदेश नहीं है,  
 मेरा अपना छिपा स्वाध-उद्देश्य नहीं है ।  
 मुक्त इसका ही समस्त पाप सिर पर धरता है  
 प्रिया-श्रय हित आत्म प्रबञ्जन मैं करता है ।  
 समस्त रहा है महापाप यह नष्ट न होगा  
 इस पर जन मतिमान कहीं आकृष्ट न होगा ।  
 मोहेगा दिन रात न भुक्तको सोने दे यह,  
 मरण-धान्ति भी प्राप्त न भुक्तको होने दे यह ।  
 सोसेगा हूँ - द्वार नरक भीषण रौरव-का,  
 देल हँसमें कुर्य निशापर भी मानव-का ।  
 इसके सभी प्रवण्ड दण्ड मैं सिर पर के-मूँ,  
 प्राण प्रिया के लिए यातना सारी के-मूँ ।  
 हो यह निद्रा-मुक्त धीन जब अपनी लोले,  
 कहना इससे विपिन ! तभी तुम होरे होत

## रामयन्त्री

'शान्त रहो तुम देवि ! मूत दुस गया प्रभागा  
 पर, तेरे ही लिए तुम्हें उसने है त्यागा ।'  
 क्षिपे-रहो हे चन्द्र ! विधायक हो तुम कुस के  
 मत-देखो ये भण्ड-हृत्थ मित्र - वस्य प्रतुल के ।  
 मों-कहकर अस पद, - प्राण भीतर छुटते ये  
 पकड़ रही थी धरा न पद प्राण छुटते ये ।  
 सहसा सूखा-पत्र धधु-मिस तब ने छोड़ा  
 उस चाहत से सहम भूप ने मानन मोड़ा ।  
 उलटे पैरों मोट निहारी रानी सोती  
 दीखी वह निरपन्ध न जागृति-सी गति होती ।  
 क्षण भर उसको देख हृदय को पत्थर करके  
 हो सर्वस्व-विहीन बेंधे-से प्राण सरके ।  
 दिग्भ्रम-सा हो रहा न कुछ भी ज्ञान उन्हें था  
 किधर चले जा-रहे न इसका ध्यान उन्हें था ।  
 कन्धे पर था अनुप हृदय में चिन्ता गहरी  
 लड़े हुए थे वृक्ष जागते हों क्यों प्रहरी ।  
 वेस भूपति का कृत्य कापते ये ये भय-स  
 था पर दृढ़-विश्वास भक्त में सती-विजय-से ।  
 टिम टिम कर गलत्र भास भूप को बिसलाते,  
 और रात के साथ भोस मिस धधु बहाने ।  
 बन्ध-जता परिपूर्ण प्रकृति का कुञ्ज लड़ा था  
 समय-मग्न हो जहाँ तिमिर का पुञ्ज पड़ा था ।  
 पद-हृत हो उठ चौक, मोह कुछ प्रजित करता,  
 नत हो भूप-पद पकड़ कुपय-से वञ्चित करता ।  
 पद-तल से दब, गुण्य-पत्र लड़ लड़ करते ये,  
 आहट सुन मट सजग बिहग फड़फड़ करते ये ।  
 घोसा-पक्षी इधर, कुछ मानो चिन्ताया,  
 घरे प्रहरी ! धाज रात में भी तू आया ।

प्रिया-कण्ठ निष्कपट सिपट जिससे हम सोये  
 मन्दबुद्धि ! आनन्द हमारे निक्षि के सोये ।  
 निज कान्ठा मधु प्रम तुम्हे क्या रोक न पाया  
 पर तू वज्र कठोर तुम्हे क्या ममता-माया ।  
 आगे ये मन्त्राङ्ग भङ्ग डेर-सा डाले  
 दिन में भी पढ़ जाय जहाँ-पर गति को माले ।  
 कष्टकावि दुर्वार विघ्न पथ-में आते थे  
 उन सब पर पा विजय महीप बड़े जाते थे ।  
 पा बस लक्ष्य समस्त और होने से पहले  
 रानी से अति दूर पहुँच कुछ भाष्य गहले ।  
 प्रब नभ में अशि चढ़ देखते कृत्य अनीका  
 किये वदन निस्तेज, रंग कुछ फीका फीका ।  
 भीत चसी भी रात पुती नभ-में अरुणाई,  
 प्रिय के आगे-हुई विहँसती उषा आई ।  
 चहक-उठे सब बिहग, तिमिर जगती-से भागा,  
 महक उठा बन प्रान्त विषय सोते-से जागा ।  
 दिनकर नृप पर हँसे 'प्रिया-से तुम बच भागे,  
 मेरी अपनी प्राण प्रिया है मेरे आगे ।'  
 सुनता था पर कौन ! छिपामे अपनी पीड़ा  
 बड़े नृपति जा रहे खेसती भावी श्रीदा ।

बढ़ रहे वे, बाण-सक्षय भण्ड-से,  
 आप ही कर शोक दोनों नष्ट-से ।  
 प्राण पीछे रह गये तन जा रहा,  
 दिन उदित फिर भी तिमिर-सा छा रहा ।  
 नष्ट-सी थी सोचने की शक्ति भी  
 और जगती-मे उठी अनुरक्ति भी ।  
 भूय वे हित स्थान ही अब था वहाँ  
 हास डेरा शोक जो टहरा बड़ा ।

## एकादश सगे

उमड़ी पायस उसी वृष के तले जहाँ सोती रानी  
 सदय-समझ ठक की धाँसों-से टप टप बरस रहा पानी ।  
 बड़ बेचन कैसा ही भी हो क्या समी में सोती है  
 सरसाता है कसा बुझ भी जब वह जागृत होती है ।  
 रानी के उठने से पहले तारों ने मुँह ढीप सिया  
 वन की भाबी उषम पुष्प को पहले से ही भाँप सिया ।  
 पर, विधि नियम घटन है जग-में सुख वृक्ष इन्द्र चला करता  
 सब को निज शासन में रक्तकर वह निर्द्वन्द्व छमा करता ।  
 साज सजा वह ज्वा रानी नई नबेनी भाई है  
 उसके स्वागत-हित इस रानी ने भी जी धँगड़ाई है ।  
 देखा जो रानी ने उठकर जहाँ न प्राणेश्वर पाये,  
 पक्षित पक्षित-भृग-सावक जैसे इधर इधर हग दीड़ाने ।  
 भय चिन्ता से दबा हृदय धक धक कर बैठा जाता था  
 दाया नेत्र फड़क कर, उनके भय की धीर बड़ाता था ।  
 लड़ग पार्श्व-में अर्ध-वसन नृप-का अपने तन पर देखा  
 मिथ्यम रानी हुई निहत्त सी, ज्यों प्रभास की बिभु-सेखा ।  
 जो न समझता इष्ट उन्हें था सुमन्त गई वे बिषय समी  
 किन्तु सदय भाषा ने उनको दिया तनिक विश्वास अभी ।  
 हुए विदीर्ण हृदय-में पर विश्वास क्षणिक ही जम पाया,  
 बैठ गई सिर थाम अभागी, धाँसों भागे तम छिया ।  
 लेकर लड़ग उठी वे सहसा इधर उधर फिरकर देखा  
 कहीं नृपति ! वह देख न पाई नृप के पद की भी रेखा ।  
 घुत-हरिणी-सी अमाकान्त वे, मुस-की भामा पीसी भी  
 हिडकी बभी, कमल-सी धाँसें पथु-भार-से गीसी थी ।

पुष्पं बुध भूत सभी वे अपनी, अन्दर सर्गिं वहाँ करने,  
 ईर्ष्या वश निज धान्ति-सग ही सर्गिं धान्ति वन की हग्ने ।  
 "जीवनमय ! मेरे सुखदायक ! प्राणायामिक हे प्राणप्रिय !  
 मुझे छोड़ इस-मोति विपिन में किबर गये बनकर निर्दय ।  
 धामो हे प्राणेश्वर ! सत्वर, मुझे बधाओ, दया करो  
 हे नयनवत ! तड़प रही मैं निज वासी की अप्पा-हूरो ।  
 छिपे-हूए हो क्यों-यत्नों-में निकलो हग दसन पावें,  
 ऐसी हूँसी न अच्छी होती जिससे प्राण निकल जावें ।  
 बर्मासा बिस्मयत आप हैं सोचो तो अपने मन-में—  
 उचित न है मुझसी अबसा को देना छोड़ विवन वन-में ।  
 बिदित आपकी अनुवृत्ता है आप प्राण हो, मैं काया  
 छोड़ सका है कौन ! मला-यों जीविन रहत निज छाया ।  
 कभी न मैंने मन से भी हे नाथ ! आपका बुरा किया  
 फिर क्यों-यों अपराध-हीन मुझ-सोती ही को छोड़ दिया ।  
 बिना आपके भी जीवित हूँ, निकले हूँ वे प्राण नहीं,  
 वस की बात न है यह मेरे अबसा हूँ बमबान नहीं ।  
 पत्र पुञ्ज-में छिपे लड़े तुम मैं भयभीत बुलाती हूँ,  
 किस कारण से सब नाथ को इतना निर्दय पाती हूँ ।  
 अ-बन भीन-सी तड़प रही मैं, बन कर सजिन बल धामो  
 नपुनता-सी सूख रही हूँ बादल बन इस पर छाओ ।  
 धाकर धर्म मुझे दो स्वामी, विनय पर्दा में करती हूँ  
 और न इच्छा है कुछ मेरी, ध्यान आपका धरती हूँ,  
 प्राणायामिके ! स्वर्ग में भी मैं तुम्हें छोड़ कर रह न सकूँ  
 चन्द्रमुखी ! पल भर को भी मैं फिर तुम्हारा सह न सकूँ ।  
 कहते तुम तो सदा यही थे, कहाँ प्राण की बातें थे,  
 और कहाँ हूँ हृदय-सन्धिनी छय मरी अब बातें ये ।  
 हारे पके सुभ-से पीड़ित, किसी वृक्ष-के लगे कहीं—  
 बैठोगे तब नाथ ! भकेसापन क्या - तुमको लसे नहीं ।

पड़ जाओगे सुखे ही जब मुझे न पाकर व्यथा मरे  
 क्या-गति हो तब नाथ ! तुम्हारी मुझको यह ही सोच भरे ।  
 इस प्रकार बिलपती सती वे हो विक्षिप्त-समान वहाँ—  
 रोकर लगी दौड़ने वन-में रहा न उनको ज्ञान वहाँ ।  
 विलस होकर गिर पड़ती थीं सबी कमी रह जाती थी,  
 छिप जाती थी कमी वेग से नाथ नाथ चित्माती थी ।  
 सिर क बास बिलम्बित उनके मुस-विधु पर छितराये वे  
 राहु-ग्रस्त निष्प्रभ से क्षण पर भी वे बादल छाये वे ।  
 लगी सोचने वे हठमाया अपना भाग वहाँ वन-में  
 मटक रही थी दावानल-सा भड़क-रहा भीतर मन में ।  
 निकल गई वे दूर विपिन-में देखा वह मृगराज सदा  
 कहने लगी-उसी से तब वे रे ! तू है बनघान बड़ा ।  
 आज्ञा दीध मुझे तू सामे हों दोनों के कार्य भले  
 तुझे क्षुधास्तक युक्ति मिलेगी मुझे विपद से मुक्ति मिले ।  
 आ-निश्चय ठिठकता है क्यों । अब तुम्हको किसका भय है  
 रहे न अब वे गये धनुर्धर निश्चित अब तेरी जय है ।  
 समझ तुम्हसे मुझ छुड़ाने हो जायें वे प्रगट वहाँ  
 देस रहे हों छिपे हुए वे भीर, विपिन-में निकट वहाँ ।  
 जसा गया तू उबर भरे-क्यों-है तू अप्पकठोर बड़ा  
 होता सदा ममा क्यों-मुझपर तू विधुत निर्वयी कड़ा ।  
 रामी हूँ मैं निपधराज की यदि तू मुझे मार-सावे  
 तो फिर उनके कोपानल से तू न सुरक्षित रह पावे ।  
 धर्म नाथ का तेज सिंह यह धनुषस्थिति में भी बरता  
 है न यद्यपि वे तवपि उम्हीं का भय मेरी रक्षा करता ।  
 ठहरा तू पशुराज मिरा आकर अपने इस पशु-वन में—  
 मुझे आज भी उनकी राणी पागल ! समझ गया मन में ।  
 हा स्वामिन् ! हा नाथ ! प्राणपति कहती हुई यड़ीं आये—  
 धीरे विपिन-में अब आ-पहुँची, अपनी सब सुख सुख त्यागे ।

किन्तु धनेसा दुःख न आता जब जन के दुर्दिन आते,  
 विपद्-घो-के उष्ण हिमालय-से, हस्तमाध्य धिरे पाते ।  
 एक महाप्रजगर की साँसों-से वह सहसा लिखी जली  
 उड़ी जली मारों, भोंके से क्षुप-क्षिप्ता असहाय कमी ।  
 'सर्प ! सिंह-मे सदा रहा तू घन्य विपद् मेरी हरसे  
 दुःख भरे इस जीवन-को हर, निज उदरस्थ मुझे करसे ।  
 यों-कह मूर्च्छित हुई, कास तब उनको छलने को ही था  
 क्षुधातप्त प्रजगर अग्रिम-क्षण उन्हें निगसने को ही था ।  
 जिनका काम न आया, उनको मार सका पर कौन ! कहाँ  
 सहसा अप्रत्याशित घटना हुई एक तब मौन वहाँ ।  
 आकर तीर विपेसा सत्वर बीच सर्प-के निकल गया  
 बना निगसने हाथ ! अभागा कास उसे-ही निगस गया ।  
 हुई कृपा यह एक व्याध की फिर वह अभय निकट आया  
 कर उपचार महागनी का, उन्हें होश-में भट लाया ।  
 पर, वह व्याध व्याधि-को हर कर महाव्याधि सा हुआ प्रगट  
 कर सकट से मुक्त उन्हें वह बना स-मूत बिकट सकट ।  
 देस अनिन्द्य रूप रानी का कामासक्त हुआ सहसा ।  
 हुई आत्म-विस्मृति सी उसको वह अनुरक्त हुआ सहसा ।  
 'मूमशाबकनयने ! बोधो तुम कौन ! यहाँ कैसे आई,  
 माय्यवान मैं विश्व रूप की राशि मुझ सहसा पाई ।  
 कैसे तुम आई हो वन में या-आय-सी डोल रहीं,  
 सुर-दुर्लभ इस दिव्य-वेह को कष्टों-में क्यों-भोस रहीं ।  
 दैवि ! विपिन की देवी हो तुम या तप-शील पम्परा हा  
 नहीं मानुपी मटक गई तुम विष की अजरा प्रमरा-हो ।  
 यह सुनकर उससे दमयन्ती ने प्रपना सब वृत्त कहा,  
 पर, वह तो कामाच हुआ था नही स्व-वद में चित्त रहा ।  
 'हे सुम्परी ! न भव तुम जिम्ता करो न मन-में जब माना,  
 प्रमाथिता धब हो न सुमुनि ! तुम सनाथिनी निज को जानो ।



ये अधनगे पीन पयोधर, अंग सुकोमल विष्णु-मुख यह  
 भौंहें कुटिल कमल-सी आँखें, रेंगी मुझको सुप्त रह रह ।  
 समझो मुझको कीतवास तुम भर्कें तुम्हारा मे पानी,  
 अपनी मधु चितवन से मुझको तमिज देल भर दो रानी ।  
 'सैमल अभागे । मौन रहो दुर्बल न मुझसे बोझो-भुम  
 पामर । अपने लिए स्वयं-ही नरक-द्वार मत खोलो-तुम ।  
 मुझे बचाने क्या-तुम प्राये कास तुम्हारा ले आया  
 देखो सजग बुद्धि-से तुम पर मँडराई उसकी छाया ।  
 मुझे न भय है आज मृत्यु-से जीवन से है स्नेह नहीं  
 लुटा लुटा सर्वस्व विपद धस्ता है कुछ सन्देह नहीं ।  
 कबल-कास का बन सकती है हँसती हँसती-अभी अभी  
 किन्तु, मृत्यु से पहले मेरा शील-हरण हो नहीं कभी ।  
 मूर्च्छित भी मैं मरी-सुख ही छुपा भले तूने यह तन  
 किन्तु सजग है कुछ दुस्साहस भूल न करना अब दुर्जन !  
 इस निष्कसुप चरित्र-हेतु मैं मोद मान तुल सहे सभी  
 इसे भ्रष्ट कर, तू तो क्या-मैं रहूँ स्वर्ग-में भी न कभी ।  
 वा कामाक्ष तनिक भी उसको, रानी का न कहा-आया  
 क्रुद्ध सर्पिणी के छूने को उसने निज कर फैनाया ।  
 वा यह यम को बुला निमन्त्रण मूढ विद्युत-सी दमक उठी,  
 उठी भूमि-से सकय सती-के कर-में सहसा धमक उठी ।  
 अतक-द्वारा अन्तिम उसको महासती ने बोध दिया,  
 वा कुछ साए-पहुँचे बाधक से यम ने यह प्रतिशोध लिया ।  
 अतस-शिक्षा सी हुई प्रज्वलित धूँ धूँ करके व्याध जमा,  
 सती-बैर के महापाप का शीघ्र महाफल उसे मिला ।  
 रक्ताप्सृत से लड़ग हाथ में, सती बर्फी-आगे भन-में,  
 लड़प व्याध की दैत न पाई व्याकुल-सी होकर मन-में ।  
 ज्वाला मूल से बरस रही इय साल बुद्ध-सी रानी थी,  
 महिपासुर-वध के हित प्रयटित मानो कुपित भवानी थी ।

जब वे एक महावन में थीं वहाँ घेरि-सा छाया  
 नाद मिस्त्रिकाओं का होता भय न उन्हें पर छु पाया ।  
 हमर उधर वे देख मानकर फिर आगे बढ़ जातीं थीं  
 हा-निपधाविप ! हा प्राणस्वर ! रो रोकर बिस्साठीं थीं ।  
 नाना बिहग बहाँ रव करते व्याघ्र गजादिक भूम रहे,  
 ऋक्ष महिष सिंहादि अमय हो स्नेच्छा से ये भूम रहे ।  
 स्नेच्छ निशाचर दस्यु आदि भी छिपकर रहते थे उस ठौर,  
 ऊँचे-ऊँचे वृक्ष छड़ वे करते स्पर्श गगन का छोर ।  
 घास बेगु-बब पीपल तेंबू, हँसुव किंजुक और धरिष्ट,  
 अजुन स्पन्दन धात्मस जामुन सोब सौर के तरह बलिष्ठ ।  
 प्राकारिक फल फूल रहे थे उन पर किसी सता छाई,  
 सोब बहाँ-पर अपने प्रिय को महासती आगे आई ।  
 दसों नदियाँ गुहा मयप्रव, और पर्वतों-की माला,  
 पत्थन मील तड़ाग आदि पर प्राणेश्वर वेष्टा भासा ।  
 देखे उसने बिहग अमानक, राक्षस उरग पिशाच निरे,  
 भैसे और पराहों के ये झुण्ड बहाँ सर्वत्र बिरे ।  
 अपने दुख में मूल रहीं सब मय न किसी से पाती थीं,  
 माम्यपुत्र ठे नियधराज, कह कहकर वे डकराती थीं ।  
 बूँद भिये सारे में प्रियतम पर, कुछ सोब नहीं पाया  
 आँखें सूज गई, पैरों-में उनके रक्त उतर आया ।  
 दर्शन हों भीषित रहकर ही इसीलिए कुछ खा-सेतीं  
 खाना क्या-बस रक्त गुच्छ, फल फूल वहाँ जो पा लेतीं ।  
 धक कर एक शिला पर बैठीं, सर्गों विसाप वहाँ करने  
 वे देवी अपने अन्दन-से सर्गों महावन-को भरने ।  
 निर्जन बन में छोड़ मुझे तुम माय ! कहाँ-क्यों चले गये,  
 निरपराध सोती की छोड़ा क्या-देवों-से छसे गये ।  
 हे पुरुषोत्तम ! मृपति अष्ट ! तुमने हैं यज्ञ अनेक किये  
 सत्प्रवृत्त हो धर्म-भीरु फिर क्यों-ऐसे अविवेक -

हो प्रणवीन किन्तु फिर भी अपना प्रण आज भुलाये हो  
 किसी अप्सरा ने है स्वामिन् ! या छस स बहुलाय हो ।  
 है पर यह विश्वास न मुझको गूँज रही प्रिय ! वह वागी  
 मुझसे अधिक सुन्दरी तुमने कौन ! कहीं जग में मानो ।  
 देखो फिर शार्ङ्गल इधर यह पसा धुमुलित घाता है  
 अपनी पनी हिम-सी उज्ज्वल यम-द्रष्टा निखलाता है ।  
 हो मेरे मर्बस्व प्राण तुम क्यों न मुझे उत्तर देते  
 रो रो तुम्हें पुकार रही हूँ क्यों-न सदय हो सुष लेते ।  
 हे पुरुलोचन ! हे अरिर्कर्पण ! देखो मेरी तनिक दशा  
 पूष भ्रष्ट हरिणी-सी हूँ मैं दीना हीना दुखी कृशा ।  
 बारम्बार सुनाती हूँ मैं नहीं बोलते हो स्वामी ।  
 इस पर्वत-पर वृष्टि न आते हुए किधर किस पक्ष-गामी ।  
 हे सिंहो ! हे व्याघ्रो ! बढ़कर तुम स-श्रेम अपने आघ्रो  
 मेरे प्रियतम कहीं मिलेंगे मुझे क्या कर बतलाओ ।  
 अब नित कौन, विषम अस्ता को मुझे सुनावे मधु-वाणी  
 कौन कहेगा मुझे प्रेयसी प्राणाधिक-प्रिय-कल्याणी ।  
 ओ शार्ङ्गल ! कड़ा है क्यों-तू मैं दमयन्ती भीमसुता—  
 निपभराज को सोज रही हूँ, हे कुछ उनका मुझे पता ।  
 घरी ! सरित तू ही बतलावे बड़ी दूर से घाटी है,  
 अपने प्रिय को पाने के हित सहरासी-सी जाती है ।  
 निपभराज क्या-तूने देखे, दिया कहीं उनको पानी  
 करदे क्या वहन ! तू मुझ-पर, मे उमकी ही हूँ रानी ।  
 राजहस ! तुम आज कहीं हो तुम पर बलि बलि जाऊँगी,  
 मेरे प्रिय का पता बता दो मुझा तुम्हें सिलाऊँगी ।  
 तुमने मुझे कहा-या देवों से भी अधिक गुणाकर मे,  
 क्यों-न मुझे अब भीरज देते महाविपिन-में धाकर मे ।  
 ओ गिरिराज ! सड़े तुम ऊँचे वृष्टि पूर तक जाती है,  
 जस थस तुमको दीस रहा सब, तुम्हें क्या-भी घाटी है ।

हे सरण्य कस्याग देव ! मेरा प्रणाम स्वीकार करो  
मीमनन्दिनी दमयन्ती मैं मेरा तुम ही कष्ट हूरो ।  
पराजन्त हूँ भीर भीर से, वीरसेनि मेरे स्वामी  
हूँ भ्रात्राभुविनास बाहु से, सद्गुण-पुष्प सुपथ-गामी ।  
मुझको अपनी सुता समझकर वीरज दो स-कलण गिरिराज ।  
मेरे पति का पता बताओ उनको लोभ रही मैं पाव ।  
महीं बोलता पर यह गिरि तो, हे धमज ! तुम्हीं भाषो  
बहुत बिलाप कर चुकी अब मैं, कृपया स-कलण हो जाओ ।  
दर्शन देकर हे प्राणेश्वर ! मुझे धक्का भर मेंटा तुम  
अपनी सम्बी उल्लु भुजों-में आकर सभी सपेटो तुम ।  
अपनी उस गमीर स्निग्ध-श्रुतिहर, धन-असी मधुबारी—  
से प्राणेश्वर मुझे पुकारो, मीमसुते ! हे कस्याणी !  
हरो न तुम, मैं निकट लडा हूँ, मुझको यही सान्त्वना दो  
तो कुछ मुझे कहा इस ने भाष ! सभी पूरा कर दो ।  
छेद गई वे वहीं शिला-पर धकित भीत थीं निराश्रिता—  
(मगीं देखने दुस्य तनी यों - मीमनन्दिनी पतिव्रता ।  
तीन दिनों-तक बसते बसते उन्हें एक आश्रम पाया,  
वे भुगु अत्रि वशिष्ठ आदि अपि व्यापे जिन्हें न जग माया ।  
बस्कर बरुन और भुग छासाधारी, अपि-मुनि लोग वहाँ  
वे स्वित प्रज्ञ, निराहारी कुछ, पत्र-बापु ही भोग जहाँ ।  
देले भैमी ने आश्रम में समय हरिण क्रीड़ा करते,  
दर्शन-युक्त महामुनियों के महा व्याधि जन की हूते ।  
उनके पहुँच निकट रानी ने, सबिनय उन्हें प्रणाम किया  
हो प्रसन्न मुनियों ने उसको स्वस्तिवाद स प्रेम दिया ।  
बैठ-गई रानी आज्ञा से अति विनम्र यों थी वाली,  
मीमनन्दिनी दमयन्ती मैं निपथ-वेड-नृप की रानी ।  
कहो देव ! निर्विघ्न आपका जप तप तो सब  
भाषा तो कुछ प्राप्त न तुमको, वर्म लीक

हाँ भद्रे ! स-कृपास हैं हम सब अब तुम अपना वृत्त कहो,  
 हो यदि सेवा योग्य हमारे स्त्रीछ कहो, मत व्यथा सहो !  
 अष्ट-रूप हाँ परम-कान्ति को देख सभी हम विस्मित थे  
 वन-देवी गिरिकन्या तुमको समझ सभी हम विस्मित थे ।  
 'देव ! पूज्य-पति हैं मेरे धर्मज्ञ गुरणी ज्ञानो-भानी  
 फिर कौजसी उन्हें विकल मैं यह सब विपिन भरा स्थानी ।  
 गिरि-नद नदी सरोवर देखे मील धीर निर्बल बन भी—  
 भटक रही हैं घहोराव मैं पा न सकी पर उन्हें सभी ।  
 यह देखो मेरे पैरों-में पड़कर फट गये छाते  
 यहीं कवाचित घा न गये हों स्यामस-मेष कान्ति वाले ।  
 यही सोचकर पुष्प-तपोवन-में मैं धाई, पृथ्वी-रही  
 हो सर्वज्ञ तात ! तुम उनका भुम्हे बसानो मेव सही ।  
 उनके बिना व्यर्थ जीवन है बिरह-में न भी पाऊँगी  
 पा न सकी यदि प्राणेश्वर-को तो जीवित जल जाऊँगी ।'  
 'धीरज भरो शास्त्र हा वस्ते ! नाक न रों-मानो मन-में  
 पा जाओगी निपचराज को फिर तुम थोड़े ही दिन-में ।  
 होंगी विपदा दूर तुम्हारी फिर से बनो महारानी  
 अपने पति-के संग पूर्व-सा सुख भोगोगी कस्याणी ।  
 अपनी दिव्य दृष्टि के बस से हाल सभी हमने जाना  
 हुआ भीमजै ! श्रेयस्कर ही महीं तुम्हारा अब भाना । )  
 सहसा भाँखें सुलीं सती की जगकर स्वप्न याद आया  
 तनिक बेर तो रहीं विमोहित पर फिर शोक बही आया ।  
 जसी विवर्णा वे भागे-को करती हुई कल्ल-कन्दन  
 हूक महादेवी की सुनकर, उठेसित या साय बन ।  
 चलते चलते महासती ने एक अशोक वृक्ष देखा  
 मधुर वचन बोलीं उससे वे बीवर्मा की कृप रेखा ।  
 फूले हुए महातरु हो तुम, नाना लय-रव करते हैं,  
 सोचिष्ठ जग पैरी आया मैं बैठ शोक मित्र हूँ ।

आई मैं तद-मिन्न सता-सी विटप । यहाँ शोकित होकर  
 शान्ति मुझे दो वृक्षराज । तुम मेरा शोक सभी खोकर ।  
 बसलाओ तो वे पृथुसोबन देखे सुमने यहाँ कहीं,  
 धरे धमाले । मूक लड़ा क्यों-देता उत्तर मुझे नहीं ।  
 निपज देहा के स्वामी हैं व पहने धर्म-वसन तन-पर,  
 जब तर ठहरा, सवय मसा तू क्यों-होगा शोकित बन-पर ।  
 यह कह सती वहीं आगे को दुर्गम स्थानों-पर होती,  
 हा निपवेस ! नाथ हा ! कहतीं जातीं वीं रोतीं रोतीं ।  
 बहु नद नदी भीम सर देखे, गिरि की भ्रम कन्दरा भी  
 बूल प्यास तो दूर न उनको छू-माती वी सन्दा भी ।  
 किन्तु न मिसे उन्हें प्राणेश्वर गदगुप्ता-सी और वहीं  
 देक एक छँपा-छा टीमा उस पर भीमात्मजा वहीं ।  
 सम्मुख महानरी बहती वी लम्बा चौड़ा फाँट किये  
 भय कम्प्य ग्रह आदि मुदित जीवों को अपनी गोद लिये ।  
 उसके तट पर सार्यबाहु का शिबिर लगा लम्बा चौड़ा,  
 चिर दिन पीछे देख जनों-की शैव्य मिला उनकी थाड़ा ।  
 बिलिप्ता-सी सनी शक्ति वे सत्वर उनके निकट गई  
 मोद-मग्न जन देख बहू-पर मिली ज्योति-सी उन्हें नई ।  
 हाथी बड़े हींसते घोड़े, पंक्ति-बद्ध सज्जित रथ वे  
 उज्ज्वल सने बितान चमकते बिनके बीच छुट पय वे ।  
 उसमें-आन धूल-से पूरित सूजी झोले, धर्म-वसन—  
 दुरी दहा वी यशस्विनी की धरे था प्रिय-शोक-व्यसन ।  
 शीना हीमा और बिजली मलिन-मूर्ति को पा आगे—  
 समस्त उन्हें उन्मत्त रोगिणी, कुछ जन भीत-हुए भागे ।  
 कुछ ने हँसी-उड़ाई उनकी, निम्बास्तुति भी हुई बहाँ,  
 सदाय पूछ ही बडे कुछ जन गुमे ! कहो, तुम कौन यहाँ ।  
 मलिन वेश में ऐसी हा तुम, यदी हो, या जो भी  
 गया करो-हमागी भरे ! कुछ कहना तो शीघ्र

तुम्हें देख पीड़ा होती है, मन में भय भी जगता है  
 कुछ अनिष्ट होने को ही है बरबस ऐसा लगता है।  
 सार्वबाहू के शुचि स्वामी हैं जसो, तुम्हें स जनों वहाँ  
 जो कुछ भी हम-कर सकते हैं करें तुम्हारी सेवा-हाँ।  
 शुचि स्वामी के निकट पहुँच कर नसप्रिया की बड़ी व्यथा  
 रो-रोकर उस पतिव्रता ने कह दी अपनी सभी कथा।  
 'रीछ महिष हाथी सिंहों के हमने देखे मुख बड़े,  
 नल नामक निषवेश न भद्र ! कहीं हमारी वृष्टि पड़े।  
 पुरुष न हमको मित्रा कही भी जब से हम भाये वन-में  
 होगा प्रिय-कस्याण तुम्हारा देवी व्यथित न हो मन-में,  
 बार चेष्टि जगपद को प्रातःकाल शुभे ! हम को जाना  
 तुम भी साथ हमारे बसना व्यर्थ यहाँ है बस पाना।  
 भद्र ! सार्वबाहू हैं मैं ही ला पीकर तुम सो जाओ  
 रक्तक हों मणिभद्र हमारे देवि ! न भय कुछ मम पाओ।  
 भगसे विन उस सार्वबाहू के साथ बड़ी नल की रानी  
 नम-यव-गिरि नद जमीं देखती मिले न पर उनको मानी।

कुछ दिन पीछे एक विपिन में सार्वबाहू जाकर ठहरा  
 कमलाञ्जलि जल-जीर्णों-से युक्त सरोवर था गहरा।  
 हारे बड़े मनुज ला पीकर वे निद्रा-में लीन हुए,  
 कौन, जानता था वे जग-से सदा सदा को हीन हुए।  
 अर्ध-निद्रा बीते पर बभ्रु-गर्जों-का शूय बहाँ आया,  
 सम्मुख उसने पसे-गर्जों को बैठे भीर खड़े पाया।  
 भूत गये पानी पीना वे क्रोधित उन पर दूट पड़े,  
 सगे पर्वों-से सबको दमने मानो सुघर छूट पड़े।  
 धाम्य गर्जों से भिड़े युद्ध मानो छिड़ गया पहाड़ों-में  
 उठ उठकर जल सगे मागने, छिपे भद्र भद्राङ्गों-में।

मौपण-सुमुख-रदन रत्न छाया हाहाभार मया क्षण-में,  
 व्याप्त निशार्थों में होकर वह क्रन्दन फैल गया वन में ।  
 मृत-हृद-हाथी बड़े मार्ग-में कैंट समाधि-बिस्तीन हुए,  
 मरे कुचल कर मनुज बहुत से, कुछ कर-वप से हीन हुए ।  
 होती थी बिघाड़ गजों-की, धु-शशुडि छिड़ा रण-या,  
 प्राण बचाकर माने कुछ जन, छूट पड़ा बिसरा वन बा ।  
 हुए वही अविनाश निहत जन, कुछ बोले ही रोप रहे,  
 दोड़ो भागे हाथ बचाओ प्रादि घण्टे थे वहाँ बहे ।  
 बैदमी ने प्रलय-सुख्यों हृदय न था वहलें देखा,  
 भाग उठीं भीता वस्ता हो धरण्यन्द की सी रेखा ।  
 रोप बड़े भोगों को तब उन हसमाग्या पर रोप रहा,  
 इस सारी ही दुर्बटना का उस देवी ने दोष सहा ।  
 हृदय-बाधकर साज रहीं वे स्पन्द हुआ जिसका भीमा,  
 हाथ ! विपत्ति विद्व-में ठेरी रहीं न बिधि ने क्यों-सीमा ।  
 मावी के के सेम बंध क्या जो न गय मुक्त से सेसे  
 रहे घरा पर कष्ट कहीं वे, हाथ न जो मैंने मेले ।  
 म्हाड़ा प्रथम हुआ देवों से राजपाठ फिर गया सभी  
 भुक्ती प्यासी भटकी वन-में किन्तु विपद थी रोप अभी ।  
 होकर किन्न अमागी का प्राणेश्वर ने भी छाड़ दिया  
 मुर-साक्षी वे ऐसा प्राण भी, सत्यवत ने तोड़ दिया ।  
 अजगर मिमा न वह सा पाया महापाप वह व्याध मिला,  
 घोर घाव में निहत हुए सब बीठी मैं रह गई घिसा ।  
 नहीं निकलते प्राण अमागे, कसे कहे, वही जाऊँ,  
 बहुत बड़ा ससार नोजकर प्रिय को मैं कसे पाऊँ ।  
 घरे स्वप्नविदवास ! मुझे तो तू ही घाम जिताता है,  
 घोर ठिमिर में घाव तुमी से कुछ प्रकाश पा जाता है ।  
 मन बागी या बेह कय स दुख न किसी को पहुँचाया,  
 निदधय मैंने पूर्व जन्म के पापों का यह कल



उन्हीं सूरों की माया है सब किन्तु न मार्ग सजुंगी मैं,  
 प्राणेश्वर को पाकर, अपना भर सौभाग्य सजुंगी मैं ।  
 शेष बचे देवश मित्र कुछ जिन्हें न था यम ने निगला  
 चन्द्र-समान उन्हीं के पीछे, बसी मोहिनी चन्द्रकला ।  
 बेदी जनपद-में था पहुँचे, नृप सुबाहु थे जहाँ सुजन,  
 विप्रों से भी बिछुड़ी देवी था शोकात सती-का मन ।  
 धावा तम बस्त्रावृत उनका कसे सूखे बाम पड़े  
 जटा-जाल सा बन कर बिसरे इधर उधर स्वच्छन्द बड़े ।  
 दीम हीन कुछ झुंझ नता-सी बली नगर में थे जाती  
 गति भी बिसिप्ता-सी उनकी बोध न थीं कुछ भी पातीं ।  
 प्राणेश्वर की मूर्ति हृदय-में नाम उन्ही का भी अपतीं  
 चमत्ता फिरता ताप भरा तप थीं वे तपस्विनी तपतीं ।  
 कर-तल रव कर पीछे बालक 'पगली पमली' चिल्लाते  
 देवी-पर 'रज-ककुड़ नटखट पुष्प तुल्य' वे बरसाते ।  
 स्वितप्रभ-सी महायोगिनी रोप न थीं पर कुछ नतीं  
 मुडकर भी न देखतीं पीछे सब कुछ सहन किये-जातीं ।  
 विगत भान प्रिय-व्याम-ममन अब खड़ी जहाँ वे कल्याणी  
 राजभवम-से देख रही थीं बैठी उन्हें महारानी ।  
 देवी-की उस दिव्य प्रभा से उनका हृषित हुभा हिमा  
 उनको भीतर छे घाने का दासी को आदेश दिया ।  
 देवी के घाने पर उनसे बीणा-सी बोसी रानी,  
 मन्त्रिन बेश बिसिप्ता-बधा-में कौन देवि । तुम कल्याणी ।  
 हाम, विपद यह तुम पर कैसी तम डकने को वस्त्र नहीं,  
 स्व-जग तुम्हारे नहीं रहे क्या प्राणेश्वर भी गये कहीं ।  
 नहीं खोजने से भी पाती तुम सी परम-कांक्षि जग - में,  
 देवी हो तुम बेश बदलकर निपजय, भूम रही भग-में ।  
 भूत रही हो किन्तु भूमे । यह भय्य रूप ! जो छिपे नहीं  
 तूण पत्रों-में दबे पुष्प-का सौरभ क्या-छिप सका कहीं ।

महासती ने रोकर उनसे कही सभी मित्र ब्रष्ट कथा  
समागता का वृत्त जानकर रानी को बड़ खभी व्यथा ।  
भीममुता में दमयन्ती हैं तपस्विनी जब यों-बोली  
हृषीकेश रानी ने उठ भरसी सब उनकी कौलो ।  
'हाय प्रमागो दुखिनी बिटिया ! तुम पर कैसी विपत्त पड़ी  
सिपनी रहो वृषय से मेरे मुझे शान्ति मिल रही बड़ी ।  
मेरी भगिनो की तू पुत्री नृप दगाए की मैं बेंटी  
नैषध रानी होकर भी तू रही भाग्य-की यों-हटो ।  
तेरी खोज मची है बेंटी ! यहाँ वहाँ सब जगह धरी !  
मन्त्र-बातों-से टकराकर तट-पर धा-ही गई तरी ।  
मुझ से रहो यहाँ तुम बत्से ! भीति न अब कुछ भी मानो  
अपनी माँ तुम मुझको समझो इसे पिता का घर जानो ।  
समाचार तेरे पाने का कुण्डिनपुर पहुँचानी है  
हृष म प्राञ्च समाता तन में बनी भार से जाती है ।  
तू आई है भी आवेंगे मुझे न कुछ सन्तुह रहा  
धीरज धर ईश्वर का जप कर, अब न लगों-स अश्रु बहा ।  
तप धरा के भीषण तप को भेष बरम बोना ही है  
धर्म नियम कया-के पीछे, सूर्य उदित होता ही है ।  
मज्जन करमो बस्त्राभूषण अभी मयेष्ट मँगालो तुम  
झुगी हो बेंटी अब अब की भोजन सत्कर पालो तुम ।  
मेरी मुता सुनन्दा है, अब कुछ दिन उसके साथ रहो  
फिर कुण्डिनपुर पहुँचा-झुगी बत्से ! अधिक अधीर न हा ।'  
बहुत समय में मुनो सती ने मधु-सी स्नेह सनो वालो  
सिसक सिसक कर रोती थीं वे तप तप बरम-रहा पानी ।  
गोपी में भुज्ज रण रानी की मिगो-दिया अर्चिस सारा  
मिसी हुई सी घोमित थीं वे दा मरिताओं की बारा ।  
सता सदा परपर कम्पित थीं देवी का बिह्वल धा मन  
चिर दिन पीछे प्राप्त हुए वे प्राञ्च उन्हें अपने प्रिय-जन ।

गंगा सरा था किन्तु उम्होंने बर्हा सुधा-सी बोली ही,  
 धारज घर कर वे पिक जैसे मधुर वचन याँ-बोलीं ही ।  
 अम्ब ! तुम्हारी अनुकम्पा है कुछ से तनिक पार पाया  
 साध मित्री यह मुझे शान्ति-सी जब से विपद उबार आया ।  
 दुर्दिन जोते से सगत हैं धीरे सुदिन आनेने ही  
 मेरा भी विश्वास यही है वे मुझको पावेंगे ही ।  
 ऐसे ही रहने दो मुझको जैसे रूखी सूखी है  
 सब समझे माँ ! मन्त्रासूत्रण की मैं आज न सूझी है ।  
 कायायिक ही होती वे दो जिससे यह तन डक जावे  
 कहीं पड़े होने के सूझे यह पतिछा यो-धक जावे ।  
 हिडकी सी बोध गई छी वे सती सौमन कर फिर बोमीं—  
 दीन-रही थी पूष प्राप्त-सी हो मानो हरिणी मोली ।  
 जीवित तो रहना ही होमा करने है उनके दर्शन  
 माँ ! पर व्रत मैं तोड़ न सकती राजमवन भी होगा बन ।  
 तुमसे मिलकर आज भभागा राह सान्त-सा है चर का  
 यदि हो निदित बताओ तो तुम वृत्त मुझे कुण्डिनपुर का ।  
 दमन दान्न दम भैया मेरे, धीरे पिता स-कुशल तो हैं  
 मेरी वे पुण्या माँ-कहूँ स्वम्पा धीरे सबन लो हैं ।  
 वे दो मधु से माय्य हीन शिशु कहो अम्ब ! जीते भी हैं  
 माना के पर वे अनाथ से कुछ जाते पीते भी हैं ।

हैं-बेटी सब कुशल बर्हा है, वृत्त मुझे बिज्ञात सभी,  
 जेम भरे भैया, शिशु तेरे हैं भरीन माँ-शात सभी ।  
 चिन्ता एक सभी को तेरी बस दिन रात जसाती है,  
 तपी स्मृति उन सब के तन में निकल तोर-भी जाती है ।  
 पर अब तेरा भाना सुनकर उमरी, उनको मुक्ति मिले  
 तेरे पति का पामे की भी भासा है कुछ मुक्ति मिले ।  
 सुनकर यह सब वृत्त सती मे भामो लुप्त कोप पाया  
 मन्त्रन किया हुआ निर्मल मन मन मे तनिक तोप पाया ।

कापायिक ही धोती पहनी थीं कृदाकाया योगिन वे  
 धिक्कस सका कब भोजन मुक्त में, बनी गृहस्थ धर्मोगिन वे  
 समाचार उनके ध्याने का सुनकर सभी मुदित-मन थे  
 पर, वे तो कोई सी रहतीं दूर अभी जीवन धन थे ।  
 कृष्णपुर में बुल गया जो वहाँ अपार हृष ध्याया  
 सब ने अप तप व्रत का मानो सूत-मनोरथ-फल पाया ।

पुर ज्योति हमारी कब धावें,  
 हम सब विष्णु-से दर्शन पावें ।  
 उन यदास्विनी के पथ को तब  
 उत्सुक हा देस रहे थे सब ।

## द्वादश सर्ग

ध्यामूल निपधराज पाते ये भागे-से बीहड़ बन-में  
 घृणा स्वयं से रामी-पुत्र से वे प्रातः सापित ये मन-में ।  
 सौम्य हुई, फिर प्रातः आया किन्तु न रूप कही ठहरे,  
 चिन्तोदधि में उतर रहे वे शोक-ग्रस्त होकर गहरे ।  
 नृप ने भागे बन-में देखा मड़क रहा था दावानल  
 जमा रहा वह एक छोर से जो भी मिसता सचन अचन ।  
 कड़ कड़कर मामो दाँतों-से चबा सभी को जाता था  
 लप लप कर वह लपट आग से निज जिह्वा दिखता था ।  
 मड़ मड़ कर बस रहे वृक्ष जब शिखा बँड भी बिखल रहे  
 कर निज-रूप अनेक वहाँ ज्यों, यम सबको ही निगल रहे ।  
 तड़प रहे बस बीब मनस-में निकल न कोई पाता था  
 जिसर भागता उधर स्वयं को धिरा अग्नि-से पाता था ।  
 वामु भूम को उठा बरा-से नम-में दूर पकेस रहा  
 अस्त्र विपिन रञ्जितन अवीर से मानो होमी सेस रहा ।  
 नामा-बन्तु तड़प रव करते बस जाते कुछ ही क्षण-में,  
 आक्रन्दन आक्रोश व्याप्त था जिससे सारे ही वन-में ।  
 क्षण भर रुककर वहाँ नृपति ने वह सब महानाश देखा  
 महामृत्यु के महावक्त्र का था वह महाघास देखा ।  
 बीडा करते दावानल को देख रहे जब भूष लड़े,  
 तभी निकट ही 'हाय बचाओ' उनके कानों सम्य पड़े ।  
 घात-पुकार गई कानों-तक उधर घात-पर वृष्टि पड़ी  
 ठी नृप आबड़ हुए से भी पुकार ज्यों रज्जु बड़ी ।  
 यद्यपि वहाँ पहुँचने में तब प्राणों को था भय भारी  
 किन्तु उपेक्षा पीडित रव की कर न सके वे-अत-भारी ।

पीड़ित रक्षा-हेतु, वीर नृप ज्वलित अग्नि-में ही बैठे  
 देखे बंधे-हुए से सब कर्कोटक नागराज बैठे ।  
 कठिन उन्हें हिलना बुझना था जले अग्नि में जाते थे  
 'हाथ बचाओ' 'हाथ बचाओ' विवश पडे चित्लाते थे ।  
 मोह, भ्रमसंकर दावानल से समा थी सब सुप्त हुई  
 चित्लाते तक की भी उनकी शक्ति सभी ज्यो-सुप्त हुई ।  
 निर्मय नृप ने कुछ जल-कर भी, उन्हें अग्नि-स उठा लिया  
 दूर सुरक्षित जगह तभी ले जाकर जीवन दान किया ।  
 नृप से तब कर्कोटक बोले-हो प्रबुद्ध हृषित मन-में  
 राजन् ! मेरे प्राण बचाये तुमने आज उबलित-वन-में ।  
 नागराज मैं कर्कोटक हूँ नारद से अभिषेक्त हुआ  
 बहुस दिनों-से पड़ा सबड-सा, विपिन वृक्षों-से तप्त हुआ ।  
 कहा-उन्होंने, जब नम तुमको सायु-यदन हो स्पश कर  
 अग्नि-सप्त सब अङ्ग तुम्हारे अपनी अङ्गता सभी हरे ।  
 प्राप्त महर्षि भसा वह उमका सत्य न बयो होता कहना  
 सुविन दास के आ-महोके अब बीत गया वृक्ष का सहना ।  
 निपधराज ने स्वयं उठाया, धन्य ! आज मैं हुआ सुकृत  
 धन्य वीर निपधेश ! आपका सेवक हूँ यह अति उपकृत ।  
 निपधराज हूँ आप वीरवर निरचय मैंने मान लिया,  
 अपनी आप-शुक्ति से ही मैंने तुमको पहचान लिया ।  
 आज्ञा दा अब राजन् ! मुझको मैं कुछ प्रत्युपकार करूँ  
 जीवमदाना की सेवा कर कुछ तो हल्का भार करूँ ।  
 कर न मका यदि मैं कुछ तथा व्यय अथम तब यह जीवन  
 सीध कहो बयो-युसी हुए हो ब्याकुल-सा भगता तन-मन ।  
 नागराज-से, व्यथित नृपति ने अपना वृत्त कहा-सारं,  
 कहते कहते निपधराज के बही दर्जों-से जल-धारा ।  
 मित्र ! तुम्हारी बातें सुनकर मैंने तमिज भेष पाया  
 वन में सोती पत्नी को मैं, एकाकिनी छोड़ आया ।

पतिव्रता वे पूर्ण-सती हैं सुन्दर चन्द्र समान किसी  
 देवाप्राप्या कमसदृशी वे पापाधम को मुझे मित्री ।  
 रक्षा हाय ! कहाँ कर पाया मैं अपने ऐसे धन की  
 व्यथित हुआ ॥ सर्प-वश-सा व्याकुलता यह ही मन-की ।  
 निज व्रत के अनुसार मुझे अब दास किसी का होना है  
 उसी-वृत्ति का ही तप करके कलुष स्व-कृम से धोना है ।  
 पर यह सप बना है वाचक कैसे कहाँ छिपूँ जाऊँ  
 मुक्ति बतावो मुझे बन्धु ! कछु व्रत-से यथा पार पाऊँ ।  
 सच है, चितवन चिन्ता बेटी ममता को फलती माया  
 छोड़ चुका दोनों को मैं अब अपनी ही छपती काया ।  
 महापाप कर चुका अधम मैं मुक्ति न उससे पाऊँगा  
 विषम कृ-कर्म सहने ही होंगे कैसे मुँह बिस्मलाऊँगा ।  
 हाय ! विलसती सती विपिन में अब कन्दन करती होंगी  
 भवाकुसा वे विपिन-बुझों को देव देव मरती होंगी ।  
 पार पाप भी यद्यपि विषय मैंने उनके ही हेतु किया  
 सदा सदा के लिए सोच पर अपयश का यह मार लिया ।  
 फिर भी मुझे कृतज्ञ समझती होंगी वे पसहाम वहाँ,  
 भटक रहीं होंगी वन-वन-में वे प्रजमा निष्प्राय वहाँ ।  
 त-कृष्ण वे कुण्डिनपुर पहुँचे नागराज ! ऐसा कर दो  
 इसी ताप से तप्त हुआ ॥ व्यथा यही मेरी हर वो ।  
 ऐसे मुक्ति बता दो जिससे मुझे न कोई जान सके  
 कहीं पूर्ण व्रत, गुप्त-रहूँ मैं जन न मुझे पहचान सके ।  
 दोनों कार्य न यदि कर सकते तो पहला ही करा सके ।  
 परम पुनीता उन भीता की व्यथा भीति सब हरो सके !  
 अपने पर जो भी बीसेगी मित्र ! सभी में मेमूंगा  
 उन बेबी-के दुख का भी मैं भाग स्वयं ही लेमूंगा ।  
 तपस्विनी के उस तप बल से ही ये इतने दिन धीरे  
 इतने ताप बिगठ हैं तो, दुःखार्णव रहें न बिगरीये ।

धन्य मित्र ! तुम धन्य तुम्हारे हैं ये ऊँचे भाव बड़  
 धीर वीर कं सम्मुख जग-में रह सकते कब विघ्न लड़े ।  
 हैं क्या-मे दो कार्य भला जो तुमने मुझे बताया है,  
 समझ उन दोमों के फल नृप धरण भूमने भाये हैं ।  
 वे देवी स-कुदान अपने धर पहुँचेगी सन्देह नहीं  
 उनका रसक स्वयं तुम्हारा होगा पूत-स्नेह वही ।  
 और सामने देखो वह जो जड़ी दृष्टि-में आती है  
 पीत पुष्प को गोली-में भर सहर सहर लहराती है ।  
 इसे पीसकर मिठा ससिल-में फिर उसमें तुम स्नान करो  
 तीन दिनों-तक खाकर इसको प्रातः फिर जल-पान करो ।  
 काया का परिवर्तन हो तब तुम्हें न कोई जान सक  
 अन्तरङ्ग भी मित्र तुम्हारा तुम्हें न फिर पहचान सके ।  
 जब भी इसका इसी भाँति तुम फिर से सबन कर सोगे  
 तभी अन्तिम रूप यह अपना अनायास ही धर सोगे ।  
 इसके सेवन से हे राजन् ! कहीं न भय तुम पाधोगे  
 होंगे दूर अमङ्गल मारे और विजय पा जाओगे ।  
 यह बूटी इस विपिन भाग-में या इस गिरि पर होती है  
 पतिव्रता की दृष्टि किन्तु, इसकी माया को धोती है ।  
 जससं सदा सजग रहना तुम, चले अयोध्या में जाना  
 'बाहुक' नाम पहुँचकर अपना राजा से तुम बतलाना ।  
 गुणी स्वयं तुम कार्य तुम्हें वे दे ही बने जाने पर,  
 दुस तुम्हारे अगत होगे पार अर्धाक्ष का पामे पर ।  
 राजपाठ धन धान्य मुक्ता मुठ पणिपन, अपनी मारो  
 प्राप्त मभी य तुमका होंगे किसी हुई सो फुसवारी ।  
 हाँ यदि बन्धु ! चाहत हो तो ऐसी मुक्ति बताऊँ मैं  
 तुम्हें तुम्हारी बरभी स स-कृपा लीध मिष्टाऊँ मैं ।  
 'मही बन्धु ! सन पूण न होगा पाप न या पो पाऊँ मैं '  
 पाप धान्त हाँ प्रण-पालक भी तब न भये ! हाँ पाऊँ मैं ।



सुखिनी हों वे मित्र ! मुझे तो यह सब दुःख सहना ही है  
 पूर्ण अवधि तक दाम प्रयोध्या में बनकर रहना ही है ।  
 अति उपहृत मैं हुआ सुजन प्रिय । बड़े भाम्य से पाये हो  
 मेरे पुष्प मूर्त्ति ही होकर नागराज ! तुम धाये हो ।  
 मित्र ! सास्वना पाई तुमसे जिसने चिन्ता भीति हरी,  
 मेरी रामी कुण्डिनपुर-में पहुँच सकेगी क्षम-भरी ।  
 तदनन्तर हो विदा परस्पर सूपति बने महावन-में  
 चिन्ता प्राप्ता भय विश्वास सभी ये साथ नृपति मन-में ।  
 सेवन करते रहे माग-में नृप उस बूटी को लेकर  
 जाते थे अश्विराम वसे थे जैसे तैसे ले देकर ।  
 देसी नृप ने चमते चमते बूटी-की प्रभुत माया  
 अथ मलराज न भगते थे वे बदल चुकी थी सब जाया ।  
 बस दिन में उस विपिनार्णव-से अपनी नौका को लेकर—  
 पहुँच गये सरयू-तट 'बाहुक' नाम स्वयं को नृप देकर ।  
 कर मञ्जन अथ पान नृपति ने मानो विपिन-कक्षुप घोया  
 अमरपुरी-सी पुरी देख ये सुग्ध, सकल पथ अम ज्ञाया ।  
 विस्तृत सुन्दर मूलद म्बज्ज्य भी जन-परिपूर्ण महामगरी  
 विश्व-सिन्धु का पूर्ण-विभव मानो भी गोम-भरे गगरी ।  
 अवलोकन कर पुरी प्रयोध्या का बाहुक अति सुदित हुए,  
 मोद-भगे फिर राजसभा में वे विस्मय-से उचित हुए ।  
 नृप अतुल्य राम भासन पर शोभित होते थे ऐसे  
 मम-में नक्षत्रों से फिर शशि छिन्काता है अथि वसे ।  
 ममिन वेश वह इष्ट कप जम नृप ने निज सम्मुत्त वेशा  
 लिपी हुई सी मिले गगन-में इष्ट बटा की सी रेशा ।  
 कहो भद्र ! क्या-नाम तुम्हारा धाम का भी हेतु कहो !  
 किसी विपन्न अथपद के सुम सगे निवासी मुझे कहो !  
 यदि मुझसे कुछ कार्य बने, सकोच छोड़कर वसमाओ  
 अपना ही जनपथ यह समझे भय-संदाय कुछ मत पाओ ।

प्रणति-पूज बाहुक विनयी हो सगे नृपति से यों कहने—  
 हे सम्राट् ! जसा आया मे होकर वास यहाँ रहने ।  
 वासिणास्य जनपद से आया बाहुक मामक मे जन हूँ  
 स्व-जन्म-मुक्त मैं विपद ग्रस्त हूँ इससे ही क्लेशित-मन हूँ ।  
 सचिव सखा सेनानी से मे कार्य दास तक के सारे—  
 कर सकता हूँ बड़ी दक्षता से मन-में धीरज धारे ।  
 पाक-शास्त्र में मुझसा पण्डित नहीं लोचने से पावे  
 एक घास-में सभी रसों-का हे नृप ! स्वादु तुम्हें आवे ।  
 यद्यपि सच है आत्म प्रशंसा बिना न करते भूल कहीं  
 किन्तु, अपरिचित जन के भागे कहना पड़ता हान सही ।  
 हय-विद्या में परम-विज्ञ मुझसा न मनुज नृप ! पा सकते  
 अश्व-वरत्न में देव वनुज भी तुल्य न मेरे जा सकते ।  
 उच्चैःश्रवा-समान हयो-से हयशासा भर सकता हूँ  
 वायु-तुल्य घर्षों की गति हे राजन् ! मैं कर सकता हूँ ।  
 दशो भीरवों से विशुद्ध शतपदी कुलीन अष्ट घोड़े—  
 गति-में गरुड़ समान किन्तु जो लगे देखने में घोड़े ।  
 शतयोजन अभिराम सूप ! जो जा सकते हैं बिना पके  
 सिन्धु देश में होते वे साधारण मनुज न खा सकें ।  
 कुछ दिन यहाँ निवास करें, फिर अपने घर चम दूंगा मैं,  
 बदले में हे राजन् ! कुछ भी मन न आप से लूंगा मैं ।  
 जीवित रहने के हित एक समय ही भोजन करता हूँ  
 साज-निवारण हेतु एक ही बसन बेह पर धरता हूँ ।  
 “हे बाहुक ! तुम-सा जन पाकर मैं स्वयमेव कृतार्थ हुआ  
 व्याज तुम्हारे से हे भागत ! प्राप्त मुझे परमाय हुआ ।  
 किसी भीति का कष्ट न होगा, बरो निवास क्षम से तुम  
 हयशासा को बरो समुन्नत हे प्रिय बन्धु ! प्रेम से तुम ।  
 मेरे अन्तरङ्ग मित्रों-में गिने आज से आओगे,  
 दश सहस्र स्वर्णिम मुद्रायें मासिक वेतन पाओगे ।

सुखिनी हों वे मित्र ! मुझे तो यह सब दुःख सहना ही है  
 पूर्ण अवधि तक दास प्रयोध्या में बसकर रहना ही है ।  
 प्रति उपकृत मे हुषा सुजन प्रिय ! बड़े भाग्य से पाये हो,  
 मेरे पुष्प मूर्ति ही होकर नागराज ! तुम पाये हो ।  
 मित्र ! सांख्यना पाई तुमसे जिसने चिन्ता-भीति हरी  
 मेरी रामी कुण्डिनपुर-में पहुँच सकेगी क्षेम भरी ।  
 तदनन्तर हो विद्या परस्पर सूपति चले महावन-में  
 चिन्ता प्राप्ता भय विश्वास सभी ये साथ नृपति मन-में ।  
 सेवन करते रहे मार्ग-में नृप उस बूटी को लेकर  
 जाते थे प्रविराम चले वे जैसे जैसे ले देकर ।  
 देखी नृप ने चलते चलते बूटी-की प्रकृत माया  
 प्रब नक्षराज न मगते थे वे बदल चुकी थी सब काया ।  
 दस दिन में उस विपिमारुव-से प्रपत्नी मीका को लेकर—  
 पहुँच गये सरसू-तट 'बाहुक' नाम स्वर्ग को नृप लेकर ।  
 कर मञ्जम बन पान नृपति ने मानो विपिन-कलुष धोया  
 अमरपुरी-सी पुरी देख वे मुग्ध सकल पथ धम झोया ।  
 विस्तृत सुन्दर सुसद म्वच्छ की जन-परिपूर्ण महामगरी  
 विश्व-सिन्धु का पूर्ण-विभव मानो की गोद भरे गगरी ।  
 प्रबसोकन नर पुरी प्रयोध्या का बाहुक प्रति मुवित हुए  
 मोद भरी फिर राजसभा में वे विस्मय-से उदित हुए ।  
 नृप मृत्युपण राज-आसन पर शोभित हाते थे ऐसे  
 मम-में नक्षत्रों से धिर शशि छिन्काता है छवि जैसे ।  
 मन्त्रित देख वह कृष्ण रूप जन नृप ने मित्र सम्मुख देखा  
 सिन्धी हुई भी जिसे गगन-में कृष्ण घटा की सी रेखा ।  
 'कहो भद्र ! क्या-नाम तुम्हारा जाने का भी हेतु कहो ।  
 किसी विराट्पण अमरपद के तुम सगे निवासी मुझे प्रहो !  
 यदि मुझमें कुछ कार्य बने, सकोप छोड़कर अवसाधो  
 प्रपना ही जनपद यह समझो भय-समाय कुछ मत पाओ ।

एति-पूर्व बाहुक विनयी हो सगे नृपति से यों कहने—  
 हे सम्राट् ! जसा आया मे, हाकर दास मही-रहने ।  
 दक्षिणार्ध जनपद से आया बाहुक नामक मैं अन है  
 स्व-जन-मुक्त मैं विषय प्रस्त है इससे ही क्लेशित-मन है ।  
 सखिब सत्ता सेनानी से से कार्य दास तक के सारे—  
 कर सकता है बड़ी दक्षता से मन-में धीरज धारे ।  
 पाक-क्षेत्र में मुमत्ता पण्डित नहीं साजने से पावे  
 एक घास-में सभी रसों-का, हे नृप ! स्वाधु तुम्हें आवे ।  
 यद्यपि सच है आत्म-प्रससा विज्ञ न करते मूल कहीं,  
 किन्तु, अपरिचित जन के आगे कहना पड़ता हान सही ।  
 हय-विद्या में परम-विज्ञ मुमत्ता न मनुज नृप ! पा सकते,  
 अस्व-परस में देव दनुज भी तुल्य न मेरे जा सकते ।  
 उच्चै-अवा-समान हयों-से हयशाला भर सकता है  
 धातु-तुल्य अश्वों की गति हे राजन् ! मैं कर सकता है ।  
 दधो भौरियों से बिशुद्ध छतपदी कुम्भीन थपठ थोड़े—  
 गति-में गदगद समान किन्तु जो सगे देखने में थोड़े ।  
 छतयोजन अविराम मूप ! जो जा सकते हैं बिना पके,  
 सिन्धु देश में होते वे साधारण मनुज न जान सके ।  
 कुछ दिन यहाँ निवास करूँ फिर अपने घर चल दूँगा मैं,  
 बदले में हे राजन् ! कुछ भी जन न आप से लूँगा मैं ।  
 जीवित रहने के हित एक समय ही भोजन करता हूँ  
 साव-निवारण हेतु एक ही बसन बेह पर भरता हूँ ।'  
 हे बाहुक ! तुम-सा जन पाकर मैं स्वयमेव कृपावं हुमा  
 भ्याज तुम्हारे से हे धामत ! प्राप्त मुझे परमार्थ हुमा ।  
 किसी भीति का कष्ट न होगा, करो निवास क्षम से तुम,  
 हयशाला को करो समुन्नत हे प्रिय बन्धु ! प्रेम से तुम ।  
 मेरे अन्तरङ्ग मित्रों-में गिने आज से जाओगे,  
 दश सहस्र स्वर्णिम मुद्रायें मासिक बेतन पाओगे ।

हय विभाग के अधिपति पद-पर अपनी श्रव नियुक्ति जानो  
 अपने थप्ट गुणों का ही है भद्र । मान यह तुम मानो ।  
 'आभारी है सूप । आपका पर कुछ द्रव्य न लूंगा मैं  
 मेरा कुछ वत राजन् । उसको भङ्ग न होने दूंगा मैं ।  
 वही हूँ आयक्ष्यकतायें बनतीं कष्ट निमित्त सदा,  
 वहा धर्म कराता आया जन से दुर्लभ वित्त सदा ।  
 इस माया के कारण राजन् ! बहुत कष्ट मैं उठा चुका  
 श्रव यह अपनी ओर तनिक भी मुझे न सकती कही मुक्ता ।  
 अन्य एक दो जन भी ऐसा वत से मेरे अनुगत हैं  
 मुझी आशों के कारण नृप ! महापुरुषों से वे घृत हैं ।  
 जब तक उनको पूर्ण-सुख ही प्राप्त न सुख हो जायेंगे  
 जब तक तप वन से ये मेरे पाप न सब धो जायेंगे ।  
 अपनी सब इच्छाओं पर मैं प्राप्त न जब तक श्रव करूँ  
 और न जब तक पूर्ण-सुखों की महन-शक्ति सचय करूँ ।  
 तब तक के ही लिए देव ! यह ऐसा वत धारूँगा मैं  
 अपने श्रम को पूर्ण करूँ दुःख से न कभी हारूँगा मैं ।  
 समा-सहित ये शक्ति सूप बाहुक की य बातें सुनकर,  
 विस्मय मरी घरा है ये सब मीन मही मन-में गुनकर ।

नृप अतुर्लभ-श्रव-शासा का बाहुक ने सब भार सिया  
 सब मूर्तों को और हयों-को आत्म-सदृश ही प्यार किया ।  
 दूर दूर से श्रव कर छोड़े मरी गई वह हमशासा  
 मुष्ठा-मारिणियों-से मानो थी प्रवीण वह मणिमासा ।  
 सिन्धु-वेदा के सम्बर्ण हय, तन कृश किन्तु महान् बसी,  
 दृष्टि उपेक्षित उन्हें समझनी गति कहती य हैं विजसी ।  
 दशा अगह की दलों मौरियाँ थीं विपुल विमले तन पर,  
 छाड़ धरातल उड़ते से वे जैसे बिभार यथा मन पर ।

मध्य चर्य्य दे पेय पुष्ट कर बना दिये वे सभी सबल  
विविध रंग परिपूर्ण धन्य वे वे उनमें कुछ पूरा धवल ।  
कर परिधर्म्य मन से उनकी रोगादिक से मुक्त किये  
सगे समझने वे नर-भाषा धन्य गुणों-से युक्त किये ।  
अपने स्वामी-हित करते वे प्राणों का भी मोह नहीं  
धुसें धनस-में कर न सबें प्रभु-भाषा से विद्रोह कहीं ।  
हय-बल से साकेतपुरी की सेना-शक्ति अपरिमित की  
मानो वायु-शक्ति सञ्चित कर बाहुक ने एकत्रित की ।  
अपने कार्य-मन्य वे रहते या न उन्हें कुछ धन्य व्यसन  
बने तपस्वी तप करते वे एकाग्र हो एक वसन ।  
दिन पर दिन जा रहे बीतते, काल भक्त स्वच्छन्द बसा  
नम-में भगणित पूरी हो हो क्षीण हुए थी चन्द्र कला ।  
कार्य-मन्य भी बाहुक को सब धरे उदासी रहती थी  
भीतर भीतर, धमी-धनस सी चिन्ता उनको दहती थी ।  
कभी किसी ने उनके मुख पर देखी कुछ मुस्कान नहीं,  
छिपी घटा-में विधु-मेला सी मुख-शोभा निष्प्राण रही ।  
चलते चलते रुक जाते वे सोते हुए धौंक पड़ते  
झंटे झंटे कभी दुर्गों-से भाँसू मुक्ता-से झड़ते ।  
स्वाधोष्यबास सीव हो जाता होता कभी स्वयं ही मन्द  
परम व्यथित रहता था उनको उनका ही वह अन्तर्द्वन्द ।  
याद कभी आता मारव का वह पूर्वानुराग देना,  
बन घालेटक कभी याद आता था हंस पकड़ रुना ।  
उसे छोड़ना, उड़कर उसका निकट भीमजा के जाना  
तोना सोकों के वैभव-सा, सुधा सुलद-उत्तर साना ।  
और बीच में-ही देवो से अपना विवश छल जाना,  
उस छल का ही कर बन जाना, भैमी-के दर्शन पाना ।  
ओह ! प्रतिज्ञा के भैमी-की उन्हें व्यथित कर देती थीं  
विषम-बिताप और पीड़ा-से उनका तर भर बेती थीं ।

याद स्वयम्बर की जब उनको मैत्री की छवि आती थी  
 उनके प्राण तड़प-से उठते बिद्युत-सी झू जाती थी ।  
 वज्र-का उस कमल-पुष्प से विजित स्वयं ही हो जाना  
 विश्व सुन्नी स्वयम्बरा-से फिर अपना माता पाना ।  
 आता याद विहार विपिन-का राजपाठ का गत होना  
 स्थित भीमजा-सहित विपिन में सब नीचे भूसे सोना ।  
 आशेटक द्वारा चित्रित जब ध्यान कुमुदनी का आता  
 चित्र-पर्वों में, तब नृप मिर खड़ा से था मुक सा जाता ।  
 और तपस्वी अनुज रूप का स्मरण बना देता पानी  
 होते बड़े धीरे ज्ञान को आते सूल परम ज्ञानी ।  
 हाय ! आगो ने मैने ही सारे घर को दुखी किया  
 छोड़ चुका संतति भी अपनी सिर पर अपयश-भार लिया ।  
 मैं कुलघाती हाय किये मेरे वरुण कभी न सूझेंगे  
 अन्धवश ! पुष्पित होने पर भी ये कटि बूझेंगे ।  
 उठती कचक असह्य उन्हें तब भुल से 'हाय' निकल जाता  
 पाद-स्थित जन चम्रित हो उनको बैस भीति पाता ।  
 आता याद छोड़ना जब वह बन-में रानी सोती को  
 अक्षता अजय अमरा का धारे उस आधी बोती-को ।  
 तब वह स्मरण-शक्ति भी उनकी कुटिल-सी हो जाती थी  
 विमिर आस आगे फिर जाता दृष्टि न पथ को पाती थी ।  
 ओह मराधम पापी हूँ मैं निकल तभी मुख से आता  
 सुविचक-दशिन तुल्य हुआ तब बाहुक-तन तड़पन-याता ।  
 समित अन्ध नम-में जब हँसता लेकर अपनी बदन छत्र  
 उसे देख बाहुक-मुख पर तब फिर जाती थीं ओक-मटा ।  
 अन्धसुखे ! तुम आज कहाँ हो हेमलत ! धामो धामो,  
 ठड़प रहा हूँ हत होकर मैं, मेरे प्राण बचा धामो ।  
 सब ऐश्वर्यों के झुटने से बन-में दुख भति बिकट रहा,  
 पर, जब तक तुम वहीं निकट, सब कुछ ही मेरे निकट रहा ।

भाव मुझे धन सुना सगता, इच्छा रही न जीने की  
 दृष्टि प्रभागी पर, हठ करनी रूप-सुधा-रस पीने की ।  
 अस्तव्यस्ता से जब बाहुक यों-ही व्यथित रहा करते,  
 मदन-शरों की बवध-हीन से वे असहाय सहा करते ।  
 पी पी, पातक कहता था जब कोयल कूक मधासी थी  
 स्यामल-बटा उफनती सी जब नम-में धिर धिर धाती थी ।  
 बिद्युत तड़प तड़प उठती तब सभी मैय बाहुक जोते  
 हा मैमी हा मैमी ! कहते यशु-समिस से मुँह घोते ।  
 भा-जाता प्रण याद किन्तु अब तब कुछ धीरज था पाते  
 मौन नेत्र, कर-तल पर मुक्त रक्त समाधिस्य से हो जाते ।  
 जीवक मूठ पूछता उनसे मित्र ! व्यथित क्यों-रहने हो  
 बतसायो, वह दुःख मुझे भी, जिसे रात दिन सहते हो ।  
 यत्नों से ही कठिन कार्य-साधिका मुक्ति मिल जाती है  
 मित्रों-से कहने से ही तो कष्ट-मुक्ति मिल पाती है ।  
 "मित्र ! जानता हूँ मैं, एक अभयो ऐसे दुजन को  
 अपने हाथों गँवा चुका जो अपने सब तम मन धन को ।  
 अपनी पतिव्रता पत्नी को घापी रात बिजन वन-में—  
 सेली-हुई छोड़-भापा वह दया न कुछ धाई मन-में ।  
 उसकी सती मुखरी का जब ध्यान मुझे भा-जाता है  
 हो जाता हूँ व्यथित न मेरा हृदय भीन तब पाता है ।  
 इसी भाँति कुछ कह जीवक-त बाहुक छुटकारा पाते,  
 किन्तु बिमोगानन सपटों-से, बलते-से फिर धिर जाते ।

यदपि यहरता सिन्धु, गगन-में विरे हुए धन,  
 बलता कम्पावात, स्वयं केवट व्याकुल-मन ।  
 घोर तिमिर छा रहा न था संवस लेने को,  
 हुई तदपि प्रण-नाथ अवधि-तट धू-सने को ।  
 मरने जीने का प्रश्न था मची हुई थी जलबली,  
 तब सरपायित हो किन्तु वह जूल-निषट सरसी जसी ।



छिड़ा भुघा सुरलोच में यह ही एक प्रसंग  
निज-व्रत-निष्ठा अवण कर होते सुरभी दग ।

'बोस उठे देवेश करो कृपा अब कलि सुभग  
क्यो-बेते भति क्लेश निरपराध जन को घरे ।

'बोले-कलि हे देव स्वय सज्जानत हूँ मैं  
देकर उनका क्लेश स्वय ही माहत हूँ मैं ।  
सुसोपाय कर भुका कित्नु वे मारें तब तो !  
मेरा तो प्रण गया पूर्ण हो उनका अब तो ।

## त्रयोदश सर्ग

है देह स्पन्दन, जुते दुःख - मृत्यु-रूपी—  
 दो अक्षय्य ये सज्जन जो इनसे रहेंगे ।  
 आधात द्येन-सम ही इनका बहा तो  
 हो भीति-मुक्त जन-स्वस्थ यहाँ-सहेंगे ।

सती वे आई भी पर न कुछ आना यह रहा  
 वनों-में देवी का निखिल-धन पानी बन बहा ।  
 हुषा तो बपा । पानी जलद व्युत्त भू-में जद पड़  
 हँसे ये सीपी-सी निरस्त तब मुक्ता-धन जड़ ।

ये यदपि देह पर आज न उनके गहने  
 कापायिक धोती मात्र सु तन पर पहने—  
 कुण्डिमपुर में थी प्रगट गगन-की भूपा  
 छिटकाती-थी थी छटा वृष्टाङ्गी ऊपा ।  
 पय देल रही थी हाय, सूर्य जब आने  
 अपना सोमा धन, कमल-नेत्र अब पार्वे ।  
 रहते बिहारे से बाल न सुष थी तन की,  
 अनियन्त्रित अश्व-समान दशा थी मन की ।  
 थी भूति बही, हाँ-वही विजन कानन की—  
 आ-गई प्रतिष्ठा-हेतु परन्तु-भयन की ।  
 अब राजमन मर गया बिपिन के रीते  
 या उन्हीं ताप यदपि दिन बीते ।

घन कहाँ ! धाम्र से भिन्न सता भी प्यासी  
 वह हास्य स्वप्न । भव धरे घनन्त उदासी ।  
 कितना गहरा यह रग सफल सब सहकर—  
 कहता मानो सिन्धूर माँग-में रहकर ।  
 भाई जिस दिन विष्णु-स्नान घटा से भावत—  
 कुण्डिनपुर-में थी इन्दु समान समावृत  
 पर देख राहु-सा घास उदास हुए सब  
 आशा पाकर भी हाय । निरास हुए भव ।  
 यह कौन ! इन्ही-सी अन्य सामने भाई—  
 आपाद-मुकुर-गत विष्य-सती-परस्पाई ।  
 वह ही कापायिक वरुण गात्र-निर्भूषण  
 पूजनी सङ्घ्या-सी वही सुखद निर्वूषण ।  
 वे ही मुमुक्षु से व्यास बास सहराते  
 मुक्त-विष्णु पर बादस सदस शोक घहराते ।  
 दृग रहे अभी दो बिन्दु धरे नीरज से  
 पर वा वह अ-क्षम बाँध अ-वस धीरज से ।  
 दो नवियों का यह मिसन उमड़ती भाई  
 पावस-जल से परिपूर्ण उमड़ती भाई ।  
 पानी का बाटा कहाँ रहेगा अब-तो  
 टूट फूटेगा बाँध बहेगा सब तो ।  
 व एक अन्य का बनी हुई थी दण्ड  
 थी देख रहीं सामने सभी निज-तन-मन ।  
 बिरदिन पीछे प्रतिबिम्ब आब निज दीक्षा—  
 वह बीज हीम कृपा सता-वितप्स-सरीक्षा ।  
 मरने को मानो हानि हुई एकप्रित  
 दोनों मिसकर ही एक-तुल्य हों बिप्रित ।  
 भर कौसी सिपटी सिमट मिनी सुधि सूती  
 आहा दो सङ्घ्या साथ गगन-में फली ।

हो सकीं कहाँ वे किन्तु पूर-सी पूरी  
 दो मिमकर भी थी एक सु-भूति भङ्गरी ।  
 या एक सलिल का ओत हुआ दोनों-का,  
 वह स्कन्ध-वसन जल-सीत हुआ दोनों-का ।  
 भ्रातृभ भी रोकर भगा छोड़ने पानी  
 सगम-में उसने भी न बनी कुछ मानी ।  
 'हा बहन कुसुदनी ! हाय ! हुईं तुम कैसी  
 वह भूति तुम्हारी कहाँ, बिमोहक बसी ।  
 मुझ-सी हो तुम्हें निहार विपत्ति-भमागी—  
 रस सकी न धीरज मरी यहाँ-भी जागी ।  
 मैं ही भमागिनी हेतु, दुखों का सब के  
 सोधित करते वे वेध वैर निज बन्ध के ।  
 पाकर तुमको बुझ द्विगुण हुए से मेरे,  
 मँडराये मैं सर्वत्र मुमो-से प्रेरे ।  
 मैं साय रही तब कुशल हा न वह भी अब,  
 सुमने री ! अपने हाय किया यह क्या-सब ।  
 वह स्वतः प्राप्त निज मान्य स्वयं ही छोड़ा  
 निज प्रिय-धन से मुँह मोड़, द्रव्य क्या-जोड़ा ।'  
 हाँ बहन किया या सभी ठीक ठब मैंने  
 भी प्राप्त बहन की बरद लीक तब मैंने ।  
 तुम बन बन भटके और बनूँ मैं रानी  
 तुमने अपनी ही बहन न हा, पक्ष्पानी ।  
 पर, मेरा यह प्रतिशोध चुकाया तुमने  
 मेरे वृत्त का ही यह फल पाया तुमने ।  
 यह बन गिरिवर-जा गया, हाय ! राई का,  
 भाई मे निज अपमान समझ भाई का—  
 शृणु ध्याज बहन मे लिया बहन का सारा  
 व पुरप बहन ! क्या किन्तु हुमाग पारा ।

## रमयन्ती

मैं तो आई थी उन्हें सजग करके ही  
 अपने सिर पर सब पाप-ताप धरके ही ।  
 पर वे निशार्थ में घोर विजन कानन-में—  
 सोती को भागे छोड़ न सहमे मन-में ।  
 हाँ-वहन ! तबप बहु एक रझाती मुझको  
 वेदना विषम दिन रात घुसाती मुझको ।  
 मेरे सिर पर घर हाथ हृदय से कह दो  
 या हुआ वहन ! दुष्काण्ड निपथ में वह जो ।  
 उसमें मेरा भी हाथ मानती हो क्या—  
 मेरे मन का सब भाव जानती हो या ।

‘हा शान्त पाप सन्देह करें तुम पर भी  
 सब पूछो तो निबोंर घरी ! बेबर भी ।  
 विधि वश वे बने निमित्त न कृत यह उनका  
 मेरा बेबर निष्पाप सिन्धु सद्गुण का ।  
 कर चुके मुझे वे जमा देव पर सब भी  
 क्यों घोर दुर्गों की घटा घिरी यह सब भी ।  
 भावी को रोके वहन ! जक्ति यों-रिसमें  
 सब दोष किसी का रहा कहीं कुछ इसमें ।  
 यह हुआ वही जो घरी ! घटस का होना  
 यह कलह-मूल है सदा धरित्री सोना ।

‘रोना बौना यह छोड़ हटो हे बेटी !  
 क्या-रही अंगत में तुम्हीं भाग्य की हूँटी ।  
 यों कहकर नृप ने कौसी सभी छुड़ाई  
 मानो दो उलझी सता दीध्र सुलझाई ।  
 चिर दिन पीछे तुम इष्ट-सिद्धि-सी आई  
 मैंने अपनी सब लूटी आज निधि पाई ।  
 तुमको सम्मुख सबलोक हुआ दुःख कम-सा,  
 होगा न पिता हा-मेरे तुल्य अघम-सा ।

कैसे भावों-से पसीं पुत्रियाँ मेरी  
 हा-कमल-कोमला वधू-दुखों ने घेरी ।  
 'कुशली तो हो हे तात ! भीमजा योनी  
 रोकर वह लिपटी धार्ल पिता-से भोसी ।  
 माँ-दाप जन्म के हेतु, न भाग्य बिधाता  
 निज कर्मों-के अनुसार जीव फल पाता ।  
 'हे बेटी कैसी कुशल और वह किसकी  
 भ्रातृ-म दुखी वह दुखी पुत्रियाँ जिसकी ।  
 हों जिसके भिक्षु-समान सुता चामाता  
 हा-शोक तवपि वह अधम नृपति कहनाता ।  
 हा हन्त ! सु-राष्ट्र विदर्भ काम क्या प्राया  
 जामानु-तूपा भी बुझा न जो यह पाया ।  
 क्या-कहूँ किसी से कहाँ-स्वमुख दिखलाऊँ  
 इस जीवन से तो सुखव भूत्यु पा जाऊँ ।  
 क्या-हमने ही दुष्कर्म किये जग-भर-में  
 जो फँसी हमारी नाव बुरी अधभर-में ।  
 घोरज धर कर हो शात उन्हें भी पावें  
 सर्वत्र गुप्तधर छुटे सोजकर भावें ।"  
 'आ निरामरण ॥ अम्ब तपस्विनि ! मेरी  
 असमय ही तू यों-हाय ! जरा ने घेरी ।  
 "हाँ मुझसे मेरी लिपट साडिनी दासा  
 जो तुझे सुसगती हुई हृदय-की ज्वाला ।  
 मैं भीषित हूँ हाँ-महामहिम-सन्नाशी  
 जिसकी बेटी है नियधराज की राज्ञी ।  
 क्या-किया हाय रे अध भाग्य ! क्या-भूमी  
 यह करुण-सता सी विपिन-दुखों-से कूभी ।  
 इस विलुप्त भू-पर अगुपमेव शृगवन्ती—  
 तू बिबमुन्धरी हाय वही दमयन्ती ।

श्रेयस्कर वे प्राणीय सभी से पाये—  
मेरी बेटी के काम न हा क्यों प्राये ।  
फिर भी तुमसे मातृत्व उफल है मेरा,  
कुसबधू-हेतु प्रादर्य मार्ग यह तेरा ।  
“तुमको भी मैंने दुःख दिया हा मैया !  
वे दमन दान्त दम कहीं समोने मैया !

जीजी हम तो ये रहे तुम्हारे धनुषर,  
तुम मूल गई क्यों हाय बहन ! धपना घर ।  
माँ-बाप बन्धु परिवार इसी हित होता—  
करता सुख शान्ति प्रदान दुःखों को सोता ।  
यदि निषण गया था राज्य निषध-का स्रल-से  
तो जीजी ! हम सब बन्धु न थे निर्बल-से ।  
क्या-देख बहाँ धन्याय मीन हम रहते  
स्रल कपट पूर्ण पद्मम्ब न वह हम सहते ।  
नम पुष्कर एक समान यद्यपि है हमको  
करते तब हम धपसरित किन्तु इस धम को ।  
धपना वह कब ! जो धसत प्राचरण करता  
वह लल स्रल से जो धन्य भाग को हरता ।  
यह धनुष-मात्र तब बहाँ सु-न्याय चुकाता  
निज दुष्कृत का फल वस्त्रु शीघ्र ही पाता ।  
होते ये दोनों धोर दान्त दम, प्राता  
मेरे सम्मुख सब कौन कहीं टिक पाता ।  
मैं पुरमिसधियाँ सभी निषध से हरता  
वह राष्ट्र धीतर तुम्हें समर्पित करता ।  
धिग वे भुज बल के कोप, काम क्या-प्राये  
धपमी भगिनी का भी न ताप हर पाये ।  
मच्छा भानो कुछ हुषा न होता यह तब  
तो था पदापित राष्ट्र विदर्भ जो है धब ।

कहते कहते, उन चोर-कसुप हरणों-में—  
 मह दमन दान्त दम हुए प्रणत चरणों में ।  
 धी मस्तक पर पद-भूसि दृगों में पानी  
 सम्मुख थीं सिद्धि न-भूत निषध की रानी ।  
 व उठा उठा निज बन्धु सती ने धम-से—  
 मर लिये प्रेम से सभी धनु-में क्रम-से ।  
 उस काल सुशोभित हुई भीमजा रानी  
 सुर-गण-हित बरवा हुई बि धम्य भवानी ।  
 भैया ! मैंने कब कष्ट धम्य से पाये  
 हाँ स्वयं मात्स्य ही समस्त स्व-दीप्त बढ़ाये ।  
 वह मेरा वत मैं मज्ज न कर सकती थी  
 यम को भी सम्मुख देख न डर सकती थी ।  
 पर यह वृद्ध यम-से भी धति तीव्र धमागा  
 का विजय विपिन में मुझे-सुप्त को त्यागा ।  
 हाँ गया मज्ज वह मेरा मधु-सा सपना  
 मैं समस्त सकी हूँ दोष न अब तक धपना ।  
 कुछ धीरों का भी दोष न माना मैंने  
 वह पूव-अम-दुष्कृत-फल आता मैंने ।  
 या धटम बन्धु ! भवितव्य न टल सकता था,  
 मानव-वश उसमें सहज न चल सकता था ।  
 कादम्ब दण्ड के हेतु रुषा करता है  
 वह धधम दृष्ट का म्लान प्राण हरता है ।  
 फिर तुम्हीं कहो यदि धनुष सम का भूषण-  
 धर-में धमता तो या न बढ़ा क्या-दूषण ।  
 तब तक जल-पूरित नेत्र हुआ सुकुमारी—  
 भभी ने देखीं लड़ीं भाभियाँ सारी ।  
 वे रोककर दानव-पीड़ित धव-मुता-सी—  
 भैमी-चरणों-में गिरीं विमल-मता-मी ।



हे सती शिरोमणि देवि ! न सधाम मानो  
 ठहरो घब सुख से यहाँ निपध ही जानो ।  
 प्रा-गया हमारा पुण्य धरीरी होकर,  
 क्या रहा निपध-में सेप तुम्हें भी-साकर ।  
 दीवी ! हमने वह सुना वृत्त सब छल-का  
 पाकर घब सम्मुख तुम्हें हुआ दुख हल-का ।  
 छोटी दीवी को देख देख सूनी-मी—  
 होती मर्मन्तिक-व्यथा हमें दूनी सी ।  
 ये तपस्वरण कर चुकी भवन-में बितना  
 वन में भी घर स दूर न समझ इतना ।  
 पूजेंगी सावर हम सब तुम्हें नियम से  
 पाधार्थ्य करो स्वीकार नित्य तुम हमसे ।  
 वे भी भावेंगे धीध्र यही मन कहता  
 धामीवन जग-में कौन क्लेश ही सहता ।  
 तुम पाकर उनका साथ हर्ष-से फली  
 माँ-बाप धन्यु परिवार, सभी को भूसी ।  
 बनकर समोगिनी विपम व्यथा भी भेली  
 परिहास न यह नम-में क्यों ! सम्प्रा लेली ।  
 क्या इन शिन्धुओं को उचित भूम जाना या  
 सीमाव्य-सता-फल-फल न विसराना या ।  
 यों-कहकर इक्षित किया नेत्र प्रेरित कर,  
 मैत्री ने सञ्जन-सृष्टि उभर की मत्सर ।  
 देखे सम्मुख दो भीत सन्तुष्टि शक्ति—  
 पिष्टु लड़े हुए, मृग-दावक से घातकित ।  
 भयमक होकर सुधि भूम, युगल बे तन की—  
 गति देख रहे घावभर्य-शक्ति दाण-दाण-की ।  
 कर पकड़ परस्पर लड़े हुए वे चुप-से,  
 शोभित ये विकसित वातपुष्पी-क क्षुप-से ।

महसा बात्सल्य-ममृद्र उमङ्क वह घाथा  
 बैदर्भी-को कर विवर्ण स्व-मध्य बहाया ।  
 वे बह्नीं अङ्कु-में भर मयङ्कु युगन-म  
 छलछसा गये दुग-कमल दुष्क फिर जल-से ।  
 जीवन-में पहली बार धानरण-हीना—  
 देखी दीना-वृक्षतमा-नदित अपनी माँ ।  
 यह जननी है या अन्य मोक्षत मन-में  
 उनका सहसा भ्रम हुआ वहाँ उम छल-में ।  
 पर देख अन्य-को धरा एक ने धीरज  
 रवि-कर-सा पा उत्फुल्ल हुए म नीरज ।  
 अङ्कुस्थित-कर दग-भूष न नभी वाली—  
 व प्रतिमा-सी कुछ क्षण तक हिलीं न डाली ।  
 युगपद युग-विषु परिपूर्ण प्राप्त कर एम—  
 धा-गया मिथु-में ज्वार समाना कैम ।  
 पा-वत्स-जनोष्मा विवर्ण रक्त ग्यों रहमा  
 जग गया सती-का स्नेह सुप्त-सा महसा ।  
 'मा इन्द्रसेन प्रिय पुत्र इन्द्रमना नू—  
 आह्लाद-विषादक स्पष्ट मुझे देना नू ।  
 'माँ रोती क्यों हो मौन धरी । हा आधो  
 क्यों हमें छोड़ तुम गई धीघ्र बनलाधो ।  
 सब निज माँ के ही साथ यहाँ हैं दक्षा  
 हम जैसे मातृविहीन कहाँ हैं दम्बो ।  
 माँ-भी वधो को कहाँ छाड़ आनी हैं  
 व ता, निज मन्तति-संग सदा पात्रो हैं ।  
 छोड़ो हमको, क्यों-उर पर व्यय ममेटे  
 तुम हो न धम्ब, हम नहीं तुम्हारे बटे ।  
 धीरी ही ॥ केसिनी हमारी माता  
 तुम माँ हार्ती तो ध्यान हमारा आता ।

## बेममता

पाथी धण्डी हैं कभी न हमसे पकड़ीं  
निशि दिन अपने ही सग हमें मे रखतीं ।  
पर ये भी तो पुपभाप विससती रहती  
हम पूछें तब भी मेव न अपना कहतीं ।  
रपटे से दोनों धक्क छोड़ यों-कहकर  
वे बस से पकड़े रही किन्तु सब सहकर ।  
हम बड़े-हुए अब बहुत न रुक-सकते हैं  
निज प्राण पर हैं घटस न झुक-सकते हैं ।

'हा साल ! बड़प्पन झुक जाने को आता  
जो बड़ा न मुक्ता वह सर्वस्व गँवाता ।  
आते दुख क्यों ! यदि बड़े तनिक झुक जाते  
जाने से पहले ताप स्वय फूँक जाते ।  
मुमत्सी कृत्स्नत माँ छोड़ तुम्हें य ऐसी—  
मिम गई मु-माता स्वय अविति हों जैसी ।  
मेमे छोड़े तुम छुटा स्वय को पाया  
मेरे वृक्ष का वण्ड आप ही धाया ।  
पर-हित जो छोड़े गर्त वत्स ! इस जग-में  
बन जाता रूप विश्वास लसी-के मग-में ।  
मेरी ममता भी और छुटी माया भी  
अपने तब की रह सकी न मैं धाया भी ।  
उम वण्ड वण्ड से लाल ! स्वयं धूत-हूँ मैं  
हा वत्स ! न मारो अधिक स्वय हत-हूँ मैं ।  
इस कृत्स्नत माँ-के धरे ! मु-बेटा बेटा  
जो मेरी प्रिय सम्मान ! न बम यों-बेटा ।  
फल छोड़ हाय ! मैं मूल पकड़ने धाई  
फल तो छूटे ही, मूल भी न छू-पाई ।  
निश्चिन्त रहो तुम साल ! न छोड़ूँ अब मे  
प्रिय-न्य अन बिरह क ताप सह चुकी अब मैं ।

मेंटो कुछ क्षण तो बस ! बिनाश हृदय-से,  
 पुष्पामृत सेवन करो, मुक्त हो भय-से ।  
 'अच्छा ! यदि हो प्रिय अम्ब मठाभो तब तुम  
 कैसे आई हो यहाँ अकेली धन तुम ।  
 आ-पाये क्यों वे सङ्ग न आज तुम्हारे—  
 किस ठौर रुके रह गये सु-सात हमारे ।  
 करते जब जब हम याद तुम्हें घर रहते,  
 तब सब हमसे सब लोग यही वे कहते ।  
 हट जायेंगे ये जब-कि अवधि के घन-से  
 तब आओगे तुम एक साथ ही वन-से ।”  
 'बेटा ! अब और अधीर न हो यों मन-में  
 वे छोड़ मुझे भी छिपे रह गये वन-में ।  
 आवेंगे हाँ-वे उन्हें पङ्गा आना  
 मैंने द्रुव ! निश्चय यही स्व-मन में माना ।  
 कोई भी जग की शक्ति यहाँ-आने से—  
 उनको न सकेगी रोक, मुझे पाने से ।  
 मैं जीवित ही यों रही कि उनको पाऊँ,  
 वे आ न सके तो, स्वयं खोजकर लाऊँ ।  
 आकण्ठ यदपि मैं बुझोवधि ने बेरी,  
 दुर्भाग्य ! बुनौती तदपि तुम्हें यह बेरी ।  
 मत्त बूक शक्ति भर यत्न पूर्ण निज कर तू  
 जितना भी चाहे उदधि विषय का भर तू ।  
 चाहे रखले जिस ठौर, छिपाकर उनको  
 पर, मैं भी हूँ जो प्राप्त नरै प्रिय-धन को ।  
 मेरे अप सप वत हो न सकेंगे निष्फल  
 निज पाठिवत का प्राप्त मुझे है सबस ।  
 कहते कहते धृग अदृश हुए, जस सूना  
 वह बिम्बानम उदीप्त हुआ चिर-भूना ।

प्राया दुःख का आवेग सती के मन-में  
 बे झुक्क सता-सो हुई प्रकम्पित सरण-में ।  
 अल-गई रज्जु बस मरे किन्तु ये भव भी  
 सबस्व-हीन हो चुकी हाथ । जब तब भो ।  
 दे रहीं चुनौती किसे । सही तुम फिर यों  
 माने-में लगी न बेर, हुए परिचर यों ।  
 वह प्रथम चुनौती धमी धधुरी ही है  
 हा शोक । बसह की पूस धन्य वह दी है ।  
 कहते कहते यों-साधु-बदन-पुरभरई ।  
 मैमी-के मम्मूस सखी-केभिनी धरई ।  
 रानी ने बड़ दे धन्य दुर्गों के बस-का  
 उर से निपटाकर पूछा वृत्त कुशल का ।  
 मरे सुख-दुख की पूर्ण-भागिनी धा-रू  
 मैं हूँ वितप्त जीतल छाया-सी धा-रू ।  
 ये पास-मोसकर बड़े किये सिन्धु द्रुम-से  
 हो सकती हूँ मैं बहन ! उन्हरण कय । तुमसे ।  
 मेरे हित मारी साथ प्रभाव्य सुखों-को  
 तुम बहन ! ग्रहण कर चुकी प्रगाढ़ दुखों-को ।  
 मैं हाथ । प्रमागिन बटि जहाँ-तक जाती  
 निरु प्रिय-मनुजों-को विपद-घस्त ही पाती ।  
 मैं कैसे कृ-समय हाथ । जग-भर धरई—  
 धव तक भी दुःख-भोग नहीं कर पाई ।  
 वह पापपुञ्ज है, अन्तहीन क्या मरा,  
 तुम सब को भी दुल हूँ उसी का प्रेर ।  
 धा-जाय मृत्यु तो सुखद युक्ति मिल जावे,  
 मर्मन्तुद-दुख से स्वयं मुक्ति मिल जावे ।  
 मेरे मरने से परा न कुछ हिंस जावे  
 हा मार-मुक्ति का सोख्य पुण्य नू पावे ।

मर-गई बहन मैं किन्तु कहीं यदि ऐसे,  
 तो प्रिय-दर्शन का पुण्य-साग हो कैसे ।  
 हाँ-समझें तब सब मुझे दुखों-से भीता,  
 यह मातृ-स्मृति हो कसुपित परम-पुनीता ।  
 क्या-प्राज-सदृश तब रहें सु-पितृ-पद-मानी  
 क्या-सो न चुकेगा साक्ष नमवा-मानी ।  
 तब पति-पद रत्न-सम्मान धूनि-धूसर हो—  
 क्या-पुण्य से न बह पाप-पीठ ऊपर हो ।  
 हाँ-सती करण-लिपि स्वयं कलङ्कित-होगी  
 पर-सुख पातक खल-तुष्टि न दाक्षिण होगी ।  
 ये पाप भोग सब हो न सर्वें तब पूरे,  
 जब तब व्रत मेरे सब रह जाय अपूरे ।”  
 हो शान्त देवि । मत्त शब्द धरन्तुद बोसो,  
 हे सुधा सरस । मत्त तरल गरल धव धोलो ।  
 हे परन्तपे । चिर बियो, मृत्यु को भूलो  
 विपशोषि को कर पार, सुखों-से फूलो !  
 तुम नहीं धमागी सती-सुमाग-भरो हो,  
 भव-सिन्धु-मार प्रव स्वयं धमोष-तरी हो ।  
 हे सती-शिरोमणि । साधु साधु तुम धन्या,  
 साध्वी-गण में हो चुकी प्रथम तुम गण्या ।  
 तुमने मारी का सवादस विज्जमाया  
 निज पति-पद व्रत का परम पाठ मिखलाया ।  
 कर दिये व्याप्त सक्ति । भूरि भाव इस जग-में,  
 छोड़ेंगे मनुज न धैर्य दुखों के भग-में ।  
 यह परम-सुखों से घनासक्ति सिद्धलाई,  
 तुम करम-मुक्तों से, भीति-मुक्ति दे पाई ।  
 कर स्मरण तुम्हारा भीत मनुज हों निर्भय  
 होगा कातर में स्वयं सु-साहस सचय ।

## ब्रजपत्नी

जब तक धमकें शक्ति सूर्य गगन-में तारे  
 तब तक गायेगा लोक सु-गीत तुम्हारे ।  
 हाँ-मेने कैसे सात मुक्तों-को मारी  
 क्या-हूँ न देखि । मे शिष्या एक तुम्हारी ।  
 कर चुकीं पार ओ सु-यश-सिन्धु तुम बल-से  
 मैं बच कराव भी भिगो-मकी उस जल-मे ।  
 सखि ! यह सब पुण्य प्रताप तुम्हारा ही है  
 इन पद-पथों का मुझे सहारा ही है  
 यह तपोपूत तब-दृष्टि जहाँ-तक जाये  
 हो पाप-गुच्छ सब मम्म पुण्य सहाराये ।  
 यह दिव्य धमर यश-क्या न मानव बूनें  
 दुख में न दुकी हों मनुज न सुख-में कसें ।  
 मानस-तप्त कण कण धन्य-दान कर सूखे  
 ये रुख कष्ट रह गय तदपि हा, बूनें ।  
 प्रिय पति-यव रत सम्मान गगन-में छाया  
 धध-पङ्कु दबा यह पुण्य-समिप्त सहाराया ।  
 जैसे तेसे जब हुई अवधि गत इतनी  
 अब धैर्य-तरणि के लिए लेय यह किन्तनी ।  
 धामो अब करें सु-यत्न उन्हें पावेंगी  
 धनु धनु में होकर व्याप्त लोक सावेंगी ।  
 हो सुमति जहाँ-सखि ! वहाँ न क्या-शुभ-होता  
 धीरज-प्रिय मानव धधम उहाकर छोता ।  
 अब जसो करो बिधाम धकी-माँदी हो  
 कुछ तो दुख की यह ग्यून, मरी-झाँधी हो ।  
 सखि ! परम दुसर हैं विषम-विग्रह की ज्वाला,  
 जिसकी दिव्यीपधि कान्त-सु-कर-मणि-भासा ।  
 हो शास्त्र धनमता स्वयं मेव बरसेगा,  
 यह तप्त धरातल, ज्नेह-सिक्त-सरसेगा,

पतझड़ बीते ऋतुराज आप ही आये  
 निज कनक लता असिराज असंख्य पाये  
 मल-दण्ड सरस हो भमल-जलज फलेगा ।  
 निज निर्जलता के भाव सहज भूमेगा ।  
 होगा धामूल बिनाश वियोग-रुजों-का  
 पा मधु-स्पर्श, प्रिय-के पीसूप भुजों-का ।  
 सखि ! सता-मञ्जरी धाम्र बिटप पर छाये,  
 सब भूल न जाना मुझे, सु-फल जब आये ।  
 तुम नेत्र-निमीलित आह स्वयं भर सेना  
 मधु-चितवन ही बस मुझे दया कर देना ।  
 यह हनु-किरण जो फट घटा-में निक्की  
 अह गगन-तिमिर में हुई दीप्त-सी बिजली ।  
 आ गई वहाँ पर तमी मारियाँ अन्या  
 कृष्णपुर में थीं सती समाहत भया ।  
 वह सती योगिनी-रूप वियोगिनि होकर  
 निज सहाय बहून के संग रहीं हँस रोककर ।  
 मन-में प्रियतम की भूति नाम बिह्वा-पर,  
 बन गया तपोवन पुण्य पिता-का ही घर ।

घस रही अब तू-फिर सेलनी !

कह सता सिखना कुछ दोष है ।

मिरस भञ्जु सु-भूति कहाँ-धरी !

अनसता यह तापद बदा है ।

दुर्दिन-में वे ही दुग बनते सु-दिनां में सुरज जो रहने,  
 शरद के पीतहर साधन ही ग्रीष्म में अङ्गार बन, दहते ।



कह सखि ! कहाँ उन्हें मैं पाऊँ ।  
 बूँड लिया है पत्ता पत्ता किधर भाव मैं जाऊँ ।  
 रहते यद्यपि सदा वे सग  
 पर हैं नीरव और अनङ्ग  
 सुखदायक भी करते तज्जु किसको व्यथा सुनाऊँ ।  
 कह सखि ! कहाँ उन्हें मैं पाऊँ ।

समझ रही, मेरा ही ध्यान—  
 कट-गया उनको दुःख-पान  
 विप-वे गये सुधा-सी जान कैसे उन्हें बताऊँ ।  
 कह सखि ! कहाँ उन्हें मैं पाऊँ ।

पकड़ा मधु बनकर यह हाथ  
 और छुड़ा भाग भव भाव  
 पर, हैं मेरे ही ठा नाथ किस पर शोध दिखाऊँ ।  
 कह सखि ! कहाँ उन्हें मैं पाऊँ ।

मर्मन्तिक ही उठ रही विरह घमेल की हूस  
 सखि ! ऐसा कुछ मल कर, सब कुछ जाऊँ भूस ।

तन सिसङ्क सिसङ्क कर बलता  
 सखि ! उदारता है यह या नारी-मम की पुर्वसता ।  
 मध प्रतीक्षा करती करती—  
 बलती ही रहती यह भरती,  
 तदपि जिसे भरती बस भरती वही हृदय-में पलता ।  
 तन सिसङ्क सिसङ्क कर बलता ।

नवी घषम-से बसती बसती—  
 बड़ती गिरती, बमती बसती—  
 पर, अब प्रिय को निरल अबलती, नीरधि तमी निगसता ।  
 तन सिसङ्क सिसङ्क कर बलता ।

पूर्ण इन्दु को पाकर सजनी  
 लिता लिता कर निज भीरजनी  
 करती सब न्योछावर रखनी वह भगले दिन छसता ।

तन मिस्र सिस्र कर जलता ।

सह बन-ताप भीर हिम-धूम  
 अपने तन मन की सुष सुस  
 सता लिता धती जब फल सब मासी घा-दलना ।

तन सिस्र सिस्र कर जलता ।

सखि ! हम इस सब को क्या-भार्ने  
 तत्त्व तत्त्व ही कैसे छार्ने  
 सफलता कि असफलता जानें मेद न है कुछ चयता ।

तन सिस्र-सिम्र-कर जलता ।

ओह, मनोमय से अधिक दुष्ट न सन्तति और  
 मन को ही देता सदा यह पापी दुल और ।

जस जाने-से समाया जसन-वेदना जानता है,  
 तथापि यह रह रह कर जसाता है कब ! मानता है ।

तू द्याम-घटा फिर आई ।  
 मेंडराई भक भूम सजल हो बंसी फिर उम्हाई ।  
 उमड़ रही तू उसके बल-से  
 भक-भरी जिस निर्मल-जल से,  
 ठहर पहर मत जयल पुषल से, क्यों निज सुष बिसराई ।

तू द्याम-घटा फिर आई ।  
 धमी, धमी तो मोद भरी तू  
 पर जब हो जस हीन, धरी ! तू,  
 जीबेयो फिर नहीं मरी तू क्या-भुल में भग्माई ।  
 तू द्याम-घटा फिर आई ।

## रामपत्नी

धम धम मुख तब तक धमकाये,  
कजरी ! पाया जा-सो पाके  
पढ़ें जान के ही फिर सासे होगी जब भरसाई ।  
तू स्वाम-घटा फिर धाई ।

जब तक स्व रस न फिर पावेगी  
तब तक मुझसी बिमलावेगी  
और याव यह सब धावेगी जब जो धूम मचाई ।  
तू स्वाम घटा फिर धाई ।

अत न यों सौभाग्य जता तू  
मैं तप्ता मत मुझे सता तू,  
नीरव रह प्रिय-मोद रता तू, सफल तभी तरुणाई ।  
तू स्वाम-घटा फिर धाई ।

कहाँ के गये छोड़ ऐसे धरी !  
भसे ही रहूँ मैं बुझों-से धरी ।  
न छोड़ूँ सुधा-रूप प्यारा पीऊँ  
सहूँ आपणायें मरुँ या जीऊँ ।

मेरी धाँसों-में स्वाम न निद्रा-हित धव,  
उसने ही हा उत्पात किया है यह सब ।  
कैसे, वे जाते छोड़, न यदि यह होती,  
धव मरे उसी-की जगह हगों-में मोती ।  
मैं सुटा रही बिन रात न निबैट रहे मे  
जुलझुल-कर इनमें किन्तु सु-भक्त, बहे ये ।  
सल्ल । इन जैसे ही बरस उठे सावन-धन,  
कैसे रोऊँ मैं हाय ! बिषय बहता मन ।  
वे नहीं हृदय-से होकर तन से न्यारे,  
हा बठे होंगे कहीं बिबदा मन मारे ।

जिसमें प्रिय भुज का ही पुनीत-संयम है—  
 भा-गया भाग्न-पद वही तिमिर का वस है ।  
 मे अन्ध-निघार्ये-धिरौ, न काटे कटतीं  
 करतीं हैं हृदय-विदीर्ण विकस-उर फटती ।  
 विद्युत भी अपनी धमक धमक विखलाती,  
 कर-वेती कभी प्रकाश कभी छिप-जाती ।  
 सब धहर उठे नद-नदी-झील-सधु सर भी  
 पुर मेरे हित सध जले, विपिन-गिरि घर भी ।  
 धुक धुकी हृदय-में जगी, सपट ये निकसी  
 सखि ! शोक-वाप्य की बूँद रपट य मचसी ।  
 खिल गया चरण का पूर्ण चन्द्र प्रिय-मुक्त-सा,  
 दे पाया यह भी मुझे परन्तु न सुख-सा ।  
 हे भ्राता ! तुझे है याद नाथ की माया  
 वे पहले दर्शन ! देवदास जब घाया ।  
 तू देख जड़े हों कभी यहाँ-वैसे ही,  
 मैं सड़प-रही हूँ व्यर्थ यहाँ ऐसे ही ।  
 यह राजहंस भी हाय न भव भाता है  
 यह मुक्तामौ की कोप सुटा जाता है ।  
 शिशु भी ये देख अबोध स्वयं रो पड़ते हैं  
 हा, हृदय-ज्वल मन्तप्त तरल हो पड़ते हैं ।  
 मैं पीत, सदपि यह नीत, मभीत किये हैं  
 वे विगत दृश्य, यह परम पुनीत लिये हैं ।  
 यह देता था प्रति सौख्य आज सब भूसा  
 सखि ! बस रहा ऋतुराज उधर निज भूसा ।  
 ओ कोयल ! बजित हुआ यहाँ-पर गामा,  
 जा मधुर भाषिणी ! संग उम्हीं-क भाना ।  
 बस एक दिवस ही ओह ! मृगाहल पीकर,  
 वे, भीस कुंठ हो-गय स्वयं गिर लंकर ।

धम धम मुस तक तक धमकासे  
कजसी ! पाया जा-सो पाछे  
पढ़ें जान के ही फिर लाले होगी जब धरसाई ।

तू क्याम-थटा धिर धाई ।

जब तक सब रस न फिर पावेगी  
तब तक मुझसी बिसलावेगी  
धौर याद यह सब आवेगी अब जो धूम मचाई ।

तू क्याम-धना धिर धाई ।

अत न यो सौभाग्य जता तू,  
मैं सप्ता मत मुझे सता तू,  
नीरव रह प्रिय-मोद रता तू, सफल तभी तरुणाई ।

तू क्याम-थटा धिर धाई ।

कहाँ बे गये छोड़ ऐसे धरी !

मझे ही रहूँ मैं दुखों-से धरी ।

न छोड़ूँ सुधा-रूप प्यारा पीऊँ

सहूँ आपणायें, मरूँ या जीऊँ ।

मेरी धाँसों-में स्थान न मित्रा-हित अब,  
उसने ही हा उत्पात किया है यह सब ।  
कैसे बे जाते छोड़ न यदि यह होती,  
अब भरे उसी-की जगह जगों-में मोती ।  
मैं जुटा-रही दिन रात न मिर्बेट रहे ये,  
धुसधुस-कर इनमें किन्तु सु-मङ्गल रहे ये ।  
सक्ति ! इन जस ही बरस उठे साबन-धन,  
कैसे रोऊँ मैं हाय ! बिबध बहुता मन ।  
बे महीं हृदय-सं होकर तन से म्यारे,  
हा बैठे होंगे कहीं, बिबध मन भारे ।

जिसमें प्रिय-भुज का ही पुनीत-सवस है—  
 धा-नाया भाद्र-पद वही तिमिर का दस है ।  
 ये अघ-निशायें-भिरीं, न काटे कटतीं  
 करतीं हैं हृदय-विदीर्ण विकस-उर फटती ।  
 बिद्युत भी अपनी बमक दमक दिलासाती,  
 कर-देती कभी प्रकाश कभी छिप-जाती ।  
 सब पहर उठे न-नवी भीन-सधु सर भी  
 पर मेरे हित सय जैसे, विपिन-गिरि घर भी ।  
 धुक धुकी हृदय-में जगी, लपट य निकसी  
 सखि । शोक-वाष्प की बूंद रपट में मचसी ।  
 खिल गया घर का पूण-चन्द्र प्रिय-भुज-आ,  
 दे पाया यह भी मुझे परन्तु न मुख-आ ।  
 हे धामि ! तुम्हें है या न नाथ की माया  
 वे पहर दगल ! दबदास जब आया ।  
 तु देख, लड़े हों कभी यहाँ-वैस ही  
 मैं लड़प-रही हूँ व्यर्थ यहाँ एस ही ।  
 वह राजहंस भी हाय न अब आता है  
 यह मुक्ताघों का कोप मृग जाता है ।  
 धिगु भी ये देव अबाध स्वयं गो पड़ते हैं  
 हा, हृदय-जण्ड मत्तप्त तरल हो पड़ते हैं ।  
 मैं पीत सद्यपि यह बात समीत लिये है  
 वे बिगत दृश्य, यह परम पुनीत लिये है ।  
 यह देता या अति सीम्य आज सब भूना,  
 सखि ! डाल रहा असुगज उषर मित्र भूना ।  
 ओ कोयल ! बजित हुआ यहाँ-पर गाना,  
 आ मधुर भाषिणी ! संग उन्हीं-न धाना ।  
 बस एक दिवस ही मोह ! इमाहंस पीकर  
 वे नीम बठ हो-गये स्वयं गिल गरुड ।

यह बिरह-ह्लाहल किन्तु मुझे यों-पीते—  
 कल्पों-के सम ये वर्ष घनेकों बीते ।  
 हो सका तदपि कुछ धग न कोई मीसा  
 मन रमी मुधा-प्रिय-मूर्ति, दिसाती मीसा ।  
 यह उसी मूर्ति की कृपा, न छूटा यम है  
 यद्यपि यह जीवन नास, न यम से कम है ।  
 जैसे जैसे भी बना बिरह की क्वासा—  
 वे भेल रहीं पी रहीं निरन्तर हासा ।  
 फिर भी था सरतर शोक कहाँ ! मिल पाता  
 धिरता तम नेत्र समझ बोध सब जाता ।  
 हो जातो थीं निस्संज्ञ सता-सी गिरतीं  
 पाकर अनेक उपचार बेतना फिरती ।  
 दोनों बहना को मिला केशिनी-संवल,  
 था बीत रहा दुःख-काल युगों-मा पल पल ।  
 सति ! हुई प्रबधि तो पूर्ण कहाँ वे भाये  
 कुछ अधिक स्पष्ट भी वृत्त न उनके पाये ।  
 बीका न अभी तक हाय ! सुखद वह सपना  
 भा-सका न बहन ! दुःखान्त अभी क्या धपना ।  
 प्रेषित अपने सब लौट गुप्तवर भाये,  
 पर, कुछ भी तो सबाद न सुखकर भाये ।  
 करके भी यह प्राणान्त परिधम किन्तना ।  
 कर पाये बिप्र सुखेव विदित बस इतना ।  
 साकेत-पुरी में एक-मूत रहते हैं,  
 जो, धपना बाहुक नाम स-मुद कहते हैं ।  
 उनमें सब सखण मिले निपथ-पति-जैसे  
 हय-बिद्या में निष्णात गुणी ब वैसे ।  
 मिलती न मूत की बिम्बु नान्त-से काया  
 भर बैठे हैं क्या नाथ वहीं कुछ माया ।

रह-रहे सूत बाणेंय मिश्र ही उनके,  
 उसने भी मेजा वृत्त बहुत कुछ गुनके ।  
 रहता है बाहुक एक वस्त्र ही घारे,  
 वह छोड़ भुका-सा भोग अगत-के सारे ।  
 विरहानल-से दिन रात जला जाता-है  
 निम पत्नी-के प्रिय-गीत मुग्ध गाता-है ।  
 वह मेव न अपना कहीं तनिक बतसाता  
 पर, किसी वस्तु से भी न दान्ति है पाता ।  
 शुभ-अक्षर है सखि ! एकधोर घृष सारा ।  
 जब मैं सन्त्यक्त हुई नाथ-के द्वारा ।  
 उस कुसमय के दो पार दिवस ही पीछे—  
 पहुँचे थे बाहुक वहाँ-स्व-सीस्य-उसीधे ।  
 भव वहन ! रघूंगी एक महा-माया मैं  
 पाऊँगी अपना विटप-कान्त, छाया मैं ।  
 या तो भव सत्वर प्राण-नाथ को पाऊँ  
 यदि पा न सकी तो मरूँ स्व-देह जलाऊँ ।  
 सखि ! हैं वे कुसली नाथ जहाँ-भी रहते  
 वे प्राण धन्यथा कष्ट न इतना सहते ।  
 वेते इस तन को छोड़ सह्य प्रथम-हो,  
 फिर आया देखो हृग-समक्ष फिर तम ही ।  
 गिर पड़ीं हुई मूर्च्छिता स-शोक पुनीता,  
 कर रही विविध उपचार सखी सब भीता ।  
 वे स-जग हुई, यह पृथ्वि किन्तु निरु होता,  
 वह शोक तीव्रतम मित्य सजगता सोता ।  
 वे विटप-भिम्भ-सी लता सूखती जातीं  
 हँसती-रोतीं, गुप कभी कभी कूट-गानीं ।  
 जब रहा समय का चक्र घोर निगि गहरो  
 पर, प्रिय-वदन का मोह बना का प्रहरी ।



भैमी बठीं श्री सनिक सान्त्वना पाकर,  
वासी मे नठ-हो किया निवेदन भाकर—  
स्वामिनि । पुष्कर सुवराज भाज ही घाये  
शुभ प्रणति-पुरस्सर वृत्त तुम्हें भिजवाये ।  
वे चाह रहे हैं देखि । आप से मिलना  
दर्शन कर होना कृती, पुष्प-सा छिन्नता ।  
'जा-नहो शीघ्र वे जन यहाँ-पर भावें  
समय है वे ही कुछ शुभ-वृत्त सुनावें ।

घाये चलकर ग्रह, साधु-वेष वे घाये  
वे वास सुसकर अटा-वास बन छाये ।  
वे बहर रहे दुःखोक्त-मेव विषु-मुक्त-पर,  
भग रही दुःखों-की विजय स्पष्ट-सी सुक्त-पर ।  
भाजें जल से भर रही जीर्ण श्री काया  
हो चुके दीन सर्वस्व-हीन गत-माया ।  
स्वागत के हित उठ सखी न भामी तब तक  
व गिरे भिन-सह सुख पनों-में जब तक ।  
"देखर । हो जाओ शान्त छोड़ दो रोना  
तुम बीर वीर हो उचित न कातर होना ।  
परिवार-कुक्षसता शीघ्र मुझे बतसाओ  
कस्याण मरे तुम रहो, उठो, भव जाओ !  
जिसका न साम्य विषु-पूर्ण कमी कर पाया,  
यह जीर्ण-शीर्ण है हाय । स्वण-सी काया ।  
"जिसमे पूँका परिवार भ्रमस-स तुप-नी  
तुम पूछ रही हा वृक्षस उसी-स उस की ।  
मे मरला यदि तो हाय न वे दुःख होते  
हो मावृ भूमि न भिन्न न सप यों रोते ।

मैं महापाप कर चुका कुपगति पेरा  
कर-चुका माश वह मुकुट मोह ही मेरा ।  
सब फूँक सोक परलोक बना मैं राजा,  
मल कुल-घातक से कहो-कि 'देवर भा-जा ।  
मैं हूँ विचित्र सम्राट् मुझे मत देखो  
मेरी सत्ता-का कूफल, सबय तुम लेखो ।  
भैया भाभी-ही काढ़ दिये हा घर-से  
सधु शिशु भी बचे न हाय अघम-पुष्कर-से ।  
पत्नी मैं भी तो पुण्य-बदन निज केरा  
तुम उछी-अघम को कहो कि देवर मेरा ।

'मैं निरुत स्वयं हूँ तात । मुझे मत मारो  
मत घातमताड़ना करो न साहस हारो ।  
मैं देवर का कुछ दोष न मान रही हूँ  
अपने को ही कुल-घातक जान रही हूँ ।  
गल का न कमी कुछ सोच मानते जानी  
करते हैं मानी पूर्ण नियम ब्रत बाणी ।  
हैं मुझे घटल विदवास नाथ भावेंगे  
हम सब अवश्य निज प्राण-भाम पावेंगे ।  
पर तुमने दुष्कृत से भी साम उठाया  
जग को यह अश्रुत सुखकर पाठ पढ़ाया ।  
क्या-तुमने कुछ सुधि धार्म्यपुत्र-की पाई  
यह पूर्ण हुई है अवधि, न धामे म्यायी ।  
'मुझको न चमा कुछ मेद गोज मैं हारा  
पय देत धार्म्य का रहा नियम बहु सारा ।  
धारा था मैं तो यही-स्वयं सुधि सेने  
कहत समे के हाय इसी को देने ।'  
'हम अधु-धनी हैं आज गमुद्र बहाया  
निदधय समझो अब घात कूट-गर धारा ।

## रमयन्ती

कृष्ण दिन ठहरो जब यहाँ निपष तब जाना  
कुमुनी दोष को तात् । न मन में साना ।  
कर देना उनको क्षमा विनय यह मेरी  
होती क्षमा ही सदा स्व-पव-की चेरी ।  
ठहरो देवर ! कृष्ण कास अभी मैं आऊँ  
कृष्ण मिष्ट तुम्हारे लिए अभी मिजवाऊँ ।'

प्रक्षम्य स्वयं मैं किसे क्षमा क्या-बूँगा  
भाभी । उनसे ही क्षमा किसी तो भूँगा ।

मे निष्ट-गुरुं वह पात्र धीर जस शीतल  
पुष्कर के भागे बड़े सिले से बाधल ।  
कैप गये युगल अग्न्यान्य-वदा प्रबलोकी  
वह चली अधु-जल धार यदपि प्रति रोकी ।  
'भूलो हे प्रेयसि ! भूल हुई जो मुझ-से  
कर दो ह देवि । विमुक्त स्व-कोप-कुरुब-से ।  
या मैं तो इस ही योग्य किया जो मैंने  
घोया तुमने सब ताप दिया जो मैंने ।

अह-में ये चरण प्रिय-क या हगों-में नीर,  
वेदना-मय द्वास चसते ये हृदय का पीर ।  
हो-गई थी जीम जड़-सी क्यों-निकलते बोल  
विलर छितराये घटा-से विषु-बदन परबोल ।

हे स्वामि ! निपष में जैसे अभी  
धावेंगे जब निपषेण कभी ।  
तब क्षमा साथ ही पावेंगे  
सन्ताप, पाप, पुन जावेंगे ।

## चतुर्दश सर्ग

बैठे हैं नृप ऋतुपर्ण पीठ के ऊपर—  
 साकेतपुरी-में इन्द्र सबस वे सु-पर ।  
 सग रही सभा प्रामीन सभासद हैं सब  
 मानो सुर पुर का छोड़ धमर धामे धब ।  
 हैं कान्ति शान्ति से युक्त दिव्य-ही भानन,  
 सहसा गरजा-सा वहाँ मधुर ध्यामस-वन ।  
 बोले-नृप लाभो शीघ्र भस्त्र-वस-पति को—  
 मेरे बाहुक प्रिय-मित्र गुणज्ञ-सुमति को ।  
 भ्रात्रा पाकर भट भयट बिनत सेवक-जन—  
 बाहुक को लाया बुला जगे कुछ ही क्षण ।  
 वे एक बन्धनधर सब भब-वैभव त्यागे—  
 कर प्रणति लड़े हो-गये नृपति-के प्रागे ।  
 'क्या-भ्रात्रा है हूँ देव ! विनय के स्वर-में—  
 बोले बर्पा-सी हुई भमूत की धर-में ।  
 'बैठो बाहुक ! अनिवार्य-काय-वश सहसा—  
 तुम समा करो जो दिया कष्ट दुस्सहसा ।  
 कुम्भिनपुर-से द्विज घेष्ठ सुदय पधारे  
 वे धुके वहाँ के वृत्त मृगे वे सारे ।  
 बैठे-हुए बोले-बाहुक शङ्कित-स—  
 क्या विदित-भेद-नृप मन-में घातकृत-से ।  
 'हे देव ! इपा कर कहो वृत्त वे सारे,  
 जिस कारण द्विजपति यहाँ सकष्ट पधारे ।  
 हो गया आपका श्रीतदास-सा जब-में,  
 भ्रात्रा-पासन-हित सत्ता समुद्यत तब-में ।

क्या-कार्य पडा मैं सीध प्यानना चाहूँ  
भारुंगा नृप-आवेश स्व-कृत्य निबाहूँ ।

हो दास न बाहुक ! बन्धु-समान हमारे,  
हम भुल सके उपकार न मित्र ! तुम्हारे ।  
हय-बल का धमुपम कोप दिया तुमने ही  
यह नाम अयोध्या सफल किया तुमने ही ।  
बदले मैं कुछ भी कमी न सेना चाह  
समित्री का कर्त्तव्य पवित्र निबाह ।  
हाँ-तो वह अधुना वृत्त सुनो हे ज्ञानी !  
कुम्भिनपुर के नृप-भीम यक्षस्वी-मानी—  
जिनकी दमयन्ती विश्व-सुन्दरी बामा—  
सद्गुण-मणि-मूरित दिव्य दीप्त-सी माता ।  
वह रूप ओह ! क्या-कमी भुला-पाऊँगा  
बलि धलि उस-पर मैं यशोगीत गाऊँगा ।  
वह ही भनिन्द सुन्दरी आज पति त्यक्ता  
अह ! परमगुणी भी भाग्यमिपि न पढ़ सकता ।  
देवों-से भी वह हुई थी न भयभीता,  
उस परम-शक्ति ने स्वयं हन्र को जीता ।  
फिर निपच-वेष के गुणी यक्षस्वी मानी—  
नृप नल को बर कर बनी उम्हीं की रानी ।  
वे नल नृप मेरे मित्र गुणों-के सागर  
भैमी के ही अनुरूप । तिसोक-उजागर ।'  
"क्या-वे ही नल ओ कुभा धमुज-से लेले,  
रे नहीं ! देव-वत्त कष्ट उन्होंने भेले !"  
"क्या कुभा माप ! फिर" सुनो वृत्त हाँ-आगे—  
सोये-स भैमी-ताप कूट-हो आगे ।  
वन-में पति से हो त्यक्त उदास स्वप्ती—  
पितृ-गृह पहुँची सौन्दर्य राशि दमयन्ती ।

वे वन धर, बाहर खोज निराश सभी हैं  
 पर, निपटनाय को कहीं न देख सभी हैं ।  
 दुखिनी निज भौतिक-ताप सभी हरने को—  
 फिर से प्रस्तुत वे स्वयंवरण करने को ।  
 दुख रहे कहीं-जो भोग न वे पाई हैं  
 इस पथ-पर होकर विवश भत आई हैं ।  
 निज स्वामि-हेतु दुख-भूल जगत-में 'सोना'  
 पर परमदुःख सहचरी-सुन्दरी होना ।  
 वह स्वामी के ही नहीं स्वयं के हित भी  
 होती भक्ति दुख का हेतु, जगत-में नित ही ।  
 कल का दिन ही है शेष परब्रह्म स्वयंवर—  
 होगा उसका वह चुने, पुनः निज प्रिय-वर ।  
 वह दुःख पुरातन भव्य दिव्य दुःख-मन-हर—  
 क्या-विना सकोगे बन्धु ! कृपा कर मुझ-पर ।  
 सुर मर बिन्नर, गन्धर्व निशाचर सब—  
 सभी प्राप्तोत्सुक वहाँ पधारे थे तब ।  
 भर-गया सचासच वह बिद्यास-मण्डप भी,  
 ऋषि मुनि समुपस्थित हुए भूल जप तप भी ।  
 सब भुँदे नेत्र, जब लक्षित कमकठी आई,  
 वह क्षण चन्द्रों की ज्योति गमकती आई ।  
 ग्रह-सुधा कृष्टि-सी हुई मान सब भूले  
 फिर दुःख सबके अनिमेष, कमल-से फल ।  
 वह छटा छिटकती सभी स्वर्ग-की भू-पर,  
 ही-वहीं कल्पतरु खिसा या न तब ऊपर ।  
 नर्तन करता सा काम कृटिल धनु भ्रू-पर,  
 वह छोड़ रहा सोढ़ ग तीव्रतम निज-धार ।  
 वह रूप-मण्डिता मुधा-मूला बदसी-सी,  
 गमनी सुर तरु-की विवश-मुरम्य-कसी-सी ।

## हमयन्त्री

वे मनोजयी भी अस्ति-ध्ययित मन्मथ-से,  
 पी रहे रूप-की सुषा दुर्गों-के पथ-से ।  
 हे वन्धु ! दुष्य ही दुष्य यही दिखता दो  
 वह रूप बाण नेत्राय मित्र ! फिर छा-यो ।  
 हो गई देर यह समाचार पाने-में  
 अब हो बस तुम्हीं समर्थ निवा-जाने में ।  
 कम समय मार्ग अति गहन दूरतर जाना  
 सत योजन भर वह नगर जिसे कम पाना ।  
 मानव-बल तो यह सोच सोच ही सकता  
 अतिरिक्त तुम्हारे कौन ! वहाँ जा-सकता ।  
 यह सूतराज-बाध्युष्य यही जो रहता,  
 निज को नम-नृप का सुत गर्व-से कहता ।  
 प्राबल्यक हो तो इसे सहायक पुनसो  
 पर जाना है श्रुत ! मित्र ! हृदय-में गुनसो ।  
 बस कर दो यह उपकार मैं न सूनूंगा  
 जो भी चाहोगे सके । भेंट वह वृणा ।  
 बाहुक सुनकर यह वृत्त हुए जकड़े-से  
 तम मम उनके सब हुए मन्म-जकड़े-से ।  
 विस्फारित-दुग रह गये सभी मुख झूल  
 मानो यम-के पद गये दीस-पर झूले ।  
 माहृष्ट पाले-से सस्य, पड़े फिर धोले,  
 हो विचरार्थ्य विमूक, न बूझ भी धोले ।  
 नीरव क्यों-हो हे मित्र ! धबगु-कर फिर-मों,  
 वे मृप-से बहने लगे, सँभल कर क्यों-स्यों ।  
 क्या-बहा देव ! भैमी फिर बरण करेगी,  
 वह यशस्विनी निज-यश अपहरण करेगी ।  
 सनियों-में जो मणि-मुकुट सवृष्य सोमित है,  
 जिस पर सद्गुण की धवसि, स्वयं सोमित है ।

वह मैत्री जो पति-हेतु सुखों-से हीना  
 प्रिय-सग राज्य-को छोड़ बनी जो दीना ।  
 वह मैत्री जिसका सुयश मुग्ध-सब गाते  
 सोने से भी उपमेय न जिसका पाते ।  
 जल सकती जो पति-हेतु अनन-में हँसकर  
 क्या-आज पक्कपुत वही । दुखों-में फँसकर ।  
 देवों को जो दे चुकी चुनौती अपमय  
 कहते उसकी श्रीमान स-शोक पराजय ।  
 हिमगिरि ने छोड़ा स्वान मान निज सारा  
 वह बसा सिन्धु-सा छोड़ स्वकीय किनारा ।  
 यह सूर्य प्रसवनी हुई दिशा पश्चिम-सी  
 हो बली अनसता देव ! आज तो हिम-सी  
 हो जाये धर्म-विसृष्ट प्रसव-सी होगी ।  
 यह सती-मान-भक्त-सूति विसव-सी होगी  
 साधारण की क्या-कथा सती भी अब यो  
 है पुन स्वयम्बर-हेतु समुद्यत अब यों ।  
 यह सत्य, पुरुष का माय्य गति-स्त्री मन की  
 सुर भी न सके हैं जान, क्या क्या-जन की ।  
 हैं जग-में ये वित्यात सहज-व्यग्रम-मन,  
 कर निज पति-हत्या स्वयं जसावे निज-जन ।  
 क्या-कहूँ किन्तु यह हृदय न मान रहा है  
 इस समाचार को मिथ्या जान रहा है ।  
 है मैत्री सपमुक्त सती, सु-सन्तति-वाली  
 वे करेंगी न निज दुष्ट-कीर्ति यों-नासी ।  
 बन सकती क्या कठोर कहीं बृद्ध-म-मी,  
 क्या कहता है मन स्वयं कहो-कृष्ट तुम भी ।  
 'बाहुक ! तुम बह-से गये व्यथित क्यों-ऐसे  
 मर्यादा अपनी छोड़, गिरी यह बँसे ।



यह एक पक्ष की बात मित्र ! तुम कहते—  
 युग-सा बीता है उसे दुर्गो-से बहते ।  
 क्या-एक हाथ से तुम कर-तल ध्वनि बाहो  
 पुरुषों का कुक्ष-कार्त्तव्य न श्रेष्ठ सुबाहो !  
 वैभव क्या-क्या उसने न स्व-पति-हित छोड़ा  
 सुर-पुर निवास से ओह ! समुद्र मुँह मोड़ा !  
 पति-हेतु धमर-अप्रीति स्व-चिर पर भेली  
 पति-हेतु विपिन की विषम व्यथार्य भेली ।  
 छोटे-छोटे शिशु हाथ ! स्व-पति-हित त्यागे  
 वह बसी राज्य-मुक्त छोड़ स्व-पति से प्रागे ।  
 सोती अबला-को तदपि पति-विद्रोही—  
 निर्बल-धन-निधि में छोड़ गया निर्मोही ।  
 ऐसे नर हित क्या-बले धन-ल-में नारी  
 क्या समझ ताठ-का रूप पिये बल-सारी !  
 मेरा तो बड़ विस्वास यही है प्रिया  
 सत्पति-पत्नी-से बले श्रेष्ठ गृह-नीया ।  
 क्या-स्वपति-मिष्ट आदर्श-पूर्ण हो पारी  
 हों क्यों-न कुमार्गी पुण्य दुरिष्ठापारी ।  
 युग-पक्षी-ही आवर्त्त माय है पूर,   
 वह एक पक्ष से बन्धु ! सदैव अपूर ।  
 मैं निन्दा करता नहीं मित्र-नम मेरे,  
 प्राये य सब दुर्बुद्ध कृमति-के प्रेरे ।  
 चाणूर्य सुत-से विदित हुआ मुझको सब,  
 है अटल धारणा बन्धु ! यही मेरी अब ।  
 उन युग-महर्षों ने पाठ-पढ़ा सबगुण का,  
 कर दिया वंश-आदर्श अतुल अब सनका ।  
 मैं मान रहा अत्युच्च-चरित शुभ-भूषण,  
 दम्पति-ही में हो, शेष न कोई दूषण ।

आदश-आदिता सभी अन्य-से चाहें,  
जब पहले उसको स्वयं स-हर्ष निवाहें ।  
अन्योन्य-हितों का ध्यान करें वे युग-ही,  
सौल्लास अन्य का मान करें वे युग-ही ।  
हों युग ही वे निष्कपट, सदा सस्नेही  
घरती-पर है वह स्वर्ग सफल वे गेही ।  
उपभोग्य-वस्तु है मारि न केवल मर-की  
वह कल्याणी है प्रथम मातृ जग भर की ।  
तुम उससे चाहो जो-कि वही-वह चाहें  
हाँ-वह तुमसे भी अधिक स्व-कृत्य निवाहें ।  
है हे मरेन्द्र ! यह सत्य तुम्हारी वाणी,  
मैत्री-की मैत्री सभी विवशता जानी ।  
पर बैदमी-सा सु-धन जब-कि वह छोड़ा  
राजन् ! तब होगा विवश न मम-भी थोड़ा ।  
है उचित भीमजा करें प्रतिज्ञा-पूरी  
अब पूर्ण अवधि-में रही तमिष-सी दूरी ।”

तुम जान न पाये अरे! अवधि तो कब की—  
वह बीत चुकी है पूर्ण प्रतिज्ञा सब की ।  
नृप खाज सिमे सर्वत्र परन्तु न पाये,  
अब तक भी तो वे नहीं स्वयं ही आय ।  
या तो मम है विनिष्ठा अवधि को धूल  
से उड़े अथवा उन्हें मृत्यु के झूठे ।  
हो गई अवधि जब पूर्ण ममामुख सब ही—  
हो नमस्की धर बार छोड़कर सब ही—  
पहुँचे कुण्डनपुर भीम-सुता का श्रम  
उनका समुद्र-वह राज्य उन्हें ही देने ।  
वे आन सखीं कर यत्न सब सब ही तो  
भाइ ग, बिना कुमुदनी भी ता ।

हो पुष्कर भाव निराश, वहीं-पर रहते,  
 अपने कृत का उपभोग वियम कुल सहते ।  
 प्रसन्ना, होती है वेर, प्रसन्न करो अब  
 कृष्णनूप-पथ का ध्यान, सहर्ष करो अब ।  
 सुन अवधि पूर्ण की बात निपद्य-पति थोके,  
 वे तरु को यथा प्रकम्प हवा के झोंके ।  
 समझी मन-में निज मूल जगाकर गिनती,  
 फिर मृप से करने लगे प्रणत वे विनती ।  
 सबस्व-भाषा निज समझ दुखी ये मन-में  
 कुछ भी न रही आसक्ति उन्हें जीवन-में ।  
 'तुम क्षमा करो हे मृप ! न मैं जाऊँगा  
 मैं तो अब जीवन धन्य शीघ्र चाहूँगा ।'  
 आ-गया भाग-में सर्प अचानक जैसे  
 जड़-तुम्हारे रहे मृप बचन व्यवह कर जैसे ।  
 पर होकर सहसा स्वप्न धर्म घर मन-में  
 यों बोले-मधु-सा थोस स्वकीय बचन-में ।  
 हे बाहुक ! पड़ता जान मुझे तो ऐसे  
 भैमी-से कुछ सम्बन्ध तुम्हारा जैसे ।  
 ये भाव भङ्गिमा सभी तुम्हारे मुक्त-की  
 कहती-सी नीरव बात विगत सुप्त कुल की ।  
 जब अब भमा का नाम लिया जाता है,  
 तब तब ही कुछ भावेय तुम्हें आता है ।  
 सुन पुनर्बरण का कृत हुए तुम व्याकुल,  
 बैठे हो अब भी स्तब्ध गहन शोकाकुल ।  
 हैं वाप्यलोक से विदित मुझे सब बातें  
 तुम तड़प तड़प कर बाट रहे ज्यों रातें ।  
 जिसके विरही हो मद्र ! स्व-देह जपते  
 वह बीम सुन्दरी ! गीत-वि जिसके गाते ।

हैं-महापुरुष बुद्ध धस्त, गुप्त रहते हैं,  
 वे किसी से न निज भेद कभी कहते हैं ।  
 तुम मिथचनाय तो नहीं छिपे-हो-छल-से  
 या-बाहुक बन धा-गये कहीं क्या-नस-से ।  
 निज हृदय-भेद को छिपा, हँसे बाहुक तब  
 हे नृप ! यह क्या-सन्देह हुआ तुमको अब ।  
 नस रहे तुम्हारे मित्र उन्हें तुम जानो,  
 उनमें मुझमें क्या-भेद न तुम कुछ मानो ।  
 यह विस्तृत जग, सम-दुखी बहुत ही रहते,  
 निज-हृत्-विडम्बना, मनुज न क्या-क्या सहते ।  
 भी एक सुन्दरी मुझे प्राण-सम अपने  
 हो चुके आज तो किन्तु सभी वे सपने ।  
 मैं भी हूँ नैपथ-सुख विषय-मारा ही  
 है नष्ट लोक परलोक सौख्य सारा ही ।  
 यों-हुआ व्यथित-मैं सुनकर उनकी बातें,  
 हो गई स्मरण निज निहत माग्य की बातें ।  
 जाने-मैं मुझको घोर नष्ट ही होगा,  
 विडम्बित-सा जीवन दोष नष्ट हो होगा ।  
 मैं पावप्रणत मुझको भी देखो भासो  
 सौटासो निज निर्दोष, विनय मत टासो ।  
 यों-कह नीरव ये, वह दुर्बल-विपत्ता—  
 अपना प्रभाव-कर गया, देह-में कैसा ।  
 छटपटा-रहे से प्राण हृदय क्षिप्तता-सा  
 भू-आम विषाद मम, लगा उन्हें हिंसता-सा ।  
 नठ-मुख बठे निज कमल नेत्र कव । सोस,  
 कुछ सोच समोष्यानाय स्नेह-म बोले—  
 हे बाहुक ! बटु-भी मानो बात हमारी,  
 मैं, विषम-अवस्था समझ सभी तुम्हारी ।

तुम पर-कृत-साधक सुजन, सौम्य क्षुब्ध चोखे  
 देते हैं कब समित्र समय-पर चोखे ।  
 वे पुनः मैं निज को काम मित्र-कृत करते,  
 देने में भी निज प्राण न मग्न ! मुकरते ।  
 यदि नहीं विनय तो नृपावेश भव मानो  
 अपने को मेरा एक प्रजापति जानो ।  
 तुम पहुँच समय पर गये मुझे यदि लेकर—  
 तो अनुपम तुमको भक्त ज्ञान वह लेकर—  
 मैं सफल स्वयं को समझ, मुदित भक्ति हूँगा  
 तुम हय-विद्या दे सकी उसे तो भूँगा ।  
 वह भक्त ज्ञान सब भव-सन्ताप हरेगा,  
 कर्म सब का दुष्ट प्रभाव विमुक्त करेगा ।  
 मैं-कहूँ, बाहुक कर पकड़ प्रेम-से सत्वर—  
 उठ गये स्वयं कर सका मित्र-को नृपवर ।  
 बाहुक क्षोभित थे और नृपति भक्ति क्षोभित  
 थे श्याम-स्वैत गिरि-निकट सङ्ग-से क्षोभित ।  
 बाहुक ने गुन पर-श्रेय प्रेय कुछ अपना  
 करना चाहा वह सत्य दुःख भी सपना ।  
 वे विस्वासाविस्वास निराशा भासा—  
 भैमी-चर्चन का मोह, सत्य-जिज्ञासा—  
 इन सबको सर-में भार हुए गमनोद्यत,  
 या यद्यपि भार से हुआ हृदय चनका हूँ ।  
 बाष्पार्ण्य सूत को मित्र समीप बुलवाया,  
 प्रावश्यक पाशवेश उन्हें समझाया ।  
 जो अप्रमय हो सबभ गुरु-सम बोड़े  
 वे छूट सट-से श्रेष्ठ जतुष्टय-बोड़े—  
 बतसाय सैयव धुँद भ्रमरि दश घासे  
 जो बाधु-रूप ही स्वयं, स्नेह से पाले ।

पाकर फिर कुछ एकान्त धान्त कर निज मन  
बाहुक ने सविनय किया देव अभिवन्दन ।  
हे देवराज ! यम वरुण, अनल, तुम आधो,  
अपने वे सब वर पूर्ण धान कर आधो ।  
हे वायु देव ! तुम धाज सदेह पभारो,  
मुझ प्रणत भक्तिधन जन को सव्यनिहारो ।  
मह रघनौका हो पार बनो तुम केवट,  
ओ मिट जायें ये धाज आप चिर-ममट ।  
हैं मुक्ति मुक्ति युग मुझे यद्यपि धव सम-सी  
ओ मित्र-समस्या किन्तु समक्ष विपक्ष-सी—  
पूरी सत्वर हो जाय नाव ! यह वर-नो,  
निज वया-पूर्ण हग-पात दास-वर कर-दो ।

उस ओर स्वयं कमि विकस हुए पहले-से,  
भव सुन सुरपति-आदेश धीर दहसे-से ।  
बोल—विनीत कर-बड़ शक्र से तब वे—  
समझो वस आपव-भुक्त वम्पती धव वे ।  
हे देवराज ! वे परम पूण-व्रत-धारी  
हैं सती-शिरोमणि भीम-नरेश-कुमारी ।  
पुस्तानक्ष-में पड़ परस हुई यह उमकी,  
बहु अमर यशस्वी पुणस निरक्ष यह पुण की ।

हैं स्थित ऋतुपण नरेण दिव्य उस रथ-में  
बहु कौषा-आ जा रहा वमकता पय-में ।  
वायुण्य सग पर स्वयं मूत बाहुक हैं,  
सग-रहे धाज ज्यो-पवन-पूत बाहुक हैं ।  
बहु बाजि-वेग अह ! छू न रजस्कण पाते,  
हय, छाड़ भूमितल धाज उड़े-स जात ।

## ब्रजयन्त्री

पथ-धूम्रों को भी देख मृपति कब । पाते,  
 दुग-मात पूर्व ही दुग्म स्वय छुट जाते ।  
 रथ ही है या-कि विमान सुरों का है यह,  
 मन-में यों स-मुद नरेष्ठ सोचते रह रह ।  
 मूँदते दुग, वेग धसत वायु का सगता  
 यह मातलि मुरपति-सूत, सुम्मे या-छगता ।  
 'लो उत्तरीय यह गिरा तनिक रथ रोको'  
 'नृप ! अब योजन भर दूर उस भवलोको ।  
 'क्या इतनी गति-से धरब बढ़े जाते हैं,  
 'दुग-सम्मुख जम कब ! इन्हें देख पाते हैं ।  
 तुम बैठे रहो नरेन्द्र ! सैमस-कर रथ-में  
 कुछ अप्रिय घटना घटे न जिससे पथ-में ।  
 भद्रों-का पड़ पड़ शब्द धोर स्यन्दन-की  
 मोरों-का रव सो रहे शान्ति सब वन की ।  
 बह गरज रहा मृगराज धरणि यह भरषी  
 क्षण-भर वह हय-गति महानदी ने धरजी ।  
 नद नवी सरोवर मील अबल वन-जङ्गम—  
 को घना लांघता सु रथ त्रिमल-सा सङ्गम

बाहुक की बहु सारषी बजा विधि-गति भी—  
 मोक्षन-आकर्षण-वस्तु, विराम सु-यति भी—  
 भवलोको हुए बाष्पण्य सुचिन्तित मन-में—  
 वय-गुण में ता यह नैपथ, किन्तु न तन-में ।

बैठे मृप सोमित हुए फुल स फुले,  
 क्षण भर के कल्पित विमल न उमको भूमे ।

सौ सौ चन्द्रों को ज्योति, दमकती ममी  
मण्डप-में, से अयमाल गमकती ममी ।

बाहुक भी मन-में सिन्न छिन्न से व्याकुल,  
तब मूल सता-से भिन्न हुए-से आकुल ।  
घर नष्ट भष्ट लग रहा उन्हें जग सूना  
वेता या वह पुवृत्त आज पुन दूना ।

अश्वों की अद्भुत दशा, कहीं वे सकते  
मानो पूरा भू-भाग नाप अब सकते ।  
जिन पर हों देव कृपास्तु कठिन क्या-उनको,  
तब जाते मगती बेर म कृष्ण दुर्मि को ।  
अविराम चले रथ हका नर्मदा तट-पर,  
वे खेल रही रवि-किरण नील जल पट पर ।  
ये स्वयं तुरग फिर शक्ति वायु से पाई  
मह रथ आया या स्वयं नदी बहु-पाई ।

अश्वों-को कुछ पीप्लिक-सा मध्य लिखावर—  
कर-दिया स्वस्थ-सा शीघ्र सु-नीर पिसावर ।  
फिर मञ्जनादि कर मुवित्त हुए सब मन-में,  
पायेय लिया सोया-सा पथ भ्रम-क्षण-में ।  
रवि कर पाये ये कहीं अभी पथ पूरा  
पर, न पथ तो आ-गया, मनोरथ पूरा ।  
बाहुक पर हुए कृपास्तु, मरेण मुनि-मन,  
विधि-पूर्वक किया ग्रन्थ अक्ष-विद्या धन ।



## वधव्यक्ती

जिससे सब भव के ताप काँप-कर भागें,  
 कर धीम स्वयं सब सिद्धि लक्ष्मी हों भागें ।  
 यह था उत्कृष्ट सुदान नाम था देना,  
 इस हाथ दिया उस हाथ पठा वह लेना ।  
 नृप ने बाहुक से भद्रव ज्ञान सब सीखा  
 सब सुजनो का व्यवहार सूत-सा दीखा ।

पा समाचार नृप भीम निवाने भाये  
 पर कुछ न स्वयंवर चिह्न भतिषि को पाये ।  
 दीखी न तनिक भी पुरी उन्हें वह सज्जित  
 मैं ठगा गया यह सोच हुए वे सज्जित ।

हे भतिषि ! देखकर तुम्हें हृदय भति हरसा  
 यह हुई अपमानक बिना मेघ की वर्षा ।  
 कैसे पक्ष भूले आज्ञा कृपा की राजन,  
 हूँ-हूँ न निरापद राज्य ! सुखी सबजन मन ।

‘हे भतिषेय ! हे दया आपकी जब-तक  
 है सब प्रकार से कृष्ण असंख्य सब तक ।  
 चिर-काल हुआ वृत्तान्त न था कुछ पाया  
 नृप दर्शनार्थ ही आज जसा मैं आया ।’

बेदे, आगत-को रही परन्तु निराशा  
 मानो ढाया गिरिराज मिमा भूहा-सा ।

एष जला मगर में, पुरी-भाग सब सरजे  
 इन घोर पौर जन अकित ह्यादिक गरजे ।

लेकर आनन्द-विमोर मोर सब करते  
 रोक हृदयों-का नेत्र सुखों-से मरते ।

तत्कित जिघृक्षित गये मात भक्ती-में  
 कित अग व्याकुल सिमट गये पक्षों-में ।

धर छोड़ दीह कमनीय रमणि निकसी-सी  
 वे गमक धमक से दमक रही बिजली-सी ।  
 कब कब नतम्बिक मार कहीं मिलता था  
 वह काम-जनक-तरु भुमक मूम हिसता था ।  
 सिंचती-सी आती भीठ धाप-से रख-के  
 भर गय सचासच पांव जना-से पय-के ।  
 रख-बड़ा निकट आ रहा राज-तोरण-के  
 ज्यों-जसा स्वर्ण-गिरि निकट सुरेस भवन के ।

मुन वह द्युतपूर्व सुषोप भीमबा चौकी  
 उर-की आतुरता हर्ष-वग-से रोकी ।  
 निज अर्ध-पूर्ण प्रिय-दृष्टि बहन-पर डाली  
 अञ्जन ने की ज्या हनु-कसा रखवाली ।  
 नीरव उत्तर ही मिमा दूगो-से मानो  
 (जीबी ! कष्टा का अन्त निकट अब जानो ।  
 हो गई उपस्था पूरा अभीष्ट समागत  
 धूल चुके कलुष हो गय पुष्प मय जागृत ।)  
 वे क्षुब्ध हृदय से उठीं क्षीण विषु रसा  
 बातायन-में मुक्त मूर्ख काँप कर देखा ।  
 केशिनी बुभुक्षणी साथ अघोर भुकी-मी,  
 दवाओं की गति भी हृन्मय-समान गी-सी ।  
 रख दीय-बड़ा प्रिय-होन रिक्त धन-सा ही  
 मामा मन में निष्ठाए उम-तन-या हो ।  
 रह गई सती-की दृष्टि, सशोक फटी-सी  
 पद-मुग मीचे से धरणि घनन्त हटी-सी ।  
 धिर भूयो-की रह गई—रिक्त-ही मोली,  
 वे शोक शोक, बुद्ध संमस क्षीण-मी बाली—

## दमयन्ती

वाष्पणैय सहित उपविष्ट प्रयोध्यापति यह  
 दोनों को मेरी समझ रही है स्मृति यह ।  
 अनजान भय यह एक ! हाँकता रथ जो  
 प्रिय रथ गति-सा ही बहम रहा है पथ तो ।  
 पर, यह जन तो निम्नेज कुरूप प्रभागा—  
 इसके मुक्त-पर प्रिय-सुख्य कहाँ ! रवि जागा ।  
 यह सज्जन कहाँ रथ बहन ! अनल है मुझको  
 अपना यह जीवन स्वयं विफल है मुझको ।  
 सचमुच होगा यह अनल जलूंगी धन में,  
 क्या-दुःख हीन निष्पाद चलूंगी धन में ।  
 इस लोक में न पा सकी सोच कर हारी  
 अब जानूंगी यह लोक कर्कट तयारी ।  
 पायेंगे ही प्रिय कहाँ रखी प्रभुपति  
 मैं जन्म जन्म में कर्कट पूर्ण अपना व्रत ।  
 हे बहन ! भूमकर मुझे, निषध तुम जाना  
 निजपति-पदकी पा क्षरण करण बन जाना ।  
 गत की कुछ भी तुम उन्हें न याद दिसाना  
 देना उनको सन्तोष स्वयं सुख पाना,  
 केचिनी ! कहे क्या-तुम्हें न सम्म विधित हैं,  
 बस य दो प्रीति शेष तुम्हारे हित हैं ।  
 हाँ एक कामना शेष आज बस मेरी,  
 मैं जन्म जन्म में रहूँ स्व-प्रिय-पद बेरी ।  
 इस जीवन-में हो सकी न प्राप्त सफलता,  
 चिर-दिन से जसता गत भवाप्त अनलता ।  
 यह घोड़ा ही सग गया सुदेव सुमति-को,  
 यह रिया व्यर्थ ही कष्ट प्रयोध्यापति-को ।  
 कल ठही हो यह देह वियोग-ज्वरमन्ती  
 रह जायेगी बस कथा-शेष दमयन्ती !

ऐं, यह क्या! ये कुछ ठिठक भिन्न फिर बोलीं  
सम्मुख सुनती दो साधु-वदन-नत भोलीं ।  
यह सप्त घर-पर देव-सुधा बरसी-सी,  
हृत्-शुष्क भला कर स्पर्श जिसे सरसी-सी ।  
देखो मेरी यह वाम धांस अब फड़की  
जब जमा स्नेह तब हन्त ! बलि का भठकी ।  
अब यह रथ भी जा रुका अश्व-शामा में,  
मथ गई खनवली उषर अश्व माला-में ।  
ये निपथ अश्व हिनहिना रहे हैं कस !  
आ-गये सामने स्वयं निपथ-पति जैसे !  
होते नर न भी अधिक धांस ! हय स्नेही,  
यों-अदस रूप आ-गये कही-क्या ये ही ।  
गिर पड़ता है फल आप वहन ! जब पकटा  
अस्पावधि में यों दूर कौन ! आ-सकता ।  
सपने-में भी पर-पुरुष-ध्यान जो मन-में—  
आधा हो मेरे कमी न इस जीवन-में ।  
तो उड़ जाये सब कपट दृष्टि-से मेरी,  
रक्खो हे प्रभु ! अब साज धरण मैं तरी ।  
पर, सखी केचिनी ! वहाँ प्रथम तुम आओ—  
बच्चो को लेकर माथ माग धूम पाओ ।  
जैसे गी हो सय भेद न-मुनि निवासी  
तुम बहग बूमुनी ! मुझे सवेग सँभालो !

अद्वों-मे हो निदिपन्त वहीं मूलस पर—  
बैठे ये बाहुन प्लान धुमन-म नम-पर !  
हो रही दुर्दशा परम परम धूम मन-की  
आती थी उनको यात्र विगत जीवन-की ।

## दमयन्ती

वह दिन भी था ! जब यहाँ प्रथम मैं आया  
 वह दिन भी था ! जब यहाँ विवाह रचाया ।  
 पाया कितना सम्मान बना मे मानी  
 थी स्वयं सिद्धि-सी मिली भीमजा रानी !  
 यह भी दिन है हा हन्त ! अमन्त बिधाता !  
 तेरी गति को जन जान कहाँ, कब पाता !  
 है यदपि स्वयंवर चित्त न घाव यहाँ कुछ,  
 निदधय ही है पर भेष सु-गुप्त महा कुछ ।  
 भभी को ही यह रची हुई कुछ माया  
 क्या उसने ही साकेत-नाथ बुलवाया ।  
 या छस-से मेरी अदब-परीक्षा ली यह  
 निज पति-त्याग की उचित सु शिक्षा दी यह ।  
 आया है घमकर आज एक सत योजन  
 कर सका कहाँ ! यह घरा स्व-मिमित भोजन ।  
 मे परिचित ही कर दिया त्याग-के दुःख-से  
 सुख भूल निकल अब पड़े बचन यों-मुर-से ।  
 मैंने दमयन्ती मात्र बहू निज जानी  
 अवशेष स्त्रियाँ यदि मानु-सुख ही मानी ।  
 तो अब मुझको वह रतन मिसगा फिर भी  
 आतप-विमुक्त हो सुमन लिसेगा फिर भी ।

"क्या सोच रहे हो सूत ! धवण-वरजागे—  
 बाहुक ने देखी लड़ी केसिनी आगे ।  
 हय उत्पन्नानी जान पड़े सुम मुझको,  
 पर, दब रही मैं स्पष्ट सूत-हृद-रज को ।  
 परिवार तुम्हारा कुशल-भूष तो है सब  
 क्यों-चिन्तातुर-से उदासीन बैठे अब ।

रह रह वज्रों की याद तुम्हें घाती क्या—  
 निज प्राण-प्रिया-विरहाम्नि सताती है या ।  
 सक्पका गये से सूत वचन सुन मानो  
 जागृति-सी वे पा गय स्वप्न-से जानो ।  
 वे, धर्ष-निमीलित-नेत्र लुले मज पूरे—  
 सकोच-हीन-उस मुक्तर-तरुणि-पर धूरे ।  
 बेले सम्पुक्त दो दिव्य-मूर्ति सिधु उसके—  
 हैं सहे पकड़-कर वस्त्र उसी-का कसके ।  
 मानो दो सुन्दर सु-फल दिय हों तप-ने  
 बेशिनी-सहित पहचान सिये वे मुप-ने ।  
 उमड़ा करुणा-मद पर बाहुक ने सहसा—  
 निज वज्र-हृदय से रोका बेग असह-सा ।  
 वी वृष्टि उन्हीं-पर हुई किन्तु यों-वाणी—  
 डसते डसते ही रोक वृर्गों-का पानी ।  
 "आ कमी पति-सन्तान-युक्त मैं रागी,  
 पर अब भव-राग-विमुक्त हुआ हूँ त्यागी ।  
 पत्नी की विन्ता किसे । रहेगी अब यों—  
 हो जसीं मार्ग-से भ्रष्ट सती-भी जब यों ।  
 शुभ नारि-धर्म की सीक न शेष रहेगी  
 फट जायगी ध्रुव जरा ! न भार सहेगी ।  
 कल भुम आयेंगे घति, यहाँ जन जन के,  
 बचल मल छल वल देख नारि के मन-के ।  
 अब पुनर्वरण का सती-स्वांग जब होगा,  
 यह धर्म सुप्त-संसार भस्म तब होगा ।  
 'हा, शान्त पाप ! विष वचन कहो मत ऐसे,  
 तुम उपासम्भ वे रह सती-को कैसे !  
 निर्जन घन-में निर्दोष सु-सुप्त दसा-में—  
 निज प्राण प्रिया, धनुषदा सचार्य विज्ञा-में—

जब पगित्यक्त हो चुकी पुरुष-के द्वारा,  
 तब क्यों-न भस्म हो सका, जगत यह सारा ।”  
 'होगी नर-सम्मुख झड़ी बड़ी कुछ बाधा,  
 या यों-निज परनी-सीस्य पुरुष न माधा ।  
 यदि धन्य पति-युत हुआ आज कुर्मति-यह  
 तो है मन्मथही त्याग्य व्याधि-मा पति यह ।  
 होकर विपन्न भी करें स्वयं निज रक्षा  
 हों धैर्य-धारिणी शील रक्षिणी-यक्षा ।  
 निज सूक्त-स्वामि को भी जो करें जमा-ही  
 है वे नारी कुस-वधू पवित्र रमा-ही ।  
 उन सतियों के ही गीत लोक गाता है  
 उन से ही रक्षित धर्म हुआ जाता है ।  
 मैं भी हूँ गृह-से भिन्न विपन्न अभागा  
 सब काम धरा स्त्री पुत्र छोड़ जो मागा ।  
 पर किया उन्हीं के सीस्य-हेतु यह मैंने  
 विपदोदधि का ही रचा सेतु यह मैंने ।  
 यह पुनर्बरण का सती-वृत्त दुःखदाई  
 वस अब तो मृत्यु अभीष्ट । बही सुखदाई ।  
 मेरे भी ऐसे तनया भीर तनय हैं  
 क्या-कहूँ मुझे वे प्राण-तुल्य-ही प्रिय हैं ।  
 बीता अब तो चिरकाल न उनको देला,  
 मूले होंगे वे स्वयं पिता की रेखा ।  
 कहते, कहते, नृप बड़े साधु हो जोड़े,  
 वे दोनों बापक उठा हृदय-से जोड़े ।  
 भुँद-गये सज्जन-से ब्रमस-भेज कुछ उनके,  
 शिष्ट भी न डरे वे सहज धीर कुछ उनके ।  
 क्षण भर पोछे दुग लोस कहा-यों-बस-से,  
 हों मातृ-हीन ये बाल अभागे कस-से ।

अच्छा जाओ, तुम देवि ! न भव यों जाना  
 है श्रेष्ठ विगत को सत्ता सून-ही जाना ।  
 कहकर शिशु तर से मिन प्रफुल्ल सु-मन-से,  
 कर दिये अक से पृथक परन्तु न मन-से ।  
 मैं तो जाती हूँ सूत ! तुम्हारी जय हो  
 मगल-मय हो सब मार्ग विगत भव-भय हो ।  
 हो पुनर्बरण भव अटल सती का कल ही  
 पाती नलिनी सन्तोष प्राप्त कर मस ही ।  
 हो आयेंगे सब शुष्क स्वय गद-भद भी  
 ये मातृ-हीन शिशु न हों मिसें पितृ-पद भी ।  
 वह चली गई शिशु-सग वचन कह छल-के,  
 या मार-हीन-सा हृदय उठे पद हसके ।

ये रिक्त-बड़े भी पूरा, स्वय मधु-जल-से,  
 ही-हुषा ज्वलित-भी अग्नि मन्त्र-के बस से ।  
 भोजन में भी बह विदित-स्वादु ही भाया  
 पर देती थी सन्नेह सूत की काया ।  
 हो गई परीक्षा पूर्ण दूर-की सारी,  
 थी शेष रही साक्षात्करण की बारी ।  
 स मात पिता आवेद्य केचिनी-सहिता—  
 चल-पड़ी सती वे ह्य 'गोक' से रहिता ।  
 रत्ने बार्सों का जटा-जाल बन छाया  
 प्रतिपत्ता चन्द्र-सी दीण, अमल पर काया ।  
 या प्रगट सूर्य मिन्दूर घटा-में काली,  
 करता भैमी-सौभाग्य-सुधा रत्नवासी ।  
 थी मिये हाथ-में रम्य सुमन-भय-भासा,  
 लघु-लङ्गा पारव-में छिपा, प्राणधन-वासा ।



## शमयणी

या सो यह माया स्वप्रिय-कण्ठ भरेगी  
 या अथम प्राण मेरा यह सङ्ग हरेगी ।  
 दोनों प्रकार से ही यह विरह अनमता—  
 मेरे हित साध प्रदान करे शीतमता ।  
 या कापायिक ही वस्त्र एक वह तन-पर,  
 विषु पर धन या वह या कि स्वयं विषु धन-परा

बैठे थे बाहुक तभी सामने देखा—  
 भाती है कम्पित सिन्धी स्वर्ण की रेखा ।  
 वे उठे कि जब तक नेत्र सुषा-से सींचे—  
 तब तक छाया सा-झकी स्व-तक के नीचे ।  
 मत-बदन सती का उठा वृष्टि संजन-सी—  
 वह तपोपूत निष्पाप ताप मञ्जन-सी—  
 बाहुक सुख पर जब पड़ी कुतूहल आभा  
 सुख फल उठे से स्वयं भीत मय भागा ।  
 केसिनी देखती लड़ी सुदृश्य छटा-को  
 मानो निकला रजि चीर अमेघ-बटा-को ।  
 बाहुक हो गये विनीत प्रगट धव नल वे,  
 उस सती-वृष्टि से घुमे महीपथ-धन वे ।  
 नृप-वचन पुष्प-मय हुषा पाद वे मुक्त-मय  
 करते वे ऊपर देव सती की जय जय ।  
 मेरे अमरों ने फूल वायु से आया  
 सुमनों ने वह उपहार सुमन-मय पाया ।  
 आया नृप-उर पर, वदन सती का जब तक,  
 कह उठी विह्वल कर सती केसिनी सब तक ।  
 सो पुनर्वरण तो पूरा सती का धव यह,  
 तब क्या-आने पट जाय धरा भी कम यह ।”

वह करने को सुख दान वहाँ-से सब-में—  
 खिसकी होकर मन-मुदित न जाने कब-में !  
 भुज-पाश-फँसी भी काँप रही थी रानी,  
 मुख-थर भर भर बह रहा दुर्गो-से पानी ।  
 करतीं विरहानम सान्त्, अश्रु-जल-स ही  
 वे स्नेह-सिन्धु-में मग्न युगल वे स्नेही ।  
 मिल गये परस्पर-हृदय कण्डिता भागी  
 वह स्नेह-धार बह चली ज्योति-सी आगी ।  
 'क्या-सचमुच है मैं प्राण-नाथ भुज-बद्धा  
 हे प्रिये ! धर्म साधार मिसी ही-थरदा ।  
 'अपना खोया धन नाथ ! वा चुकी दासी  
 'हो सफल सर्वदा प्रिये ! घटल-विदवासी ।  
 'मे पुन प्राप्त कर चुकी प्राण पद-भिन्ना  
 'कब रही कल्प-की सता स्व-तः उच्छिष्टा ।  
 हे हृदय देवि ! तुम रही सदा हृदय-में  
 जो देती रही प्रकाश विषय-में भय-में ।  
 साकार हुई अब मिराकार वह माया  
 हे प्रिय ! तुम्हारा पुष्प, अबधि बन घाया ।  
 निज जन्म जन्म का सग भग क्यों होता  
 क्या-ऊँचा को आरक्त रंग वह जोता ।'  
 'रागी ने तो वीराम्य परम-पद माना,  
 पर दासी ने निज दोष न धर तक जाना ।'  
 'आ दोष यही, कुछ था नि न दोष तुम्हारा  
 भाकर बीटा हे देवि ! तदपि दुःख सारा ।  
 अब अमर हुई तुम देवि ! किया मुझको भी  
 अपने सप का मधु भाग दिया मुझको भी ।  
 मिट गया सभी हृत्ताप जुड़ाकर तुमको  
 तुम सरस-सुधा-सी मिमी, उलटते द्रुम-का ।

## रमयन्ती

देखो ! कैसी जन भीड़ उमड़ती घाई—  
 गर कर स्वागत-उत्साह अय-ध्वनि छाई ।  
 मैं जान चुका हूँ यहीं-कि पुष्कर आता  
 उस पुष्प-मधु-हित, धब्ब न मुझको पाता ।  
 मुझसे ही यह भी सूझ हुई कुछ बोझी  
 पतिरिक्त भवधि कुछ, पूर्ण भवधि में जोड़ी ।  
 भा-सका यहाँ मैं घट न प्रेमनि ! तब-से  
 माझो स्वागत-स्वीकार करें भव सब-से ।  
 भा रही निशा फिर निकट वही मधु-बामी  
 सुनकर फले से फल हुई नत दासी ।

वा सिन्धु हर्ष-का उमड़ रहा जन-जन-में  
 मिसकर सब से निषेध मुदित ये मन-में ।  
 राजा रानी भी मिले धीरे वे भाई  
 वल गरे घड़े तिर घरे तरणियाँ घाई ।  
 बज रहे शंख वादिन जगा-प्रिय-मंगल  
 जिनकी ध्वनि सुन उठ गगा सभीत भ्रमयल ।  
 कन्यायें गाती गीत सीस बरसातीं  
 बूढायें कर मधु-वाद सहज मुस्कातीं  
 वा वही मयबर दिम्ब कुंगो-में छाया,  
 कैसी है मोह ! विचित्र राम की माया ।

उस कोने में कुछ हुषा भवानक ख-सा  
 जन-पत्रों में तो पुष्प-तुल्य नीरव-मा—  
 वह निरुज दीन-मा युवक बड़ा आता है  
 ज्यों कल्याण-महानद सहूर बड़ा आता है ।

नल-नृप जसा ही वेश सुखद प्राकृति-भी  
 ये पुष्कर हैं नल-अमुज सुशील सु-मति भी ।  
 जब तक उठकर नृप उन्हें अक-में भेटे—  
 तब तक सहसा ये निज-जग अग गमेटे—  
 अग्रज-धरणी-में गिरे विस्मय रात ये  
 वह दृश्य देखकर सब धर्मीर होते थे ।  
 'हे अनुज! उठो, यह वक्ष मु-दीप्त कर-ने  
 लाभो गोदी-में कमल-वदन निज भर-शो ।  
 यह धरण-भूमि हे धाम्य्य ! मुझे धोने दो  
 है अक्षित-वदन सित इस तनिक होने दो ।  
 हा अनुज-स्व-कुस का बना एक घातक मैं  
 हो गया सभी के लिए सिद्ध पातक मैं ।  
 वह बड़ा राज-मन्त्र ज्ञान ध्यान सब कीसा  
 अपने हाथों-कर चुका स्व-मुक्त मैं गीसा ।  
 'तुम कुमी न हो यों-बन्धु ! उठो मुद मरके  
 हा गये इती तुम-स्वय स्व-कुस-को करके ।  
 तुमने अमुज-का वर-वस ध्य निवाहा  
 कर दिया स्वयं-ना धन्य मुझे ही आहा ।  
 पंज-हित यह जल पक-रूप धरता है,  
 तम मदी-नीपक ही प्रकाश करता है ।  
 देवों का तो है काय इपा-ही करना,  
 पड़ता जीवों-को कम-फलफल मरना ।  
 दुस भेन स्वय जग-का जो मार्ग दिशाते  
 व अमर-यशस्वी ही इतार्यता पाते ।  
 तुम उच्छ माव दे चुके बन्धु ! अनजाने  
 वे हा भव-आगर-पाग उन्हें जो मानें ।  
 अब उच्छ-कुसा-में धूत न जम पावेगा  
 यह एक लाभ ही जगत न कज पावेगा ।

## रघुपत्नी

है-प्रजा-धरोहर भाज ! राज्य सिंहासन  
 समूह से है अत्युन्नत त्याग-का धासन ।  
 वह राजहंस-सा शणिक-मिलन भी सुखकर,  
 मानव-वैसा शत्रु-मात्र-मित्र भी दुःखकर ।  
 'हे धार्य्य ! निषध-साम्राज्य चरण-धरित है  
 जो पहले-से भी अधिक धाज धरित है ।  
 'यह प्रकृत राज्य मिल गया मुझे तुम सब-का  
 कर चुका उसे भी पहण किन्तु मैं कब-का !  
 धाज बनो बलें ही-वही प्रजा का सुख भी—  
 करना है हमको पूर्ण भोगकर दुःख भी ।  
 स्वागत-की मैं सुन चुका पूर्ण तैयारी,  
 कर रहे प्रतीक्षा सभी निषध-जन मारी ।  
 हे देवि ! कुमुदनी धन्य तुम्हारा तप-बल  
 धुल गये पाप हो गया अतुल-कुक्ष निर्मल ।  
 हे गुमे ! धाज ये धन्य दुर्गो-से रोको  
 हम हुए स्वच्छ तप-पूत इधर धवलको ।  
 धाज धा-पट्टीची साकेतराज की बारी—  
 हे धन्य ! आपका हूँ मैं चिर-धामारी ।  
 ये किन्तु रहे दिगु इधर हृय-स फले  
 पाकर पितृ-पद वे धोह ! सभी सुख सूते ।

सज-रहे हैं धाज तीनों-भोर,  
 हर्ष-का छाया सुखद-मालाज !  
 भर रहे हैं भक्ति भाज अनन्य  
 जय सती जय जय सती-सुम धय ।

